श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ

स्वामी अपूर्वानन्द

(द्वितीय संस्करण)

श्रीरामकृष्ण आश्रम,
धन्तोली, नागपुर-१

प्रकाशक :
स्वामी भास्करेश्वरानन्द,
अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण आश्रम,
धन्तोली, नागपुर-१

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला
पुष्प ६३

मूल्य रु. ३.६०

मुद्रक :
श्री दि. भि. धाकस,
नाग मुद्रणालय,
नागपुर-२

निवेदन

"श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ" का द्वितीय संशोधित संस्करण पाठकों के सम्मुख रखते हुए हमे हर्ष हो रहा है। प्रस्तुत पुस्तक स्वामी अपूर्वानन्दजी, अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी द्वारा लिखित "श्रीरामकृष्ण ओ श्रीमाँ" नामक मूल बंगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है।

मानवजाति के उद्धार के लिए जिन अवतारी महापुरुषों का आविर्भाव होता है उनके जीवन पर जितने भी अधिक ग्रन्थ लिखे जायँ उनसे समार का उतना ही अधिक हित होगा। यद्यपि भगवान् श्रीरामकृष्ण और उनकी लीलासहधर्मिणी श्रीसारदा देवी (श्रीमाँ) की पृथक-पृथक जीवनी प्रकाशित हो चुकी हैं, तथापि एक ही पुस्तक मे दोनों का जीवन-चरित्र एक साथ पहली बार प्रकाशित हो रहा है। इनकी जीवनी एक साथ पढने से उनके दिव्य जीवन का सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित होता है। स्वामी अपूर्वानन्दजी ने मूल बगला पुस्तक विश्वसनीय तथा अधिकृत सामग्री के आधार पर लिखी है और उन्होने उसमे इन दो महान् विभूतियों के जीवन की सभी प्रमुख तथा महत्वपूर्ण घटनाओ का वर्णन किया है। भगवान् श्रीरामकृष्ण तथा श्रीसारदा देवी के जीवन के सम्बन्ध में और भी अधिक विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की प्रेरणा पाठकों को प्रस्तुत पुस्तक से मिलेगी। इस पुस्तक मे जटिल चर्चा तथा गूढ़ तात्त्विक विवरण आदि न होने के कारण पाठक इसे आसानी से समझ सकेंगे तथा यह चित्ताकर्षक भी प्रतीत होगी।

मूल बंगला पुस्तक के प्रकाशक स्वामी महेश्वरानन्दजी, अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण मठ, बाँकुड़ा ने मूल पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने के लिए हमें अनुमति दी, इसलिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

हमें विश्वास है कि पाठकों को प्रस्तुत पुस्तक प्रिय लगेगी और वे उससे अनेक दृष्टि से लाभान्वित होंगे।

नागपुर,
१-८-१९६६

—प्रकाशक

भगवान श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण

१

प्रकृति की सर्वमाधुर्य-मण्डित वसन्त ऋतु थी और फाल्गुन माम की शुक्लद्वितीया तिथि। ब्राह्म-मुहूर्त का समय था। हुगली जिले के कामारपुकुर ग्राम के एक गरीब ब्राह्मण की कुटिया में मगल-शख बज उठा। उम ध्वनि से सारी बस्ती रोमाचित हो उठी। गृह-स्वामी क्षुदिराम चट्टोपाध्याय ने भी वह शंखध्वनि सुनी। उन्होने समझ लिया कि देवता का आविर्भाव हुआ। माँ चन्द्रमणि की गोद को प्रकाशित करते हुए एक सुन्दर शिशु का जन्म हुआ। वह दिन बुधवार था। बंगला १२४२ साल की छठी फाल्गुन तिथि, तदनुसार ईसवी १८३६ सन् की १७ फरवरी थी।

*   *   *

इस बालक को केन्द्रित करके यह छोटा-सा गाँव कामारपुकुर जगद्विख्यात हुआ है। धर्मात्मा क्षुदिराम चट्टोपाध्याय केवल कुछ वर्ष पूर्व ही इस गाँव मे आये हैं। उनका पूर्व निवास-स्थान था देरे ग्राम में, जो कामारपुकुर के दो मील पश्चिम में अवस्थित है। उनके परिवार की अवस्था मध्यम दर्जे की थी। धान के खेत, घर-द्वार, सब कुछ उनको था। परन्तु सत्यनिष्ठ ब्राह्मण मिथ्या मामले मे गवाही न देने के कारण ग्राम के प्रजापीड़क जमीदार रामानन्द राय के कोप-भाजन हुए। फलस्वरूप सर्वस्व खो बैठे। पैर रखने का भी कोई ठिकाना नही रहा। इस

प्रकार से प्राय चालीस साल की उम्र में भगवान् श्रीरामचन्द्र के अनन्य भक्त क्षुदिराम अपने इष्ट देवता रघुवीर को सकान्त करके से स्मरण करते हुए अपनी पैतृक कुटी और गाँव से सदा के लिए विदा हुए। परन्तु उन्हें रास्ते-रास्ते भटकना नहीं पड़ा। जिन भगवान् श्रीरामचन्द्र ने रामानन्द राय के रूप में उन्हें पीड़ा दी थी, उन्होंने ही पुन उनको कामारपुकुर में सुखलाल गोस्वामी के रूप में आश्रय दिया। क्षुदिराम परिवार की भारी विपत्ति की बात सुनकर उनके बचपन के मित्र सुखलाल ने क्षुदिराम को सपरिवार सादर बुलाकर अपने मकान के एक अंश में तात्कालिक आश्रय दिया और अपने मित्र की सांसारिक जीवन-यात्रा के निर्वाहार्थ 'लक्ष्मीजला' क्षेत्र का उर्वर एक बीघ से कुछ अधिक धान का खेत बिना किसी शर्त के सदा के लिए उनको दे दिया। राम भक्त क्षुदिराम की आँखों से आनन्दाश्रु-धाराएँ बह चलीं। प्रेममय भगवान की अपार करुणा के विषय में सोचते हुए कृतज्ञता से उनका हृदय भर गया।

* * *

क्षुदिराम, उनकी स्त्री चन्द्रमणि, पुत्र रामकुमार और कन्या कात्यायनी के अतिरिक्त भी सुखलाल के दिये हुए उस पर्ण कुटी में क्षुदिराम के आराध्य गृह देवता¹ और शीतला देवी के

---

१ श्रीरघुवीर क्षुदिराम के गृहदेवता हैं। परन्तु उनके घर में रघुवीर की कोई मूर्ति प्रतिष्ठित थी। इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। प्रत्येक नैष्ठिक ब्राह्मण के घर शालिग्राम की पूजा होती है। भक्त क्षुदिराम के घर में भी शालिग्राम का प्रतिष्ठित रहना स्वाभाविक ही है। ऐसा अनुमान होता है कि पैतृक मकान छोड़ते समय वे अपने गृहदेवता के प्रतीक शालि

प्रतिष्ठित घट को भी आश्रय मिला। सांसारिक दुःखों से पीड़ित होने पर भी वे अपने प्राण-तुल्य देवता को नहीं भूले। निराश्रित का बेड़ा पार लगानेवाले भगवान् का हाथ इस आपत्ति के समय भी क्षुदिराम ने और भी अधिक दृढ़ भाव से पकड़ लिया। सब विषयों में भगवान् पर उनकी एकान्त निर्भरता थी। अनन्यशरणागत का सारा भार भगवान् स्वयं ही वहन करते हैं। क्षुदिराम की सांसारिक गरीबी और अभाव धीरे-धीरे सम्पन्नता में परिणत हो गया। लक्ष्मीजला की उस थोड़ी-सी भूमि में सोना फलने लगा। श्रीरघुवीर का नाम स्मरण करते हुए, क्षुदिराम ने उस भूमि में अपने ही हाथों में धान के पौधों के कुछ गुच्छे रोपकर रोपण का श्रीगणेश कर बाद में किसानों को उस कार्य में लगाया। उस सामान्य भूमि के टुकड़े में उत्पन्न प्रचुर फसल न केवल उनके छोटे परिवार की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी, वरन् अतिथि-अभ्यागत और साधु-भक्तों की सेवा के लिए भी पर्याप्त होती थी। क्षुदिराम जानते थे कि यह उदारता उनके प्राणप्रिय श्रीरघुवीर की ही है।

उसी समय एक दिन क्षुदिराम कार्यवश किसी अन्य गाँव गये थे। वहाँ से लौटते समय थोड़ा विश्राम करने के लिए वे सुशीतल छायायुक्त एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। थोड़ी देर बाद ही थकावट महसूस होने के कारण लेट गये। अति शीघ्र निद्रा भी आ

ग्राम शिला को भी शीतला देवी के घट के साथ लाये थे। उनके अनन्तर देशाटन से उन्होंने जो 'रघुवीरशिला' पायी थी, उन्हें भी लाकर अपने घर में स्थापित किया था। दो या उससे अधिक शालिग्रामों की पूजा भी वैदिक घरों में होती है।

गयी। स्वप्न मे देखा कि उनके आराध्य देवता नवल-किशोर श्याम रूप मे उनके निकट आविर्भूत हो अपनी अगुलियो से पासवाले धान के खेत की ओर सकेत करते हुए कमनीय करुणार्द्र भाव से कह रहे है—"बहुत दिनो से अवहेलित दशा में यहां पडा हूं। मुझे घर ले चल, तेरी सेवा-पूजा पाने की बडी इच्छा हो रही है।" घबडाकर क्षुदिराम उठ बैठे। यह स्वप्न है या देववाणी ? वे विस्फारित नेत्रो से चारो ओर देखने लगे। निकट के धान के खेत के ऊपर दृष्टि पडते ही समझ गये, यही तो है वह स्वप्न-दृष्ट स्थान। उसी ओर आगे बढे। देखा कि एक सुन्दर शालिग्राम-शिला के ऊपर एक विषधर सर्प फन फैलाये बैठा है। तब तो यह स्वप्न नही है। कुछ और पास जाते ही वह सर्प अदृश्य हो गया। आवेगपूर्ण हृदय से क्षुदिराम ने 'जय राम' कहते हुए शिला को हाथ मे उठा लिया। लक्षण देखते ही समझ गये यह 'रघुवीर-शिला' ही है। हर्षोत्फुल्ल होकर 'रघुवीर' को छाती से लगाये हुए वे घर लौटे और शास्त्र-विधि के अनुसार उन्होने श्रीरघुवीर की प्रतिष्ठा अपने घर मे पूजागृह में की।

अब से क्षुदिरामजी का अधिक समय जागृत देवता की पूजा-अर्चना म व्यतीत होने लगा। रघुवीर ने उनके सारे मन पर अधिकार कर लिया। दिन पर दिन उनकी तन्मयता बढती गयी नाना दिव्य दर्शन और अनेक अलौकिक अनुभूतियां क्षुदिरामजी को दिन पर दिन तन्मय तथा आनन्दमय बनाये रखती थी। उनकी सौम्य और उज्ज्वल मूर्ति के दर्शन मात्र से गाँव के लोग उनको एक श्रेष्ठ ऋषि की तरह श्रद्धा करते थे। गाँव के रास्ते से हुए उन्हे देखकर सब लोग 'देखो वे आ रहे है,' कहते हुए मार्ग की एक ओर हो जाते थे। प्रतिदिन प्रात क्षुदिरामजी जब गायत्री

के ध्यान में बैठते थे उस समय उनके वक्षस्थल पर लालिमा छा जाती थी। और उनके दोनों नेत्र उच्छ्वसित प्रेमाश्रु से भर जाते थे। प्रातःकाल पुष्प-पात्र लेकर जब वे फूल तोड़ने जाते थे, उस समय, उनकी आराध्या देवी शीतला लाल वस्त्र पहने बालिका के रूप में उनके साथ-साथ घूमती हुई पुष्प-चयन में उनकी सहायता करती थी। इस प्रकार के दिव्य दर्शन अब क्षुदिरामजी के जीवन में सहज-लभ्य दैनन्दिन घटना बन गयी थी। उनकी पार्थिव सम्पत्ति को समाप्त कर उनके 'रामजी' ने उन्हें दैवी सम्पदा का अधिकारी बना दिया। उनके हृदय में अब किसी प्रकार का अभाव नहीं, खेद नहीं, अभियोग नहीं, क्योंकि अब वे दैवी सम्पदा के अधिकारी हो गये थे।...

और एक दिन की घटना इस प्रकार है। कामारपुकुर से क्षुदिरामजी अपने भानजे रामचाँद को देखने मेदिनीपुर जा रहे थे क्योंकि अनेक दिनों से उनका कोई समाचार उन्हें नहीं मिला था। चालीस मील का मार्ग पैदल ही जाना था इसलिए वे खूब भोर में ही रवाना हुए थे। उस समय था माघ का शेष अथवा फाल्गुन का आरम्भ। प्राय. दिन के दस बजे तक वे चलते रहे और चलते-चलते उनकी दृष्टि रास्ते के निकट नये पत्तों से परिपूर्ण एक बिल्व वृक्ष पर पड़ी। परन्तु उस समय कामारपुकुर के सारे बिल्ववृक्ष के पत्ते झड़ गये थे। उन कोमल बिल्व-पत्रों को देखकर क्षुदिरामजी का मन आनन्द से नाच उठा। मन में शिव-पूजा करने की भावना जागी। मेदिनीपुर जाने की बात एकदम भूल गये। पास ही के गाँव से एक नयी टोकरी और एक अंगोछा खरीद लिया और बेल-पत्तियों से इस टोकरी को भर भींगे अंगोछे से उसे ढाँककर अपराह्न तीन बजे तक वे घर लौट आये।

इस असमय पर इनका लौटना देख चन्द्रादेवी ने विस्मित होकर उनसे पूछा "क्या आपका मेदिनीपुर जाना नहीं हुआ ? इस समय लौट आये बात क्या हुई, अभी तक आपका भोजन भी तो नहीं हुआ है।" देखती नहीं हो कैसे बिल्व पत्र है। ऐसे बिल्व पत्र पाकर उनको फिर छोड़ा जा सकता है ?"—बोल कर क्षुदिरामजी शीघ्र स्नान करके शिव-पूजा करने बैठ गये। इसके बाद हर्षोत्फुल्ल चित्त से उन्होंने अपने प्राण-देवता श्रीरघुवीर और शीतला देवी को सजाया। देवतुल्य स्वामी के प्रति गर्व रखनेवाली चन्द्रादेवी का हृदय हर्ष से भर गया और नेत्र सजल हो गये।

देखते-देखते कामारपुकुर में क्षुदिरामजी के नौ वर्ष बीत गये। अब ज्येष्ठ पुत्र रामकुमार बड़े हुए थे। कन्या कात्यायनी भी विवाह-योग्य थी। क्षुदिरामजी ने कात्यायनी का विवाह कामारपुकुर के उत्तर-पश्चिम की ओर प्राय दो मील की दूरी पर अवस्थित आनूड़ गाँव के केनाराम बनर्जी के साथ कर दिया और केनाराम की बहिन का विवाह रामकुमार के साथ।

क्रमश रामकुमार व्याकरण, साहित्य और स्मृतिशास्त्र में पारगत हो गये और धीरे धीरे उन्होंने परिवार का बहुत कुछ भार अपने कन्धों पर ले लिया। श्रीरघुवीर की दया से क्षुदिरामजी की पारिवारिक अवस्था अब बहुत कुछ अच्छी हो गयी। उनके मन में दीर्घ काल से निहित तीर्थ-दर्शन की वासना जाग उठी और सम्भवत सन् १८२४ ई में वे सेतुबन्ध रामेश्वर के दर्शनार्थ पैदल चल पड़े। दक्षिण देश के अनेक तीर्थों के दर्शन करने के अनन्तर, सेतुबन्ध से एक बाण-लिंग शिव लेकर वे एक वर्ष बाद घर लौट आये। श्रीरघुवीर और शीतला देवी के पास बाणेश्वर शिव भी

स्थापित हुए। प्रायः सोलह वर्ष बाद, सन् १८२६ ई. में चन्द्रमणि देवी ने और एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। रामेश्वर तीर्थ से लौटने के बाद इस पुत्र का जन्म होने के कारण क्षुदिरामजी ने इस शिशु का नाम रखा रामेश्वर।

* * *

कात्यायनी बहुत बीमार है। उसे देखने के लिए क्षुदिरामजी कात्यायनी के ससुराल आनूड़ गाँव गये। बीमार कन्या की अवस्था देखकर क्षुदिरामजी को उसे भूताविष्ट होने का सन्देह हुआ। वे ध्यानस्थ हुए और ध्यानावस्था में ही प्रेतयोनि को सम्बोधित करके बोले — "भूत, प्रेत, दानव, चाहे जो भी हो, मेरी कन्या को अकारण कष्ट क्यों दे रहे हो? तुरन्त इसके शरीर को छोड़कर चले जाओ, यह मेरा आदेश है।" कात्यायनी के मुख से वह प्रेतात्मा बोला — "मैं बड़ा कष्ट पा रहा हूँ। आप यदि गया में पिंड देकर मेरा उद्धार करने को तैयार हो, तो मैं आपकी कन्या को छोड़कर चला जाऊँगा।"

प्रेतात्मा की कातरोक्ति सुनकर क्षुदिरामजी का हृदय अत्यन्त दुखित हुआ और वे बोले — "मेरे पिंडदान करने से यदि तुम्हारा उद्धार हो जावे तो मैं अवश्य पिंड दूँगा। परन्तु इसी से तुम्हारा उद्धार हो जावेगा इसका प्रमाण क्या है?" यह सुनकर प्रेत कातर स्वर में बोला — "उसका प्रमाण अवश्य ही आपको मिलेगा। इस सामने के नीम के पेड़ की एक बड़ी डाल को तोड़कर मैं चला जाऊँगा।"

क्षुदिरामजी के गया में पिंडदान करने के बाद उस नीम के पेड़ की बड़ी डाल एक दिन अकस्मात् चड़चड़ाती हुई टूट पड़ी। कात्यायनी भी पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गयी। जीव के दुःख-

मोचन की भावना ने ही क्षुदिरामजी को गया-धाम में जाने की प्रेरणा दी थी। परन्तु उसके पीछे जो दैव इंगित था, वह क्या उस समय कोई जानता था?

सन् १८३५ ई के शीतकाल के अन्त में क्षुदिरामजी ने गया धाम के दर्शनार्थ यात्रा की। उस समय सारा मार्ग पैदल ही चलना पडता था। वे चैत्र मास के आरम्भ में ही गयाधाम पहुँच गये। क्षुदिरामजी पहले काशी विश्वनाथ के दर्शन करके फिर गया आये थे। मधुमास ही गयाधाम में पिंडदान का प्रशस्त समय है।

प्राय एक मास तक गयाधाम में रहकर उन्होंने यथा शास्त्र पितृ कार्य आदि सम्पन्न किया। पितृ-ऋण, मातृ ऋण तथा पूर्वजों का ऋण सर्वतोभावेन चुका कर क्षुदिरामजी को अत्यन्त आनन्द हुआ। उनके मन म मानो एक बडा बोझ उतर गया। स्वच्छन्द मन से श्रीभगवान की अपार करुणा का स्मरण करते हुए उनका शरीर पुलकित हो गया। रात में वे निश्चि त होकर सोये। उन्होंने दिव्य स्वप्न देखा कि वे श्रीमन्दिर में विष्णु-पाद पद्म पर पिण्ड-दान कर रहे है और ज्योतिर्मय देहधारी उनके पितृगण सानन्द पिण्ड ग्रहण कर रहे है। यह दृश्य देखकर उनके आनन्द की सीमा नही रही।

दूसरे ही क्षण देखा कि मन्दिर स्निग्ध ज्योति से उद्भासित हो उठा है। उज्ज्वल सुवर्णमय सिंहासन पर दिव्य कान्ति ज्योतिर्मय देवता की आनन्द-घन मूर्ति विराजित है और सूक्ष्म देहीगण हाथ जोडकर उस परम पुरुष का स्तव कर रहे है। वह वरेण्य देवता स्निग्ध प्रसन्न दृष्टि से सबकी ओर देख रहे हैं। प्रसन्न होते हुए उन्होंने सकेत द्वारा क्षुदिरामजी को पास बुलाया। आनन्द से अधीर होकर क्षुदिरामजी रोने लगे। तब वे

दिव्य पुरुष मधुर स्वर में बोले—"क्षुदिराम! तुम्हारी भक्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारी सेवा लेने के लिए मैं तुम्हारे पुत्र रूप में जन्म लूँगा।"

अश्रुपूर्ण नेत्रों से क्षुदिरामजी बोले—"मैं तो अत्यन्त गरीब हूँ, आपकी सेवा किस प्रकार कर सकूँगा, प्रभो!" स्नेहार्द्र कण्ठ से परम देवता बोले—"डरते क्यों हो, ब्राह्मण! तुम जिस प्रकार से भी मेरी सेवा करोगे, उसी से मैं तृप्त रहूँगा।" क्षुदिरामजी स्तम्भित हो गये। उसी समय उनकी नींद टूट गयी। आनन्द और विस्मय से क्षुदिराम सोचने लगे देव-स्वप्न तो मिथ्या नहीं होता। तब क्या श्रीभगवान् जन्म लेंगे हमारे पुत्र रूप में? और वे कुछ भी न सोच पाये। आनन्द-उल्लास से वे विह्वल हो गये। ऐसा भाग्य है हमारे जैसे अकिंचन का? कुछ दिन बाद वे घर लौट आये। परन्तु स्वप्न का वृत्तान्त उन्होंने अपने हृदय की मणि-मंजूषा में गुप्त ही रखा।...

क्षुदिरामजी जब गयाधाम में थे तब एक दिन माँ चन्द्रमणि अपने घर के पास जोगियों के शिव-मन्दिर के सामने खड़ी थी। वह अपनी सहेली धनी के साथ बातचीत कर रही थी। अकस्मात् उन्होंने देखा—महादेव के श्रीअंग से एक दिव्य ज्योति निकली, जिससे मन्दिर उद्भासित हो गया। धीरे-धीरे वह ज्योति प्रबल तरंग के रूप में परिणत होकर उनके शरीर में प्रविष्ट हो गयी। वह तत्क्षण मूर्छित हो गयी। ...ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, चन्द्रादेवी को अनुभव हुआ वह ज्योति उनके उदर में प्रवेश कर गयी है और वह गर्भधारिणी हो गयी हैं।..

भगवान् विष्णु पुत्र रूप में आवेंगे यह बात क्षुदिराम को स्वप्न में गयाधाम में ज्ञात हुई थी। इधर शिव ने ज्योति रूप

म चन्द्रमणि के उदर में प्रवेश किया ! स्वरूपत तो व एक ही ह भद केवल नाम मात्र म है। रूप ! परम देवता के तीन विशेष रूप हैं ब्रह्मा विष्णु शिव। पुन वे ही नाना रूपो म प्रकट होन हैं।

शिव मन्दिर की उस घटना के बाद से अनेक देवी देवताओ का दशन--स्वप्न अथवा जागरण म--चन्द्रादेवी के जीवन की नित्य की घटना हो गयी। वे मानो उनके घर के लोग हो। अशरीरिगण उनके साथ साथ घूमा करते थ। उनकी दिव्य देह की पवित्र सुगन्धि से चारो दिशाए भर जाती थी। पुन सुनती थी मधुर नूपुर ध्वनि कभी कभी दैवी वाणी सुनकर वह स्तम्भित हो जाती। दया दाक्षिण्य और सेवा भाव की जीती-जागती मूर्ति चन्द्रादेवी का वात्सल्य भाव अब और बढ़ गया --देवता मनुष्य--सबके ऊपर। किसी का शुष्क मुख देखने पर उनके अन्दर मातृ-भाव प्रबल होकर चित्त करुणा से विगलित हो उठता।

गयाधाम से लौटने पर क्षुदिरामजी की दृष्टि सर्वप्रथम अपनी सहधर्मिणी के देह मन के परिवर्तन पर पडा। चन्द्रादेवी इतना सरल थी कि अत्यन्त सामान्य बात भी अपने पति को वह बिना उन्ह सन्तोष नहा होता था। पति की अनुपस्थिति में जो घटनाए हुई थी वे सब उन्होंने उनसे कह डाली। यह सुनकर गया के स्वप्न की वास्तविकता म अब क्षुदिरामजी को सन्देह का कोई अवकाश ही नहीं रहा। उन्होंने भयभीत एवं चिन्तित पत्नी को आश्वासन देते हुए कहा -- गयाधाम म श्रीभगवान ने अलौकिक उपाय स मुझे ज्ञात कराया है कि वही हमारे पुत्र रूप म आयग। सुनकर चन्द्रादेवी आनन्द म अधीर हो गईं। क्या यह भी सम्भव है ?

ज्योतिर्मय परम पुरुष को गर्भ में धारण करने के बाद से ही चन्द्रा के शरीर की कान्ति पर सबकी दृष्टि आकर्षित हुई। उनकी समवयस्क सहेलियाँ आपस में कहने लगी – "प्रौढावस्था में यह सौन्दर्य! देखो, ब्राह्मणी अब की बार जीवित रहेगी या नहीं।"

चन्द्रादेवी के गर्भ के दिन ज्यों-ज्यों बीतने लगे, त्यों-त्यों उनके अलौकिक दर्शनादि में भी वृद्धि हुई। एक दिन एक हंसारूढ़ देवमूर्ति को उन्होंने देखा, सूर्य के प्रखर ताप में उन देवता का करुणामय मुख रक्तिमायुक्त दीख रहा था। देखते ही चन्द्रादेवी का मातृ-हृदय स्नेह से भर गया। उस देवमूर्ति से वे प्रेमपूर्वक बोलीं—"अरे बेटा, हंसारुढ़ देव! धूप से तेरा चेहरा तो एकदम सूख गया है। मेरे घर में कुछ पान्ता भात (जल में रखा हुआ बासी भात) रखा है, वही थोड़ा-सा खाकर कुछ ठण्डा हो ले।" इस स्नेह-सम्भाषण के बाद वह देव-मूर्ति मृदु हास्य करती हुई अन्तर्धान हो गयी। चन्द्रा को इस प्रकार के दर्शन अनायास होते थे।

क्षुदिरामजी सविस्मय अपनी सहधर्मिणी के मुख से ये सब बातें सुनते और मुग्ध हो जाते। पुलकित हृदय से वे उस शुभ दिन की भास्वर ज्योति की अरुणिमा की प्रतीक्षा करने लगे।

* * *

बंगला फाल्गुन की ६ तारीख, १७ फरवरी १८३६ ई. को बुधवार था। आधी घड़ी रात शेष थी। चन्द्रमणि को प्रसव वेदना हुई और पड़ोसिनी धनी की सहायता से उन्होंने ढेकी-घर (धान कूटने का स्थान) में आश्रय लिया। थोड़ी देर बाद एक पुत्र का जन्म हुआ। धनी ने प्रसूता की समयोचित परिचर्या करने के बाद देखा कि नवजात शिशु अदृश्य है। अत्यन्त व्यस्ततापूर्वक खोज करते हुए शिशु को उसने धान उबालने के

चूल्हे की राख में पडा हुआ पाया। परन्तु शिशु चुपचाप और शान्त था, बिलकुल ही नहीं रो रहा था। विभूतिभूषित बच्चे को गोद में लेकर धनी ने देखा—एक अपूर्व देव-शिशु है! और कितना बडा—मानो छ मास का बच्चा हो।

शास्त्रज्ञ क्षुदिरामजी ने बालक के जन्म-लग्न का निरूपण करके देखा कि यह परम शुभ लग्न है। वे जान गये कि अपनी प्रतिज्ञानुसार स्वय गदाधर का आविर्भाव हुआ है, अत उन्होने उस बालक का नाम गदाधर रखा। बाद मे प्रख्यात ज्योतिषियो ने नवजातक की जन्मकालीन गणना के द्वारा निश्चय किया—"एतादृश बालक भविष्य में महान् धर्मवित् और परमपूज्य होगा, तथा सदा पुण्य कार्यो के अनुष्ठान में सलग्न रहेगा। अनेक शिष्य वर्ग के द्वारा परिवेष्टित होकर देव-मन्दिर में वास करेगा एव नवीन धर्म-मार्ग का प्रवर्तन करते हुए नारायण अश सम्भूत महापुरुष के रूप म समार म ख्याति प्राप्त करके मानव-समाज का पूज्य होगा।"*

---

*"रामकृष्ण नाम कैसे पडा इस विषय में मतभेद है। स्वामी सारदानन्दजी ने 'श्रीरामकृष्णलीलाप्रसग' (साधकभाव) में लिखा है – 'हम लोगो में से किसी किसी का विचार है, सन्यास दीक्षा देने के समय श्रीमत् तोतापुरी गोस्वामी ने ही श्रीरामकृष्ण नाम रखा था। दूसरे लोग कहते है, श्रीरामकृष्णदेव के परमभक्त और सेवक श्रीयुत मथुरामोहन ने ही उनका यह नामकरण किया था। प्रथम मत ही हमें समीचीन जान पडता है।"

तोतापुरी जी दक्षिणेश्वर आये थे बगाब्द १२७१ (१८६४-६५ ई—श्रीरामकृष्णलीलाप्रसग) में, परन्तु मन्दिर-कार्यालय के सहायता के खाते

दिन-प्रतिदिन, शिशु चन्द्रमा की कला की तरह बढ़ने लगा और इस छोटे से शिशु में कितना अलौकिक आकर्षण था! निलिप्त गृहस्थ क्षुदिराम को भी इस बालक ने स्नेह-पाश में मानो बाँध लिया। इस अपूर्व सुन्दर बालक को वे आँखों से ओझल नहीं कर सकते थे। माँ चन्द्रमणि के लिए तो बालक प्राणों से भी अधिक प्रिय था। बालक का दिव्य आकर्षण पिता-माता तक ही सीमित नहीं था, प्रत्युत उस आकर्षण ने सारे ग्रामवासियों को भी प्रभावित कर लिया था।

भगवान् श्रीकृष्ण ने जन्म से ही अनेक अलौकिक लीलाएँ दिखायी थीं, तो भी माता-पिता का हृदय वात्सल्य-रस से ही अधिक प्रभावित हुआ था। वे कृष्ण को अपने स्नेह-धन 'गोपाल' के अतिरिक्त और कुछ न जान पाये थे। गदाधर के जन्म के

में १२६५ बगाब्द (१८५८ ई.) में श्रीरामकृष्ण भट्टाचार्य रूप से श्रीरामकृष्णदेव के नाम का उल्लेख देखने को मिलता है (कथामृत, दूसरा भाग, सप्तम संस्करण)। उस समय श्रीरामकृष्ण भट्टाचार्य राधाकान्त के मन्दिर में पुजारी थे और उनका मासिक वेतन था पाँच रुपये, अर्थात् तोतापुरीजी के दक्षिणेश्वर आगमन के ७ वर्ष पूर्व ही श्रीरामकृष्ण नाम का लिखित उल्लेख पाया जाता है।

परवर्ती काल में श्रीरामकृष्णदेव को यह कहते हुए सुना गया था— उनकी पूजा देखकर अत्यन्त मुग्ध हो हलधारी (श्रीरामकृष्णदेव के चचेरे बड़े भाई) ने उन्हें बहुत बार कहा था— "रामकृष्ण, अब मैंने तुझे पहचान लिया है।" (श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग)। यह घटना भी तोतापुरी के दक्षिणेश्वर-आगमन के पूर्व—श्रीरामकृष्णदेव के दिव्योन्माद अवस्था के समय की है।

पूर्व से ही ब्राह्मण-ब्राह्मणी ने बहुत कुछ अलौकिक लीलाएँ देखी थी। उन्हे दिव्य दर्शन और दिव्य श्रवण हुआ करता था, फिर भी उन पर इन सबका कोई प्रभाव नही पडता था।

बालक की अवस्था अब सात-आठ मास की है। माता चन्द्रमणि अपना दूध पिलाकर बालक को मसहरी के नीचे सुला आयी हैं। शिशु गाढ निद्रा मे मग्न है देखकर वह गृह-कार्य में लग गयी। बीच-बीच म बच्चे को देख आती है। एक बार आकर देखा — मसहरी के भीतर बालक नहीं है। उसके स्थान में मसहरी का सारा स्थान घेरे हुए एक दीर्घकाय पुरुष सोया हुआ है! चन्द्रमणि डर से रो पडी। उनका चिल्लाना सुनकर घबडाये हुए क्षुदिरामजी दौडकर आये। चन्द्रादेवी के साथ वे उस कमरे में गये और उन्होने देखा कि मसहरी के भीतर बालक गहरी नींद में सोया हुआ है।

घुटनो के बल चलना समाप्त कर अब गदाई (गदाधर) पैर पैर चलना सीख गया है। माँ का गला पकडकर खडा होना है — माता के स्नेह-चुम्बन की आशा से। चन्द्रमणि गदाधर

मथुरबाबू ने रामकृष्ण नाम रखा था, इसका कोई कारण या प्रमाण नहीं मिलता।

श्रीरामकृष्णदेव की वंशतालिका इस प्रकार है —माणिकराम, क्षुदिराम रामशीला, निधिराम रामकनाई रामकुमार, रामेश्वर । रामअक्षय, रामलाल, शिवराम।

उपर्युक्त नामो की सूची देखने पर ज्ञात होता है कि रामकृष्ण उनका यथानुक्रमिक नाम था। हम इस ग्रन्थ में बाल्यकाल से ही श्रीरामकृष्ण देव का गदाधर और रामकृष्ण इन दोनो नामो से उल्लेख करेंगे।

को चुम्बन से भर देती है । एक दिन क्षुदिरामजी श्रीरघुवीर का शृंगार करने लिए तन्मयता से सुरभित फूलों की माला गूंथ रहे थे । गदाई पीछे से झपटकर पिता के पीठ पर कूद पड़े। क्षुदिराम और चन्द्रमणि के नेत्रमणि धीरे-धीरे बढ़ने लगे और क्रमशः उसका नटखटपन अधिक बढ़ता गया । माता बालक को कभी-कभी धोती चादर पहना देती थी । इस वेश मे शोभा और भी बढ जाती थी। मानो यह बालक 'गौराग' ही है। इसी समय गदाधर को खेल का एक साथी मिल गया — उनकी एक छोटी बहन का जन्म हुआ।. . .

गदाधर अब कुछ टूटे-फूटे शब्द बोलना सीख गया है । क्षुदिरामजी उसको गोद में लेकर उससे अपने पूर्व पुरुषो के नाम, देवी-देवताओ के छोटे-छोटे स्तव-प्रणामादि की आवृत्ति कराते या सुनाते थे । रामायण-महाभारत के किसी विचित्र उपाख्यान को दो-एक बार सुनने मात्र से ही गदाधर उसकी स्पष्ट पुनरावृत्ति कर देता था जिसे सुनकर क्षुदिरामजी अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो जाते थे । इसी प्रकार वे बालक को बहुत कुछ बाते सिखाने लगे। परन्तु पहाड़े सिखाने की चेष्टा की, तो गदाई ने किसी प्रकार भी उसे पढना न चाहा । बालक समझकर क्षुदिरामजी अधिक जोर नही देते थे । उनको केवल स्तवस्तुति मात्र ही खूब सिखाने लगे और थोड़े ही दिनो में गदाई ने पिताजी से सुनकर बहुत कुछ सीख लिया ।

पाँचवे वर्ष मे यथाविधि विद्यारम्भ कराकर क्षुदिरामजी ने गदाधर को पाठशाला में भरती करा दिया । घर के निकट ही गाँव के जमींदार लाहा बाबू के बड़े मण्डप में पाठशाला लगती थी — सबेरे और साय दोनो समय । गदाधर समवयस्क बालकों का संग पाकर बहुत आनन्दित हुआ । लिखने-पढ़ने के अतिरिक्त

खेल-कूद की भी बड़ी सुविधा थी। छुट्टी के समय साथियों के साथ वह खेल म जुट जाता था। . .

पाठशाला में गदाधर का पढ़ना-लिखना अच्छा ही चलने लगा। अल्पकाल म ही उसन साधारणतया लिखना पढ़ना सीख लिया। किन्तु अंकगणित म उसका मन बिलकुल नही लगता था। बालक की प्रतिभा का विकास नित्य-नवीन उद्भावन शक्ति, अनुकरण-प्रियता देव-देवियो की मूर्ति बनाने और चित्रांकन में दीख पडता था। गदाधर एक बार जो कुछ देख या सुन लेता उसे कभी विस्मृत नहीं होता था। उनके गाँव में कथा-प्रवचन और नाटक-गीतादि (यात्रा मण्डली के गाने) प्राय होते रहते थ। गदाई न सुन सुनकर अनक भजन गान, शास्त्रोपाख्यान और यात्रा क नाटकीय अभिनय सीख लिये। क्षुदिरामजी ध्यान से देखते थ कि बालक अकपट और निर्भीक है। अपनी त्रुटियां को वह कभी नहीं छिपाता और प्राण के डर से भी कभी झूठ नहीं बोलता। सर्वोपरि बालक की स्वभावजात सहज-सरल देवभक्ति उसके जन्म सम्बन्धी गयाधाम में हुए स्वप्न की बात क्षुदिरामजी को स्मरण करा देती थी।

कुसुम कली में जो सौरभ सचित है उसका प्रमाण पुष्प के खिलने पर ही मिलता है। उस सुगन्ध से पूरित उच्छ्वास की तरह ठीक किस समय गदाधर का ईश्वरीय स्वरूप प्रकटित हुआ था, यह ठीक-ठीक निर्णय करके बतलाना कठिन है। रामकृष्ण के जीवन में दिव्य भावावेश का प्रथम विकास अति शैशव में ही हुआ था। उस समय उनकी अवस्था छ वर्ष की थी जिस अवस्था में ससार के बालक-बालिकाएँ खेलकूद में रहते हैं उसी अवस्था में उनको प्रथम ईश्वरावेश हुआ था।

अपने परवर्ती जीवन में दक्षिणेश्वर मे इस घट॰अथवा उन्होंने स्वय ही वर्णन किया है। उन्ही की भाषा का उद्धरण हम यहाँ देते है -"वह शायद जेठ या आषाढ़ का महीना था, मेरी उम्र उस समय छः या सात वर्ष की थी, एक दिन मै प्रातः-काल एक छोटी डलिया में मुरमुरा लेकर खेत की मेंड़ के ऊपर से खाता हुआ जा रहा था। आकाश मे एक सुन्दर जल-पूरित मेघ-खण्ड दिखायी दिया — मै उसे देखते हुए मुरमुरा खा रहा था। देखते-देखते मेघ के टुकडे ने सारा आकाश ढँक लिया, उसी समय दूध के समान श्वेत बगुलों का एक झुण्ड उस काले मेघ के टुकड़े के नीचे से उडकर जाने लगा। वह एक अद्‌भुत दृश्य था। देखते-देखते अपूर्व भाव मे तन्मयता की एक ऐसी अवस्था हो गयी कि फिर मुझे कुछ होश नही रहा, और मै गिर पड़ा। मुरमुरे के दाने सब मेंड के किनारे बिखर गये। कितनी देर तक मै उस भावावस्था में पड़ा रहा कह नही सकता। लोगों ने जब पड़े हुए मुझे देखा तो पकडकर उठाया और घर पहुँचा दिया। वही प्रथम बार मै भावावेश में बेहोश हुआ था।"

इस घटना से क्षुदिराम और चन्द्रादेवी अत्यन्त उद्विग्न हो गये। उनकी धारणा हुई कि गदाई के ऊपर किसी देवता या भूत का आवेश हुआ है अथवा वह मृगी-रोग है। यद्यपि गदाधर ने पुनः उनसे कहा था कि वह अचेतन नही हुआ था, उस समय उसका मन और प्राण एक अपूर्व आनन्द में मग्न होकर एक अभिनव भाव में लीन होने के फलस्वरूप ही उसकी यह अवस्था हुई थी। तो भी उन्होने शान्ति-स्वस्त्ययन और औषधादि की व्यवस्था करने में त्रुटि नही की।

इसके कुछ समय बाद अर्थात् लगभग डेढ़ वर्ष के अनन्तर कामारपुकुर में गरीब चट्टोपाध्याय परिवार में एक महाशोकावह घटना घटी, जिससे सब किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। यह घटना थी क्षुदिरामजी की आकस्मिक मृत्यु। वे उस समय ६८ वर्ष के थे। यद्यपि उनका शरीर अस्वस्थ था, तो भी अपने भानजे रामचाँद के सेलामपुर के आवास-गृह में शारदीय दुर्गा-पूजा के अवसर पर वे अन्य वर्षों की भाँति इस बार भी गये। उनके साथ रामकुमार थे। किन्तु वहाँ पहुँचते ही वह असाध्य संग्रहणी रोग से पीड़ित हो गये। रोग बढ़ता ही गया। पूजा के तीन दिन किसी प्रकार बीते। परन्तु विजयादशमी के दिन प्रतिमा विसर्जित होने के पहले ही उनकी बोली बन्द हो गयी और उनकी चेतना जाती रही। प्रतिमा विसर्जन के बाद रामचाँद ने आकर देखा कि मामा का अन्तिम समय उपस्थित है। रोते-रोते रामचाँद बोले "मामा, मामा तुम तो सदा रघुवीर नाम की रट लगाते थे, अब वह नाम क्यों नहीं लेते?" रघुवीर का नाम सुनते ही क्षुदिराम की चेतना लौट आयी। उन्होंने काँपते हुए स्वर में उत्तर दिया–"कौन? रामचाँद? प्रतिमा-विसर्जन कर आये? तो अब मुझे बैठा दो। मैं बैठकर शरीर छोड़ूँगा।" धीरे से उनको बिछौने पर बैठा दिया गया। पूत गम्भीर स्वर में तीन बार श्रीरघुवीर का नाम उच्चारण करते हुए क्षुदिरामजी समाहितचित्त हो धीरे-धीरे श्रीराम के चरणों में चिरकाल के लिए लीन हो गये।

न कर देता था, अथवा
ोता था। अथवा
आनन्दित

२

कामारपुकुर का यह छोटा ब्राह्मण-परिवार गरीब अवश्य था, किन्तु दुःखी नही था। क्षुदिरामजी के राममय जीवन से आनन्द का विकास होता था। उनकी वह सौम्य मूर्ति केवल अपने ही परिवार को नही, बल्कि समस्त ग्रामवासियों को दिव्य आनन्द देती थी। क्षुदिरामजी की अकाल-मृत्यु से गदाधर का हृदय अत्यधिक व्यथित हुआ। वे उसके स्नेहमय पिता ही न थे बल्कि क्षुदिरामजी के देवोपम जीवन के दिव्य प्रभाव से गदाधर का जीवन प्रभावित हुआ था। वे केवल प्रेममय पिता ही न थे, साथ ही गदाधर के ज्ञानमय गुरु भी थे। क्षुदिरामजी में गदाधर ने पाया था--आदर्श मानव, और क्षुदिरामजी ने गदाधर में देखा था--शिशु भगवान्।

पिता की मृत्यु ने गदाधर के प्रज्ञामय मन में अकस्मात् संसार का वास्तविक रूप उद्घाटित कर दिया। गौतम बुद्ध को वार्धक्य, जरा, व्याधि और मृत्यु देखकर जीवन की अनित्यता की सम्यक् उपलब्धि हुई थी। जिस दृश्य ने गौतम के युवा मन में संसार के वास्तविक रूप को प्रकटित करते हुए उन्हें यतिजीवन की प्रेरणा दी थी---वही अनुप्रेरणा बालक गदाधर को पिता की मृत्यु-रूप एकमात्र साधारण घटना से मिली। उसी समय से संसार और सांसारिक सभी विषयों में गदाधर को तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया।

इसके कुछ समय… और नत्य गीत आदि का प्रम गम्भीर खल-…मारपुकुर म…तिरित हो गया। उसी समय से बालक का प्राय पटना घट्टे के श्मशान म अथवा माणिकराजा के आम्रकानन आदि निजन स्थानो म अकेले ही विचरण करते हुए देखा जाता था। किन्तु उसके मन म वैराग्य की जो अग्निशिखा प्रज्वलित हुई थी उसे दूसरा कोई न जान पाय इसलिए गदाधर बाह्य व्यवहारादि म खूब सावधान रहता था विशष कर अपनी माँ क निकट। माता के पास रहते हुए देव सेवा और गह कार्यादि म उनकी अनक प्रकार से सहायता करना अब गदाधर का नित्य काय हो गया था।

उनके गाव क पास ही पुरीधाम जाने का रास्ता था। प्रतिवष अनक यात्री और साधु-वरागी उस मार्ग से जगन्नाथजी क दशनाथ जाते थ गाँव के जमीदार लाहा बाबू की अतिथि शाला म प्राय प्रतिदिन यात्रियो की भीड लगी रहती थी। गाँव के घर घर म साधु सेवा की विशष व्यवस्था थी। माता चन्द्रमणि क दाक्षिण्य और सेवा के आकषण स अनक साधु सन्त क्षुदिरामजी की पणकुटी म भी पधारत थ। वह स्वय उपवास रहकर भी साधुओ को सीधा देती थी। चन्द्रादेवी अपने मुख क ग्रास गरीब कगालो क हाथ म दे देती थी। सब लोग जानत थ -- चन्द्रमणि किसी को भी खाली हाथ लौटने न देंगी।

पिता की मृत्यु के अनन्तर ही गदाधर को साधु का सग प्रिय हो उठा। उस सुन्दर देवबालक के मधुर आ…र और अकुण्ठ सेवा स परितुष्ट होकर सन्यासीगण उस बालक भगवदभजन और शास्त्रादि की शिक्षा दत थ और हृदय आशीर्वाद प्रदान करत थ। साधुगण बालक गदाधर से स्नेह

प्रेम करते थे कि कोई उसे विभूति से अलंकृत कर देता था, अथवा किसी दिन बालक तिलक-चन्दनादि से सज्जित होता था। अथवा कोई उसे कौपीन से बालक-सन्यासी का वेश पहनाकर आनन्दित होता था।

उस समय की एक और घटना से बालक के जीवन में एक नवीन अध्याय का सूत्रपात हुआ। बालक की अवस्था उस समय आठ वर्ष की थी। तब तक उसका उपनयन संस्कार नही हुआ था। एक दिन कामारपुकुर से दो मील उत्तर अनूड़ ग्राम की जागृत देवी विशालाक्षी के मन्दिर में मनौती चढाने के लिए गाँव की प्रसन्नमयी आदि अनेक स्त्रियाँ जा रही थीं। उन सब लोगों के साथ गदाधर भी देवी के दर्शनार्थ चल पड़ा। उस लम्बे रास्ते से जाते हुए सगिनियो के अनुरोध से गदाधर देवी के भजन गाने लगा। बालक तन्मय होकर मधुर कण्ठ से 'माँ' का नाम गा रहा था। अकस्मात् भजन गाते-गाते गदाधर चुप हो गया। उसकी आँखों से निरन्तर अश्रुधाराएँ बहने लगी। सब अग-प्रत्यंग अकड़ गये, मुख पर स्वर्गीय आभा फूट निकली, धूप लगने से कोमल बालक को ठण्ड-गरमी का वैषम्य हुआ होगा —यह सोचकर उन स्त्रियो को चिन्ता हुई। कोई उसके आँख-मुँह पर जल छिड़कने लगी और कोई पखे से हवा करने लगी। किन्तु बालक अचेत अवस्था में ही था। निर्जन मार्ग मे अब क्या उपाय हो ?

अकस्मात् प्रसन्नमयी को ध्यान आया —गदाधर के ऊपर देवी का आवेश तो नही हुआ है। प्रसन्नमयी की बात सुनकर सब स्त्रियाँ दीनभाव से देवी की प्रार्थना करने लगी। कैसा आश्चर्य ! स्त्रियों द्वारा कुछ समय तक देवी का नाम-गान होने के बाद ही गदाधर के मुखमण्डल पर दिव्य हास्य की छटा खिल उठी। धीरे-

धीरे चेतना का लक्षण दिखाई दिया। उस समय सभी ने समझ लिया कि बालक के ऊपर वास्तव में ही देवी का आवेश हुआ है। धीरे-धीरे गदाधर प्रकृतिस्थ हुआ। तब सभी स्त्रियां अति आनन्दित होकर देवी-स्थान में उपस्थित हुई और यथाविधि पूजा आदि कार्य समाप्त कर अपने-अपने घर लौट आयी। चन्द्रादेवी ने जब सारा विवरण सुना तो वह पुत्र के स्वास्थ्य के विषय में विशेष चिन्तित हुई। किन्तु गदाधर माँ से पुन:-पुन: कह रहा था कि देवी का चिन्तन करते-करते उसका मन देवी के ही पादपद्मो में लीन हो गया था।

* * *

नवाँ वर्ष समाप्त हो रहा है देखकर चन्द्रादेवी और रामकुमार गदाधर के उपनयन का प्रबन्ध करने लगे। गरीब परिवार में पूरे आयोजन का रूप सात्विक ही था। उपनयन का दिन निश्चित हो गया।

गदाधर के समय लोहारिन धनी प्रसव-गृह मे गयी थी। चूल्हे की राख के ढेर से उठाकर सर्वप्रथम उसने ही बालक को गोद में लिया था। धनी बाल-विधवा और नि सन्तान थी उसने अपने हृदय का सारा वात्सल्यरस गदाई के ऊपर सीच दिया था। जब तक वह गदाई के मुख से 'माँ' की बोली नही सुन लेती थी और उसे छिपाकर कुछ न कुछ खिला न देती थी, तब तक उसे सन्तोष नही होता था। एक दिन अश्रुपूरित नेत्रो से बालक के निकट धनी ने अपने हृदय की मनोकामना प्रकट करते हुए कहा कि वह उपनयन के समय उसको 'माँ' कहकर पुकारता हुआ उसी के हाथो से प्रथम भिक्षा ले। गदाधर धनी के प्रेम से द्रवित होकर उसकी अभिलाषा पूरी करने को सहमत हुआ। उसी समय

से धनी गदाधर की 'भिक्षा-माता' होने की आशा में एक-एक पैसा संग्रह करने लगी।

वही उपनयन-काल अब उपस्थित हुआ है। रामकुमार से गदाधर ने जब अपने दिये हुए वचन की बात कही, तब रामकुमार दृढ़ स्वर में बोले—"यह भला कैसे सम्भव हो सकता है? धनी का जन्म तो नीच कुल में हुआ है। हमारे कुल में तो कभी ऐसा हुआ ही नहीं। और हो भी नहीं सकता।"—क्षुदिरामजी थे सदाचारी, अशूद्रयाजी ब्राह्मण। गदाधर भी अपने पिता के ब्राह्मणोचित गुणों की बात जानता था, तो भी उसने जिद पकड़ ली। रामकुमार भी अपने वंश की मर्यादा की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये। गदाधर भी अपनी सत्य-रक्षा के संकल्प में अचल-अटल रहा। उसने कहा—"सत्यभ्रष्ट, मिथ्याचारी व्यक्ति ब्राह्मणोचित यज्ञसूत्र धारण करने का कभी अधिकारी नहीं हो सकता।" रामकुमार व्याकरण, काव्य और स्मृतिशास्त्र के पण्डित थे। नौ वर्ष के अपरिपक्व-बुद्धि उस बालक के मुख से इतनी बड़ी बात सुनने की आशा उन्हें न थी, और गदाधर का इस प्रकार का हठ देखकर वे एकदम स्तम्भित हो गये। अन्त में पितृ-बन्धु धर्मदास लाहा की मध्यस्थता में गदाधर की ही विजय हुई। सत्य की जय हुई। . . . सत्य ही सर्वोपरि है। सत्य ही है धर्म और धृति। सत्य ही है परम पुरुषार्थ।

नौ वर्ष के बालक द्वारा वचन की सत्य-रक्षा के लिए इतनी दृढ़ता क्या अमानवता की द्योतक नहीं है? सत्य-स्वरूप को कर्मणा-मनसा-वाचा दृढ़ता से पकड़े रहने का स्वभाव श्रीरामकृष्ण के जीवन में बचपन से ही दीख पड़ा था। यहाँ तक कि क्षुदिरामजी भी यह देखकर आनन्दित हुए थे कि बालक गदाधर कभी भी

मिथ्या-भाषण करना नही जानता ।

तपस्या, शौच, दया और सत्य — धर्म के इन चार पादों में कलिकाल के लिए 'सत्य' ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है । परवर्ती काल मे श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे — 'सत्य बोलना ही कलिकाल की तपस्या है ।' बाल्यकाल से ही कर्मणा, मनसा-वाचा सत्यपालन श्रीरामकृष्णदेव के जीवन का और एक उज्ज्वल ध्येय था ।

उपनयन के बाद से ही गदाधर का भावप्रवण मन रघुवीर की सेवा, पूजा और ध्यान में मग्न हो गया । मैदान में, मार्ग मे, अमराइयो मे जो बालक अपने साथियो के साथ समय का अधिक भाग खेलकूद में बिताता था, वही गदाधर अब अकुरित नवानुराग से देवपूजा मे तन्मय हो गया । अत्यन्त श्रद्धा और निष्ठा से गदाधर रघुवीर की, बाणश्वर शिव और शीतला माता की पूजा करता था । पूजा क समय उसके नेत्र सजल हो जाते थे और देव दर्शन के लिए वह दीनभाव से प्रार्थना करता था । उसकी इस व्याकुलता को देख सबको आश्चर्य होता था । थोडे ही दिनों में गदाधर की दीन प्रार्थना से देव-विग्रह प्राणवन्त हो उठा । जाग्रत देवता का आविर्भाव गदाधर के पवित्र और सरल हृदय में हुआ । अब गदाधर को प्राय भावावेश होने लगा । दिव्य दर्शन के फलस्वरूप उसके अगो में दिव्य आभा फूट निकली, बालक रूपान्तरित होने लगा — देव बालक के रूप में ।

अब गदाधर की ध्यान-प्रवणता क्रमश बढती गयी । शिव-रात्रि का समय था, गदाधर की उम्र उस समय कुल दस वर्ष मात्र थी । बालक ने यथारीति उपवासी रहकर शिव-पूजा आदि में रात्रि व्यतीत करने का सकल्प किया । पडोसी सीतानाथ पाइन के घर मे उस रात को शिव-महिमा-सूचक गीति-नाट्य का प्रबन्ध

हुआ था। गदाधर प्रथम प्रहर की पूजा समाप्त करके शिव के ध्यान में मग्न था। उसी समय उसके साथी बालकों ने आकर जिद्द की कि तुम्हें शिव का अभिनय करना पडेगा। नाटच-मण्डली में जो शिव का अभिनय करता था, उसके सहसा अस्वस्थ हो जाने के कारण नाटक होने का और कोई उपाय न था।...

साथियो के अनुरोध से किसी प्रकार भी छुटकारा न पाकर अन्तोगत्वा उसे राजी होना पडा। शिव के वेश से सज्जित होकर धीरे-धीरे चलते हुए जब सभा में आकर गदाधर खड़ा हुआ, तब सबको ऐसा प्रतीत हुआ मानो साक्षात् शिव ही नर-देह मे अवतीर्ण हुए है। आनन्द का एक अतुलनीय स्रोत जनता मे प्रवाहित होने लगा। कोई-कोई 'हरि-हरि' बोलने लगे। स्त्रियो ने 'उलू' 'उलू'* किया—कोई शख बजाने लगी। दर्शको को शान्त करने के लिए स्वय प्रबन्ध-कर्ता ने ही आकर शिव की स्तुति आरम्भ की। इधर गदाधर शिव-ध्यान मे तन्मय हो गया और उसे बाह्य चेतना न रही। वह भावावेग मे चित्रवत् एक ही भाव में खड़ा रहा। उसके दोनों कपोलों से अश्रुधाराएँ बह चली। बहुत देर के बाद भी जब वह सचेतन न हुआ, तब सभी के मन में विचार हुआ कि गदाधर के ऊपर शिव का आवेश हुआ है। नाटक बन्द हो गया। कई लोगों ने उसे कन्धे पर रखकर घर पहुँचा दिया। गदाधर सारी रात भाव-समाहित रहा। इधर घर मे सभी रोने लगे। भोर होते-होते गदाधर की सहज अवस्था लौट आयी।...

श्रीरामकृष्ण के जीवन मे बाल्यकाल से ही सब प्रकार के

---

* मांगलिक अवसरो पर बगाल में स्त्रियों द्वारा मुख से जीभ हिलाकर की हुई उलू, ऊलू की ध्वनि।

उत्तम भावों का उन्मेष, समावेश, विकास और चरम प्रकाश देखा जाता था। विश्वरूप के ध्यान में, देवी के ध्यान में और शिव के ध्यान में उन्हें भावावेश होने लगता था। रामकृष्ण का शरीर क्रमशः सभी देव-देवियों का आविर्भाव-स्थान बन गया। संसार के आध्यात्मिक इतिहास में ऐसा और किसी युग में अथवा किसी अवतार में होता हुआ नहीं दिखायी दिया।

गदाधर का विद्याध्ययन कहाँ तक हुआ था, इसका ठीक पता नहीं लगता। शायद बहुत अधिक नहीं। कारण अपरा विद्यार्जन और पार्थिव सुखलाभ के ऊपर बाल्यकाल से ही उनकी वितृष्णा थी। इस उम्र में परा और अपरा विद्या का प्रभेद उनको ज्ञात हो गया था। उन्होंने समझ लिया था—जो विश्वात्म-रूप है वही परम सुखदायी है ज्ञानोपलब्धि के बाद विश्वात्मा को जानने और पाने के लिए वे दृढ़-संकल्प हो गये। 'तत्' लाभ के अनुकूल सब कुछ में ही गदाधर का प्रेम था। रामायण, महाभारत का पाठ इतना सुन्दर करते थे कि लोग सुनने के लिए खड़े हो जाते थे। श्रुतिधरत्व-गुण के कारण रामकृष्णायण पोथी' योगाद्या और सुबाहु नाटक आदि सब इन्हें कण्ठस्थ हो गये थे।

धीरे-धीरे गदाधर तेरह-चौदह वर्ष के हुए। इस समय उनके छोटे से परिवार की विशेष घटनाएँ थीं—रामेश्वर और सबसे छोटी बहन सर्वमंगला का विवाह, रामकुमार के प्रथम पुत्र रामअक्षय का जन्म और सूतिकागृह में ही रामकुमार की पत्नी की मृत्यु। रामेश्वर यद्यपि विद्वान् थे, किन्तु किसी प्रकार की पारिवारिक आर्थिक सहायता करने में असमर्थ थे। अतः रामकुमार को यजन-याजन, शान्ति-स्वस्त्ययन और स्मृति के विधान देने आदि से जो आमदनी होती थी, उसमें परिवार क

सारा व्यय पूरा नहीं हो पाता था। धीरे-धीरे रामकुमार ऋणग्रस्त हो गये और अर्थागम के मार्ग की खोज करने को बाध्य हुए। बहुत विचारने के बाद वे कलकत्ता चले आये और झामापुकुर मुहल्ले में पाठशाला खोलकर छात्रों को पढ़ाने लगे।...

गदाधर का उस समय का जीवन निरन्तर भगवद्भावमय था। नित्य अपने हृदय-देवता की पूजा के अतिरिक्त भी उनका अधिक समय ध्यानादि में व्यतीत होता था। उनके मुख से ईश्वरीय प्रसंग सुनने के लिए क्षुदिरामजी के आँगन में बहुत लोग जमा हो जाते थे। गदाधर कभी रामायण, महाभारत अथवा पुराणादि का पाठ या कभी भजन-कीर्तन करते हुए सबको दिव्यानन्द देते थे। फिर सन्ध्या के समय गाँव के बच्चे-बूढ़े सब वहाँ इकट्ठे होते थे। गदाधर के मधुर कण्ठ से निकला हुआ भावपूर्ण मनोहारी भजन सबको अश्रुसिक्त कर डालता था। उसी समय से उनके जीवन में एक निरवच्छिन्न भगवद्भावधारा बह चली थी — जिसका सुशीतल स्पर्श अनेक जनों के प्राण और मन को शान्ति देता था। ईश्वरीय सभी विषयों में उनका प्रेम, अनुराग और धारणा रहती थी। और सांसारिक विषयों से था गदाधर का त्याग-वैराग्य।

पारिवारिक कामकाज की देखरेख के लिए रामकुमार साल में एक बार घर आते थे। उन्होंने देखा कि गदाधर की और सब बातें तो अच्छी हैं परन्तु पढ़ने-लिखने में वह बहुत उदासीन है। पितृहीन छोटे भाई के भविष्यत् जीवन के सम्बन्ध में विचार करके रामकुमार मन में बहुत दुःखी होते थे। फिर भी प्यारे गदाई को कुछ कहने के लिए उनकी प्रवृत्ति नहीं होती थी।

रामकुमार कुछ वर्षों से कलकत्ता में अपनी पाठशाला चला

रहे थे। उनकी पाठशाला की प्रशंसा चारों ओर फैल गयी थी। पाठशाला में पढ़ाने के अतिरिक्त भी मुहल्ले के विशेष विशेष घरों में यजन-याजन आदि कार्य बराबर रामकुमार को कुछ धन प्राप्त हो जाता था। अब अकेले उन्हें यह सब कार्य सम्भालने में कठिनाई हो रही थी। उस समय उन्हें गदाधर की याद आयी। विचार किया, उसे अपने साथ कलकत्ता ले आना अच्छा होगा, पाठशाला में पढ़ेगा, पूजा-पाठ आदि करेगा, और याजनादि के विषय में भी उन्हें सहायता देगा। उसके भावी जीवन की भी एक व्यवस्था हो जायगी।

रामकुमार घर लौट माता और भाई के साथ सलाह करके गदाधर से कलकत्ता चलने की बात कही। ज्येष्ठ भ्राता का आदेश उनके लिए पितृ आदेश के समान ही था। गदाधर तुरन्त राजी हो गये। शुभ दिन में श्रीरघुवीर को प्रणाम करके चन्द्रमणि के चरणों की धूल और उनका स्नेह चुम्बन लेकर गदाधर अपने बड़े भाई के साथ कलकत्ता चल दिये।

३

पहले-पहल कलकत्ता आने पर गदाधर का मन अपनी माँ के लिए व्याकुल रहता था। परन्तु थोड़े ही दिनों में उनका वह भाव जाता रहा। कलकत्ता शहर का रंग-तमाशा देखकर नहीं, बल्कि मनोनुकूल कार्य पाकर। रामकुमार जिस-जिस घर में पूजा करते थे, गदाधर ने धीरे-धीरे वह सारा कार्य अपने हाथ में ले लिया। इसके अतिरिक्त उन्हें बड़े भाई की सेवा और देखरेख करनी पड़ती थी। थोड़े ही दिनों में प्रियदर्शन किशोर अपने मधुर व्यवहार और सुमधुर भजन-गान के कारण यजमान-परिवारों में परमप्रिय हो उठा। विशेषकर गदाधर की भक्तिपूर्ण पूजा और ध्यान की तन्मयता सब लोगों की दृष्टि और श्रद्धा आकर्षित कर लेती थी। लेकिन लिखने-पढ़ने के विषय में गदाधर पूर्ववत् उदासीन ही रहे। कई महीने तक रामकुमार उनका यह भाव देखते रहे। एक दिन कुछ कर्कश स्वर में बोले-"पढ़ना-लिखना बिलकुल ही नहीं कर रहे हो, क्या बात है? तुम्हारे दिन कैसे कटेंगे?" कुछ देर तक चुप रहकर सहज स्वर में ही गदाधर बोले--"यह सब चावल-केला बाँधने की यजमानी विद्या मैं नहीं सीखना चाहता। मैं ऐसी विद्या सीखना चाहता हूँ, जिससे यथार्थ ज्ञान हो एवं जिससे मानव-जीवन सार्थक हो।" गदाधर से इस प्रकार के उत्तर पाने की आशा रामकुमार को न थी।

वे स्तम्भित हो गये। गदाई क्या कह रहा है! पढने-लिखने को चावल-केला बाँधने की विद्या कह रहा है! किसी दूसरे समय भाई को समझा देगे यह सोचकर उस समय वे चुप हो गये। गदाधर की उम्र उस समय केवल सत्रह वर्ष की थी। ..

और दो वर्ष बीत गये। इन दिनो रामकुमार की आर्थिक अवस्था निरन्तर बिगडती गयी। अनेक प्रकार की दुश्चिन्ताओ के कारण उनके शरीर और मन अवसन्न और जर्जरित हो गये, पाठशाला बन्द करके कुछ और काम किया जाय या नही यही चिन्ता वे कर रहे थे। उधर सासारिक सब विषयो के उपर ही गदाधर की उदासीनता क्रमश बढ चली थी। किन्तु उनके ध्यान की गम्भीरता और भाव की तन्मयता देखकर रामकुमार एक ओर मन में प्रसन्न होते थे तो दूसरी ओर चिन्तित भी हो रहे थे। उसी समय की एक घटना के कारण दोनो की जीवन-गति के एक नये मार्ग मे प्रवृत्त होने की सूचना हुई।

* * *

कलकत्ते के जानबाजार के प्रसिद्ध जमीदार रामचन्द्र दास की पत्नी थी रानी रासमणि। उनकी चार कन्याएँ थी। अकस्मात् उनके पति का देहवसान हो गया। रासमणि प्रचुर धन-सम्पत्ति की अधिकारिणी हुई। पति की मृत्यु के बाद जमीदारी की देखरेख रानी रासमणि को अपने हाथो में लेनी पडी। थोडे ही दिनो मे उनकी असाधारण कर्म-कुशलता के कारण जमीदारी की आमदनी बहुत बढ गयी। पुण्य-कार्यों में प्रचुर अर्थदान, नि सकोच अन्नदान, अनेक जनहितकर कार्यो का अनुष्ठान और उनकी असीम साहसिकता का सुयश कलकत्ते के बाहर भी दूर तक फैल गया। उनका रानी नाम सार्थक हुआ। उनकी देवी के प्रति इतनी अगाध भक्ति

थी कि जमीदारी के कागज-पत्रों में अपने नाम की जो मोहर वह काम में लाती थी, उसमें लिखा था — 'कालीपद-अभिलाषिणी श्रीमती रासमणि दासी।' देव-द्विज मे भक्ति रखनेवाली रानी यद्यपि तथाकथित नीच कुलोत्पन्ना थी, किन्तु वास्तव में वह थी — देवी-अंश-सम्भूता, भगवती की अष्ट सखियों में से एक।

बहुत दिनों से रानी का वाराणसी जाने और विश्वनाथ-अन्नपूर्णा के दर्शन करने का सकल्प था, किन्तु अनेक विघ्नबाधाओं के कारण न जा पायी। अब उनके दामाद लोग काम सम्भालने योग्य हो गये। विशेषतः मथुरामोहन विश्वास तो सब कामकाज में रानी के दाहिने हाथ ही थे।

वाराणसी की यात्रा के लिए प्रचुर धन अलग करके रखा हुआ था। सन् १८४८ ई. में रानी वाराणसी-यात्रा के लिए प्रस्तुत हुई। पूजोपकरण और अन्यान्य द्रव्यादि अनेक नावों पर लादा गया। यात्रा का सब प्रबन्ध सम्पन्न हुआ। किन्तु यात्रा की पूर्व रात्रि* में भगवती भवतारिणी ज्योतिर्मय देह में रानी को स्वप्न में दिखाई दी और उनसे कहा — 'वाराणसी जाने की कोई आवश्यकता नही, यही भागीरथी के किनारे किसी मनोरम स्थान में मेरी मूर्ति प्रतिष्ठित करके सेवा-पूजा आदि की व्यवस्था कर। मैं यहीं नित्य तेरी सेवापूजा ग्रहण करूँगी।'

देवी का प्रत्यादेश! रानी ने वाराणसी की यात्रा स्थगित

* किसी-किसी के मतानुसार रानी ने वाराणसी-यात्रा के लिए रवाना होकर पहिले दिन वर्तमान दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर के पास गंगाजी में नाव पर रात बितायी थी। उसी समय उन्हें देवी का आदेश मिला था और उन्होंने अपनी वाराणसी-यात्रा स्थगित कर दी थी।

कर दी और भगवती के आदेश पालने में तत्पर हुई। कलकत्ते के निकट वाराणसी के समान गंगा के पश्चिम तट पर श्रीमन्दिर-निर्माण का उपयोगी स्थान अनेक प्रयत्न करने पर भी उन्हें न मिला अत गंगा के पूर्व तट पर दक्षिणेश्वर में उन्होंने प्राय ६० बीघा जमीन मोल ली। उस जमीन के एक भाग के मालिक थे हेस्टी साहब। बाकी अंश मे था कब्रिस्तान और गाजी-पीर का स्थान। यह स्थान देखने म कूर्मपृष्ठ के समान था। तन्त्र मत म ऐसा ही स्थान शक्तिसाधना के अनुकूल होता है। देवी की इच्छा से ही ऐसा स्थान प्राप्त हो गया।

मनपसन्द स्थान प्राप्त होने पर रानी ने बहुत-सा धन व्यय करके सुन्दर नवरत्न शोभित बृहत् काली-मन्दिर, मण्डप, राधा-कान्तजी का मन्दिर, चाँदनी और उसके सामने ही पक्का घाट, कोठार, भोगघर अतिथिशाला, नहबत और एक मनोरम उद्यान का निर्माण किया। और भी कुछ निर्माण-कार्य हुए। गंगाजी के किनारे बहुत दूर से देवी-मन्दिर के शिखर दिखलायी देते थे। इस निर्माण-कार्य को सम्पूर्ण करने म प्राय नौ लाख रुपया खर्च हुआ। इसके बाद देवी की सेवा के लिए प्राय दो लाख रुपये मे रानी ने दीनाजपुर जिले क ठाकुरगाँ महकमे का शालबाड़ी परगना खरीदा।

इस देवी-मन्दिर के निर्माण-कार्य के समय से देवी मूर्ति की प्रतिष्ठा पर्यन्त रानी रासमणि कठोर व्रतचारिणी रही। त्रिसन्ध्या स्नान, हविष्यान्न भोजन, भूमि पर शयन और सब प्रकार के व्यावहारिक कार्यों से विरत होकर अनन्य मन से अपनी आराध्य देवी क ध्यान चिन्तन म ही वह मग्न रहती थी।

सर्वसुलक्षणयुक्ता देवी-मूर्ति निर्मित होकर बक्स में रखी गयी। किन्तु रानी की आन्तरिक भक्ति के कारण मृण्मयी मूर्ति

मानो जीवित हो उठी। वह बक्स में बन्द रहना नहीं चाहती थी, सेवा-पूजा लेने के लिए मानो उद्यत थीं। रानी को स्वप्न में आदेश हुआ — 'मुझे और कितने दिन बक्स में बन्द रखेगी। मुझे इस प्रकार रहने में कष्ट हो रहा है, जितनी जल्दी हो सके मेरी स्थापना कर।' नींद टूटने पर घबड़ाई हुई रानी ने बक्स खोलकर देखा, मूर्ति में पसीना आया है। रानी अधीर हो उठी। आसन्न शुभ दिन में माँ की प्रतिष्ठा करनी ही होगी — रानी ने यह जिद् पकड़ ली। आगामी स्नानयात्रा (जगन्नाथजी की) और पूर्णिमा के पूर्व और कोई प्रशस्त दिन न पाकर वही दिन देवी-प्रतिष्ठा के लिए निश्चित हुआ।...

माँ का प्रत्यादेश पाकर रानी मूर्ति की प्रतिष्ठा, पूजा और भोग आदि की व्यवस्था करना चाहती थी किन्तु भगवती की इच्छा पूरी करने में उस समय के ब्राह्मण-समाज ने प्रबल बाधा डाली। बंगाल के सभी प्रसिद्ध ब्राह्मणों ने एक स्वर में कहा — ब्राह्मणेतर अन्य वर्णों द्वारा स्थापित भगवती को अन्नभोग देने का अधिकार शास्त्र-विहित नहीं है। तब रानी अत्यन्त व्याकुल हुईं और उन्होंने चारों ओर भारतवर्ष के पण्डित-समाज के पास व्यवस्था लेने के लिए अपने लोगों को भेजा। किन्तु शूद्राणी द्वारा प्रतिष्ठित विग्रह को अन्न-भोग देने की व्यवस्था नहीं मिली। उस मन्दिर में पूजा और अन्न-भोग देना तो दूर रहा, कोई कुलीन ब्राह्मण प्रणाम करके भी उस देवी मूर्ति को मर्यादा देने के लिए तैयार न थे। ब्राह्मणों की इस हृदयहीनता से रानी के मन में बड़ी चोट पहुँची।

भगवती भोजन चाहती है, पर माँ को कुछ अन्न-भोग न दिया जा सकेगा, यह सोचकर वेदना से रानी का हृदय भर गया।

इधर प्रतिष्ठा का दिन नजदीक था, उसी समय झामापुकुर चतुष्पाठी (पाठशाला) से व्यवस्था आयी कि प्रतिष्ठा के पूर्व यदि उक्त सम्पत्ति किसी ब्राह्मण को दान कर दी जाय, और वह ब्राह्मण उक्त मन्दिर म देवी की प्रतिष्ठा कर अन्न-भोग की व्यवस्था करे तो शास्त्र का विधान यथोचित रूप से पालित हुआ समझा जायगा। और ब्राह्मणादि सब वर्णों के द्वारा ही अन्न-प्रसाद ग्रहण करने में कोई बाधा न रहेगी।

रामकुमारजी से यह व्यवस्था मिलने पर मानो रानी को *निबिड अन्धकार में आशा की ज्योति मिली।* उन्होंने अपने कुल-गुरु के नाम पर मन्दिर की प्रतिष्ठा करने का निश्चय किया। किन्तु गुरुवंशिया में पूजादि क्रियाकर्म का ज्ञाता कोई न था, और देवीपूजा के लिए योग्य पूजक की आवश्यकता थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी कोई सुयोग्य ब्राह्मण शूद्राणी से प्रतिष्ठित देवी मन्दिर का पुजारी होने को राजी नही हुआ। निरुपाय होकर रानी ने रामकुमार को ही पूजक-पद ग्रहणपूर्वक अपने इस मन्दिर-प्रतिष्ठा-कार्य को सुसम्पन्न करने का अनुरोध करते हुए पत्र लिखा। रानी के आन्तरिक अनुराध के कारण रामकुमार को इस कार्य के लिए सम्मत होना ही पडा।

सन् १२६२ बगाब्द के ज्येष्ठ माह की अठारह तारीख (३१ मई, १८५५ ईसवी) बृहस्पतिवार, जगन्नाथ की स्नान-यात्रा के दिन महासमारोह के साथ भगवती भवतारिणी नूतन मन्दिर में प्रतिष्ठित हुई। राधाकान्त और द्वादश शिवलिंगो की प्रतिष्ठा भी विभिन्न मन्दिरा में हुई। श्यामा, श्याम, महेश्वर पास-पास बैठे—सर्वभावो के भावो केन्द्ररूप दक्षिणेश्वर में। उस दिन पूजा-अर्चना, पाठ, भजन-कीर्तन, नाटय मण्डली का गायन

और भोजनोत्सव के 'दीयतां भुज्यता' शब्द से चारों दिशाएँ मुखरित हो उठीं। विराट् आनन्द-उत्सव हुआ। सुदूर कान्यकुब्ज, वाराणसी, श्रीहट्ट, चटगाँव, उड़ीसा, नवद्वीप आदि स्थानों से विशिष्ट ब्राह्मणगण निमन्त्रित होकर समवेत हुए। आशातीत विदाई दक्षिणा पाकर सभी तृप्त हुए और धन्य-धन्य करते हुए आशीर्वाद देने लगे। कई दिनों तक उत्सव का आनन्द चलता रहा। इस आनन्द-उत्सव मे सम्मिलित होने के लिए श्रीरामकृष्ण भी दक्षिणेश्वर आये थे। परवर्ती काल में उन्होंने उस मन्दिर-प्रतिष्ठा उत्सव के विषय में कहा था — "ऐसा लगता था मानो भगवती कैलाश छोड़कर मन्दिर में चली आई हों और रासमणि ने मानो पूरे रजत गिरि को उठाकर दक्षिणेश्वर में बैठा दिया हो।"

श्रीरामकृष्ण ने सानन्द इधर-उधर घूमते हुए सब कुछ देखा, किन्तु दिन भर भूखे रहकर सन्ध्या के समय एक पैसे का मुरमुरा और लाई के लड्डू मोल लिये और वही खाकर झामापुकुर लौट आये। दूसरे दिन प्रातःकाल भी वे दक्षिणेश्वर में उत्सव देखने आये। उस दिन भी उनके बड़े भाई ने दक्षिणेश्वर में रहने को कहा, परन्तु भोजन के समय वे झामापुकुर लौट आये।

पाँच-सात दिन तक वे फिर दक्षिणेश्वर नहीं गये। रोज ही सोचते थे — भैया आज लौटेंगे। परन्तु इतने दिनों के बाद भी उन्हें लौटा हुआ न देख कर उद्विग्न चित्त से भैया का समाचार लेने वे पुनः दक्षिणेश्वर आये। और वहाँ पहुँचकर सुना, रानी के विशेष अनुरोध से उनके अग्रज जगन्माता के पुजारी होने को सहमत हो गये हैं।

श्रीरामकृष्ण को पहले इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने बड़े भाई से पूछा — "मैंने सुना है कि आप यहाँ पुजारी

हो रहे है ? क्या यह सम्भव है ? पिताजी तो अशूद्रयाजी थे। ऐसे पिता के पुत्र होकर आप कैसे यह नौकरी करने को राजी हो गये ?" रामकुमार ने शास्त्र और युक्ति के द्वारा श्रीरामकृष्ण को समझाने की चेष्टा की, किन्तु वे अपनी निष्ठा मे अटल रहे। तब इस बात की मीमांसा के लिए धर्मपत्र* निकालने का निश्चय हुआ। धर्मपत्र में रामकुमार के पूजक होने की सम्मति मिली। श्रीरामकृष्ण ने भी धर्मपत्र का सिद्धान्त ईश्वरेच्छा समझ कर मान लिया।

झामापुकुर की पाठशाला बन्द कर देनी पडी और रामकुमार ने गदाधर से दक्षिणेश्वर में रहने का अनुरोध किया। अब अपने कर्तव्य का निश्चय करने के लिए उन्हे विशेष चिन्तित होना पड़ा। देवी के भोग का प्रसाद पाने के प्रस्ताव को उन्होने स्वीकार नही किया। अत भैया के कहने पर सीधा लेकर गंगा के किनारे स्वय पका कर खाने और दक्षिणेश्वर में रहने पर सम्मत हुए। उनके इस आचरण को हम अनुदारता कहे अथवा ऐकान्तिक निष्ठा ? . . .

गंगातीर का वास श्रीरामकृष्ण के लिए परम आकर्षक वस्तु हुई। क्योंकि स्थान रमणीय था और देवालय भी। थोडे ही दिनो में उस प्रियदर्शन ब्राह्मण-कुमार के प्रति सबकी दृष्टि आकर्षित हुई। उनकी तेज पुंज मूर्ति, अपने आप में मस्त रहना, उदासी और तन्मनस्कता का भाव, नम्र और तेजोदीप्त व्यवहार तथा सरलता के कारण वे सबके प्रिय हो गये। कुछ ही दिनो में मन्दिर के निकटस्थ पंचवटी का जंगल श्रीरामकृष्ण के लिए सबसे प्रिय-स्थान

---

* किसी विषय के 'हाँ ना' का निर्णय करने के लिए कागज पर लिखकर गोली बनाकर निकलवाना अथवा लाटरी जैसे।

हो गया। भैया की आँख बचाकर अवसर पाने पर वे इस निर्जन और जंगलपूर्ण स्थान में प्रवेश करके घण्टों गम्भीर ध्यान में तन्मय रहा करते थे। यह समय ही उनके लिए महाशान्तिमय अवसर होता था।

इसी प्रकार से प्रायः दक्षिणेश्वर में एक महीना व्यतीत हुआ। अपना भोजन बनाकर खाने और भैया की थोड़ी-बहुत सेवा-परिचर्या करने के अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण के लिए और कोई निर्दिष्ट कार्य न था। अपने मन की मौज में समय व्यतीत करने का यथोचित अवसर पाकर वह स्थान उनके लिए दिन-पर-दिन प्रिय होता गया। इसी समय रानी के जामाता मथुर बाबू की दृष्टि इस उदास शान्त-दर्शन युवक के ऊपर पड़ी, और न जाने क्यों उनके मन में इस ब्राह्मण-युवक के प्रति एक आन्तरिक आकर्षण उत्पन्न हो गया। युवक के विषय में पूछताछ के बाद जब मथुर बाबू को मालूम हुआ कि वह बड़े भट्टाचार्य (पुजारी रामकुमार) के छोटे भाई हैं, तब उस ब्राह्मण-युवक को देवी की सेवा में नियुक्त करने की प्रबल इच्छा उनके मन में हुई। रामकुमार से इस प्रसंग में बातचीत होने पर उन्होंने मथुर बाबू को अपने भाई की मानसिक अवस्था की बात स्पष्टतः बतला दी। सब बात सुनकर भी मथुर बाबू ने अपना संकल्प न छोड़ा, केवल उस संकल्प को कार्य में परिणत करने के सुअवसर की प्रतीक्षा में रहे।...

इसी समय कामारपुकुर के निकटवर्ती शिहर गाँव के हृदयराम मुखोपाध्याय नौकरी की खोज में दक्षिणेश्वर आये। हृदयराम श्रीरामकृष्ण के भानजे थे—फूफी की बेटी हेमांगिनी देवी के पुत्र। बाल्यावस्था में दोनों एकसाथ खेलते थे, हृदय अपने मामा के बड़े ही प्रिय थे। उस समय श्रीरामकृष्ण बीस वर्ष कुछ महीने के

थे—हृदय उनसे चार वर्ष छोटे। बाल्यकाल से ही परिचित हृदयराम के प्रति श्रीरामकृष्ण का आन्तरिक प्रेम किसी अज्ञात कारण से अधिक प्रगाढ़ हो गया था। हृदय भी अपने मामा को प्राणों से अधिक प्रिय मानते थे और उनमें परम आत्मीय भाव था। दक्षिणेश्वर के इस सम्पूर्ण भिन्न-परिवेष में दोनों ने परस्पर को पाकर परम आनन्द का अनुभव किया था यह निःसन्देह है।

सांसारिक सम्बन्धानुसार हृदयराम श्रीरामकृष्ण के भानजे थे। किन्तु स्वरूपतः वे थे युगावतार के सेवक सगी। अवतार के अन्यान्य पार्श्वचरों ने जिस प्रकार निर्दिष्ट कार्य के सम्पादनार्थ विभिन्न लोकों से आकर नर-शरीर में जन्म लिया था और युग-प्रयोजन को कार्यान्वित करके अपने अभीष्ट लोकों में चले गये थे, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण के शरीर-रक्षा रूप विशेष कार्य की पूर्ति के हेतु ही हृदयराम का जन्म हुआ था। श्रीरामकृष्णदेव ने भी परिवर्ती काल में कहा था—"यदि हृदय न रहता तो साधना के समय इस शरीर की रक्षा असम्भव होती।" इसी से हम देखते हैं कि दक्षिणेश्वर में प्रथम आगमन के दिन से दीर्घ पच्चीस वर्ष तक हृदय छाया की तरह अपने मामा के पास ही पास रहे थे। सोना, घूमना, उठना, बैठना सब एक ही साथ होता था। उस समय केवल मध्याह्न भोजन के समय एक दूसरे से अलग होते थे। श्रीरामकृष्ण उस समय भी स्वयं रसोई बनाकर खाते थे और हृदयराम प्रसाद पाते थे। हृदय भोजन बनाने का सब प्रबन्ध कर देते थे, किसी-किसी दिन मामा का प्रसाद भी ग्रहण करते थे। रात के समय दोनों ही देवी के प्रसाद की पूड़ियाँ खाते थे।

४

हम क्रमशः देखेंगे कि श्रीरामकृष्ण के पिता की मृत्यु, रामकुमार का कलकत्ता आना, दक्षिणेश्वर में मन्दिर-प्रतिष्ठा, उनका पूजक-पद स्वीकार करना, मथुरानाथ, हृदयराम, ब्राह्मणी और तोतापुरी स्वामी के साथ मिलन आदि, ये सब कुछ ही ईश्वरेच्छा से युगधर्म सस्थापन के अनुकूल घटनाएँ और प्रयोजनीय लोगों का समावेश मात्र है।...

एक दिन श्रीरामकृष्णदेव गंगाजी की मिट्टी से एक अत्यन्त सुन्दर और कोमल भावमय शिवमूर्ति बनाकर तन्मय भाव से पूजा कर रहे थे। इधर-उधर घूमते हुए मथुरबाबू उस स्थान पर आये। उस जीती-जागती मूर्ति और ध्यानस्थ पूजक को देखकर आश्चर्यचकित हो वे उसी स्थान पर खड़े हो गये। इस प्रकार की सुलक्षण-युक्त देवभावपूर्ण मूर्ति तो उन्होंने इससे पहले कभी नही देखी थी। पूछताछ करने पर जब उन्हे मालूम हुआ कि वह मूर्ति श्रीरामकृष्ण के अपने हाथों से ही निर्मित हुई है तब उनके विस्मय की सीमा नही रही। पूजा के अन्त में वह मूर्ति अपने को देने का अनुरोध करते हुए मथुरबाबू चले गये। हृदय द्वारा मूर्ति को पाकर वे इतने मुग्ध हुए कि उसे उन्होंने रानी के पास भेज दिया। उस छोटी-सी मूर्ति की निर्माणकला में मथुर-बाबू ने निर्माता के प्राणों का चित्र और भक्ति की गहराई का

परिचय पा लिया था। और उस दिन से छोटे भट्टाचार्य (श्रीरामकृष्ण) को देवी की पूजा-सेवा आदि में लगाने का उनका आग्रह और बढ़ गया।

रामकुमार के मुख से मथुरबाबू की इच्छा जानकर उसी दिन से श्रीरामकृष्ण यथासम्भव दूर-दूर ही रहने लगे। मनुष्य का दासत्व और दक्षिणा लेकर ठाकुरजी की पूजा — ये दोनों ही बातें उनके विवेक-विरुद्ध थीं।

एक दिन कालीमन्दिर में श्रीरामकृष्ण हृदय के साथ घूम रहे थे, दूर से देखकर मथुरबाबू ने उनको बुला भेजा। मथुरबाबू के नौकर के मुख से — बाबू आपको बुला रहे हैं — इन शब्दों को सुनकर वे बहुत ही चिन्तित हुए। हृदय ने मामा से जब चिन्ता का कारण पूछा तब उत्तर मिला — "मुझे तो नहीं मालूम, जाने पर ही मुझे यहाँ नौकरी करने को कहेंगे।" "इसमें दोष ही क्या है? ऐसा मनोरम स्थान और इतने बड़े व्यक्ति के आश्रय में काम मिल जाना तो अच्छी ही बात है" — हृदय ने कहा। किन्तु श्रीरामकृष्ण की चिन्तनधारा बिलकुल स्वतन्त्र थी। उन्होंने कहा — "नौकरी में फँसे रहने की मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है। इसके अतिरिक्त पूजा का भार लेने पर देवी के शरीर पर के कीमती गहनों का भी भार लेना पड़ेगा। यह सब मुझसे न होगा। अगर गहनों की जिम्मेवारी तू ले सके, तो पूजा-कार्य करने में मुझे विशेष आपत्ति नहीं है।" हृदय नौकरी की ही खोज में आये थे, अतः वे आनन्दपूर्वक राजी हो गये।

श्रीरामकृष्ण के मुख से सब बातें सुनकर मथुरबाबू अत्यन्त आनन्दित हुए — वे बोले — "यह तो बड़ी अच्छी और सुन्दर व्यवस्था हुई। तुम माँ के सजाने वाले (वेशकारी) होओगे और हृदय

तथा बड़े भट्टाचार्य (रामकुमारजी) तुम्हारी सहायता करें।

देवी-मन्दिर की प्रतिष्ठा के प्रायः तीन मास के अन्दऐसा देवी की पूजा-परिचर्या के लिए श्रीरामकृष्ण मन्दिर में आये । अपने हाथों से सुरभित फूलों की माला गूँथते थे । माँ को अपने मनोनुकूल सजाते थे। विह्वल हो मधुर कण्ठ से गीत गाकर माँ को सुनाते थे । दिन-रात मानो नशे के आवेश में बीत जाता था । फुरसत पाने पर ही वे पंचवटी के जंगल में अदृश्य हो जाते थे । हृदय मामा को न देखकर इधर-उधर फिरते थे । बहुत देर बाद फिर मामा को देख पाते थे । लेकिन मामा उन्हें कुछ उदास प्रतीत होते थे । प्रश्न करते थे — "इतनी देर कहाँ थे ? बहुत देर से तो आपको नहीं देखा ?" "अरे यहीं तो था ।" — टेढ़ा-मेढ़ा नर दे देते थे ।...

* * *

न्दिर-प्रतिष्ठा के बाद भादों (अगस्त-सितम्बर) का महीना दिन जन्माष्टमी का त्योहार मनाया जा चुका था । आनन्दोत्सव हुआ था । विशेष कर राधागोविन्द के में आज नन्दोत्सव है । खूब जमकर कीर्तन हो रहा था । हर के भोग के बाद गोविन्दजी को शयन कमरे में ले जाने के समय पूजक क्षेत्रनाथ का पाँव फिसल गया और मूर्ति समेत गिर पड़ने के कारण मूर्ति का एक पैर टूट गया । मन्दिर में बड़ा शोरगुल होने लगा । यह तो महा अमंगल की सूचना है । रानी यह सुनकर सिहर उठीं । अवश्य ही कोई सेवापराध हुआ है । अकल्याण के भय से सब लोग भयभीत हो उठे । अब उपाय ही क्या है ? प्रसिद्ध पण्डितों की सभा बुलायी गयी । पण्डितमण्डली ने यही विधान दिया — 'टूटे हुए विग्रह को गंगाजल में विसर्जित

परिचभी मूर्ति की प्रतिष्ठा की जावे।' मूर्ति बनवाने का आदेश (भी दिया गया। इतनी प्रेम-भक्ति से पूजित ठाकुरजी को एक बात में ही जल में विसर्जित किया जाय! मथुरबाबू का हृदय महान् शोक से विचलित हो गया। उन्होंने रानी माँ से कहा—"इस विषय में एक बार छोटे भट्टाचार्य (श्रीरामकृष्ण) का क्या मत है, क्यों न जान लिया जाय?"

श्रीरामकृष्ण के जगज्जननी के वेशकारी के पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद से मथुरबाबू रामकुमार को बड़े भट्टाचार्य और श्रीरामकृष्णदेव को छोटे भट्टाचार्य कहते थे और यदा-कदा उन्हें भगवद्भाव में आविष्ट होते देखकर उसी समय से मथुरबाबू की दृष्टि छोटे भट्टाचार्यजी के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुई थी। मथुरबाबू के कहने पर रानी भी सम्मत हो गयी। टूटी हुई मूर्ति के सम्बन्ध में मथुरबाबू का प्रश्न सुनकर श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो बोले—"रानी के जामाताओं में यदि किसी का पैर टूट जाता, तो क्या उसका त्याग करके किसी दूसरे को उनके स्थान में ले आती? अथवा, उसकी चिकित्सा की व्यवस्था की जाती? यहाँ भी वही किया जाय। मूर्ति का टूटा हुआ पैर जोड़कर जैसी पूजा होती थी वैसी ही होती रहेगी।"

इतना सहज समाधान सुनकर सब स्तम्भित हो गये। आत्मवत् सेवा। गोविन्दजी के दिव्य आविर्भाव का विग्रह! उसे फेंक दिया जावे! श्रीरामकृष्ण की यह व्यवस्था ब्राह्मणों को एकदम मनोनुकूल न हुई। वे आपस में कहने लगे—यह कैसी बेढंगी बात है। भग्न विग्रह की पूजा कैसे सम्भव है? परन्तु छोटे भट्टाचार्य की यह प्रेमपूर्ण व्यवस्था रानी और मथुरबाबू को इतनी मनोनुकूल हुई कि वे दोनों ही आनन्द-विभोर हो गये।

रानी के दोनो नेत्र अश्रु-पूरित हो गये।...

आज्ञा पाकर श्रीरामकृष्ण ने विग्रह के टूटे पैर को ऐसा बेमालूम जोड़ दिया कि जोड़ने का दाग तक न दिखायी दिया। उसी मूर्ति की सेवापूजा चलने लगी। बहुत दिन बाद वराहनगर के कूटीघाट में एक दिन वहाँ के प्रसिद्ध जमीदार जयनारायण वन्द्योपाध्याय ने श्रीरामकृष्ण से बातचीत मे पूछा था—"महाशय? क्या वहाँ के गोविन्दजी टूटे है?"

उसके उत्तर में श्रीरामकृष्ण ने कहा था,—"अरे आपकी यह कैसी बुद्धि है जी? जो अखण्डमण्डलाकार है क्या वे कभी टूटे हो सकते है?"

नयी मूर्ति आ गयी, परन्तु वह मन्दिर मे ही रखी रही। उसका प्रतिष्ठाकार्य नही हुआ *। असावधानता के कारण पूजक क्षेत्रनाथ की नौकरी चली गयी। उसी समय से गोविन्दजी की पूजा का भार छोटे भट्टाचार्य के ऊपर आ पड़ा। हृदयराम काली माता के वेशकारी नियुक्त हुए।

* * *

काशीपुर उद्यान में अपनी अन्तिम बीमारी के समय एक दिन गम्भीर समाधि में से जगकर भावावेश मे श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था—"इसके भीतर 'दो' है—एक वे (स्वय भगवान्) और

---

* रानी रासमणि और मथुरानाथ की परलोकप्राप्ति के बाद उनके वशधरों में से किसी-किसी ने इस नयी मूर्ति की यथाविधि प्रतिष्ठा का आयोजन किया था। किन्तु उसी समय पारिवारिक विघ्न, दुर्घटना आदि आ पड़ने के कारण यह आयोजन कार्यान्वित नही हुआ।

गोविन्दजी की यह नयी मूर्ति अब भी मन्दिर में उसी प्रकार रखी हुई है।

दूसरा भक्त (भगवान् भक्त के रूप में)।"

अब की बार उनकी भक्तिभाव की लीला थी। भक्त रूप में ही उन्होंने एकाग्र साधना और अभिनव लीला की थी। यह सब कुछ ही था आदर्श उपस्थित करने के लिए—विस्मृत और दीर्घ-विस्मृत सनातन धर्म की युगोपयोगी नव आदर्श द्वारा पुन प्रतिष्ठा के हेतु।

भक्त रूप म उन्होंने जिस भवतारिणी की पूजा की थी, उसके माध्यम से मूर्ति-पूजा का गूढ मर्म उद्घाटित हुआ और ससार को सत्य-शान्ति लाभ के लुप्त सहज मार्ग की खोज मिली। निराशा-पीडित जनो ने हृदय को पूर्ण करने वाली आशा और आनन्द की वाणी सुनी।

यह मार्ग-निर्देश केवल हिन्दू जाति और भारतवर्ष के लिए ही न था। वल्कि यह आदर्श था समस्त मानव-जाति और सर्व-धर्मावलम्बियो के लिए। अव हम श्रीरामकृष्णदेव को दीनहीन भक्त पुजारी रूप में देख पावेंगे और देखेंगे उन्ह व्याकुल अकिंचन भक्त क रूप में। उनकी यह लीला अनुपम ही थी।

*   *   *

श्रीरामकृष्ण की पूजा तो केवल विग्रह की पूजा नही थी। वह तो थी चिन्मय की पूजा देवता की पूजा। उनकी पूजा देखने के लिए मुग्ध हुए लोग कतार बाँधे खडे रहते थे। परवर्तीकाल में इस पूजाकालीन अवस्था के विषय में श्रीरामकृष्णदव ने कहा था—"अगन्यास, करन्यास आदि पूजा के अगो को सम्पन्न करते समय उन सब मन्त्रो को मैं उज्ज्वल वर्ण म अपनी दह में सन्निवेशित देख पाता था। र इति जलधारया वह्निप्राकार विचिन्त्य' इत्यादि मन्त्र उच्चारण करके अपने चारो ओर जल छिडककर

जब मैं ध्यान करता था उस समय मुझे दिखायी पड़ता था। ओर सैकड़ो जिह्वाएँ फैला कर अग्नि-देव दुर्भेद्य प्राचीर की पूजा-स्थान की सारे विघ्नों से रक्षा कर रहे हैं। कुण्डलिनी ध्यान के समय मैं देखता था —सर्पाकृति कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना के मार्ग से सहस्रार मे उठ रही है। और शरीर के जिन अंशों का अतिक्रमण करती हुई यह शक्ति ऊर्ध्वगामिनी हो रही है, वे सब अंश एकदम जड़वत् स्पन्दनहीन हुए जा रहे है।"...

पूजा के समय श्रीरामकृष्ण की तेजःपुज देह और तन्मनस्क विह्वल भाव मे घण्टों ध्यानस्थ बैठे हुए देखकर लोग आपस मे कहा करते थे—मानो स्वय ब्रह्मण्य-देव पूजा मे बैठे हुए है। ध्यान-विलीन अन्तःकरण से वे देखते थे —श्रीभगवान् का दिव्य प्रकाश। आनन्द से उनका हृदय परिपूर्ण हो जाता था और आनन्दाश्रु वक्ष.स्थल पर से बह निकलते थे। पूजा-समाप्ति के बाद हार्दिक आवेग के साथ वे मधुर कण्ठ से गान किया करते थे। उस गान मे कितनी भावुकता और आत्म-विस्मृति थी! सारा मन्दिर मानो दिव्य प्रकाश से उद्भासित हो उठता था। ऐसा मालूम पडता था मानो देवता कान लगाकर सुन रहे हों—उस हृदय के आवेग को।...

देवी-साधक रामकुमार ने जब भाई को देवी की पूजा का भार ग्रहण करते हुए देखा तो उन्हे बडा आनन्द हुआ। वे केवल आनन्दित हुए, इतना ही नही बल्कि निश्चिन्त भी हो गये। जो भी हो, उन्होंने सोचा लड़का काम में तो लगा। किन्तु श्रीरामकृष्ण का वही उदास भाव, पंचवटी मे अकेले चुपचाप बैठे रहना, अधिकाधिक ध्यान करना, निःसंग भाव से रहना—ये सब बातें देखकर कभी-कभी रामकुमार की चिन्ता बढ़ जाती थी। किन्तु, उनकी भक्ति-भाव की पूजा देखकर मथुरबाबू अत्यन्त मुग्ध थे।

दूसरा ? रामकुमार ने सोचा -- उसको पूजा करना अच्छी तरह । दूं । उस समय से गदाधर को दुर्गापाठ, काली माता एव में याय देव-देवियो की पूजादि विशेष रूप से सिखाने लगे। श्रीरामकृष्ण ने भी थोडे ही दिनो में सब पूजा आदि कार्य सीख लिये और शक्ति-मन्त्र में दीक्षा लेने के लिए राजी हो गये । एक शुभ दिन निश्चित हुआ और कलकत्ते के बैठकखाना नामक मोहल्ले के शक्ति-साधक केनाराम भट्टाचार्य के द्वारा दीक्षा हुई । शक्ति-मन्त्र प्राप्त करते ही श्रीरामकृष्ण भावावेश मे समाधिस्थ हो गये थे । शिष्य की भक्ति की गम्भीरता देखकर गुरु स्तम्भित रह गये और उन्होने हृदय खोलकर शिष्य को आशीर्वाद दिया ।

भाई को माँ की पूजा में नियुक्त करके रामकुमार ने विष्णु मन्दिर का पूजक होने की इच्छा प्रकट की। मथुरबाबू तो हृदय से यही चाहते थे । श्रीरामकृष्ण देवी के पुजारी नियुक्त हुए । अब रामकुमार पूर्णरूपेण निश्चिन्त हो गये। श्रीरामकृष्ण अत्यन्त दक्षता से देवी की पूजा करन लगे। रानी और मथुरबाबू उनकी भावपूर्ण पूजा देखकर मुग्ध हो जाते थे। ज्यो-ज्यो दिन बीतने लगे त्यो-त्यो उनकी छोट भट्टाचार्य क प्रति श्रद्धा और आकर्षण बढने लगा । रामकुमार न अब निश्चिन्तता मे कुछ दिनो के लिए कामारपुकुर घूम आने की बात सोची। हृदयराम विष्णु-मन्दिर के पुजारी नियुक्त हुए । इधर रामकुमारजी अवकाश प्राप्त कर घर-जाने का प्रबन्ध करन लगे। किन्तु कामारपुकुर जाने से पहले उन्हे विशेष कार्यवश श्यामनगर मूलाजोड जाना पडा । वहाँ वे अकस्मात् बीमार हो गये और वही उनकी मृत्यु भी हो गयी। दक्षिणेश्वर में श्रीजगन्माता की प्रतिष्ठा करने के एक वर्ष बाद ही रामकुमार ने शरीर छोडा ।

५

पिताजी की मृत्यु ने श्रीरामकृष्ण के हृदय में संसार की अनित्यता के सम्बन्ध में विशेष प्रभाव डाल दिया था। अब पितृतुल्य ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु के कारण उनकी अन्तर्निहित वैराग्याग्नि और अधिक प्रज्वलित हो उठी। अनित्य संसार, क्षणस्थायी जीवन, मान-यश, पार्थिव सम्पद्, आदि कितने तुच्छ हैं! तो भी जीवमात्र ही उन्हीं अनित्य वस्तुओं को पकड़े हुए पड़े है। शरीर का नाश अवश्यम्भावी, मृत्यु सुनिश्चित, तथापि! . . .

बड़े भाई का मृत्युजनित शोक श्रीरामकृष्ण के मन में तीव्र अनुराग में रूपान्तरित हुआ। वह स्व-स्वरूप में स्थित होकर सत्-चित्-आनन्द में डूबे रहने के लिए व्याकुल हो उठे।

* * *

परवर्ती समय में श्रीरामकृष्णदेव ने अपने शरीर की ओर अंगुली-निर्देश से अपने भावी वार्तावह त्यागी सन्तानों से कहा था—"यहाँ का (साधन-भजन) जो कुछ किया गया है वह तुम लोगों के लिए. . .और सार्वजनीन दृष्टान्त के लिए है। . . . मेरे सोलह आने करने पर कदाचित तुम लोग एक आना करोगे।" श्रीरामकृष्ण के जीवन का प्रत्येक कार्य ही दृष्टान्त के लिए—भविष्यत् का दिग्दर्शन है। उस समय से दीर्घ द्वादश वर्ष व्यापी जो कठोर साधना उन्होंने की थी वह जगत् के कल्याणार्थ ही थी।

४० , जिस महान् धर्म का प्रचार करने के लिए आये थे, जिस शान्ति-समन्वय और ऐक्य की वाणी संसार को सुनाने के लिए उनका आविर्भाव हुआ था—अपने जीवन को ही उन्होंने उसका पूर्ण आदर्श—सजीव प्रमाण बना दिया। जिस प्रतिमा पूजा के विरुद्ध भारत और अन्य देशों में जोर की आँधी बह रही थी, वह मूर्तिपूजा ही उनके जीवन की यात्रा-मार्ग का प्रथम निर्देश चिह्न हुई। दक्षिणेश्वर में भवतारिणी मूर्ति की पूजा का अवलम्बन करते हुए उनकी सत्यप्रतिष्ठा आरम्भ हुई।

* * *

इसी समय से श्रीरामकृष्ण का सारा समय अपार्थिव वस्तु के ध्यान और चिन्तन में व्यतीत होने लगा। पूजा के अनन्तर मन्दिर में बैठे हुए जगन्माता से वे अपने हृदय की तीव्र व्याकुलता व्यक्त करते थे और भजन और संगीत के द्वारा प्रार्थना किया करते थे। कैसी तन्मयता से युक्त विह्वलता का भाव! दोपहर के समय मन्दिर का द्वार बन्द होने पर वे पंचवटी में चले जाते थे और वहाँ गम्भीर ध्यान में मग्न हुए रहते थे। आहार में उदासीनता, निद्रा में विरति प्रतिक्षण तन्मय भाव! जीवन के अन्तिम दिनों में अपने एक त्यागी शिष्य से उन्होंने कहा था—"चौदह वर्ष तक मैं नहीं सोया।" वे गाया करते थे—

"घुम भेंगछे आर कि घुमाइ जोगे जागे जेगे आछि।
ए बार जार घुम तारे दिये (माँ), घुमेरे घुम पाड़ायेछि॥"

"नींद टूट गयी है, फिर मैं कैसे सो सकता हूँ, योग याग में जगा रहता हूँ। अबकी जिसकी नींद है उसे देकर (माँ), नींद को ही सुला दिया है।"

निस्तब्ध रात्रि। मन्दिर बन्द। सभी सो रहे हैं। परन्तु

श्रीरामकृष्ण की आँखों में निद्रा नही थी। वे विस्तर छोड़ निकल पड़े। सारी रात पंचवटी के जगल में एक आँवले के वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यानस्थ रहने लगे। सब लोगों के अलक्ष्य में भोर होने पर जब वहाँ मे लौटते थे उस समय उनकी दृष्टि होती थी उद्भ्रान्त और आँखें लाल।

एक दिन रात के द्वितीय प्रहर में हृदयराम की निद्रा अकस्मात् भग हुई। देखा —— मामा विस्तरे पर नही हैं। वह कहाँ गये है ? यह सोचते हुए चिन्तित हृदयराम भी सारी रात न सो सके। इसी क्रम से रात्रियाँ व्यतीत होती रही। एक रात्रि को हृदयराम सोने का बहाना करके आँख मूँदे हुए बिछौने पर पड़े रहे। देखा, मामा बिछौना छोडकर चल पड़े है पचवटी की ओर। वे भी चुपचाप दूर रहते हुए पीछे-पीछे चलने लगे। लेकिन उनके देखते-देखते ही मामा जगल के भीतर अन्तर्हित हो गये। वे आश्चर्यचकित हुए बहुत देर तक खड़े रहे। फिर भी जब मामा नही लौटे तब वे जगल में ढेले फेंकने लगे। प्रगाढ़ नि:शब्दता भंग होने के अतिरिक्त उनके ढेले फेकने का कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। प्रति रात्रि मे हृदय का इस प्रकार डराना जारी रहा। परन्तु इस पर भी मामा को प्रतिनिवृत्त करने में असमर्थ होकर एक दिन वे पूछ बैठे —— "रात्रि के समय उस घने जंगल मे जाकर क्या करते हो, बतलाओ तो ?" उन्होने उत्तर दिया —— "वहाँ एक आँवले का पेड़ है। उसके नीचे बैठकर ध्यान करता हूँ। शास्त्र मे कहा है —— आँवले के वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान करने से सारी कामनाएँ सिद्ध होती है।"

अन्य एक रात्रि को भूतप्रेतो के स्थल कवरडाँगा के जगल मे उनके प्रवेश करने के थोड़ी देर बाद हृदय चुपचाप जाकर दूर

से देखने लगे — मामा बिलकुल नग्न बैठे हुए ध्यान मे मग्न है। हृदय सोचने लगे — क्या मामा पागल हो गये है! नग्न हो बैठना — यह कैसी अजीब बात है! साहस के साथ पास जाकर देखा — मामा ने यज्ञोपवीत भी निकाल डाला है। तब ऊँचे स्वर मे पुकारने लगे — "मामा, ओ मामा!" बहुत देर तक पुकारने के बाद उनका ध्यान भग होने पर हृदय पूछने लगे — "यह क्या हो रहा है! जनेऊ कपडा फेंककर नग्न हुए कैसे बैठे हो?" शून्य दृष्टि से हृदय के मुख की ओर देखते हुए वे कहने लगे — "हृदु, तुझे क्या मालूम? इसी प्रकार पाशमुक्त होकर ध्यान करना होता है। लज्जा, घृणा, भय, जाति-अभिमान—ये सब एक-एक पाश है, इन सब पाशों से मुक्त हो माँ को पुकारा जाता है। इसी से ये सब खोल रखे है। ध्यान समाप्त होने के बाद लौटने के समय पुन. पहन लूँगा।" यह उत्तर सुनकर हृदय स्तम्भित हो गये। . .

जगन्माता के दर्शन की व्याकुलता श्रीरामकृष्ण के हृदय में प्रतिदिन बढने लगी। और भी अधिक समय मन्दिर में व्यतीत होने लगा — माता की पूजा-सेवा मे। पूजा करने बैठे तो पूजा समाप्त ही नही होती थी। माँ को फूल-चन्दन से अपनी रुचि के अनुसार सजाते थ। देवी के श्रीअग के स्पर्श में उन्हे कोमल स्पर्श प्राप्त होता था। सारा अग सिहर उठता था। सोचते थे — माँ तो पाषाणमयी नही है। यह मेरी माँ तो चिन्मयी है!

तन्मयता बढने लगी। माँ को कितना ही सजाते हैं, कितने उपचारो से सेवा करते हैं — तो भी तृप्ति नही होती। आरती आरम्भ की है, पर वह समाप्त ही नही होती। घण्टों तक चलती रही, तो भी विराम नही। यह तो भगवती की आरती है!

मथुरबाबू छोटे भट्टाचार्य (श्रीरामकृष्ण) की यह भाव-

विह्वल पूजा देखकर मुग्ध हो जाते थे।

'क्या प्रतिमा की इस प्रकार सेवा पूजा करना सम्भव है?' ——वे सोचते थे। बाद में रानी से उन्होंने कहा था——"महान् सुकृति के फलस्वरूप यह अद्भुत पुजारी हमको प्राप्त हुए हैं। श्रीदेवी शायद शीघ्र ही जागृत हो उठेगी।".

इधर श्रीरामकृष्ण का अलौकिक व्यवहार, दिव्य भावावेश, गम्भीर अभिनिवेश देखकर कितने ही लोग आपस में चर्चा करने लगे——छोटे भट्टाचार्य का मस्तिष्क विकृत हो गया है। और कोई-कोई यह भी कहते थे कि उन्हें भूतावेश हुआ है। उनका मन और प्राण दिनोदिन जगन्माता के भाव-समुद्र में डूबे जा रहा था। यह तीव्र व्याकुलता और तन्मयता धीरे-धीरे इतनी बढ़ गयी कि सन्देह होने लगा कि यथाविधि पूजा कर सकना उनके लिए शायद अब सम्भव न होगा। आहार में उदासीनता तथा निद्रा में विमुखता के कारण शरीर क्रमशः क्षीण होने लगा। वक्षःस्थल लालिमायुक्त और आँखें हर समय सजल रहने लगीं। हर समय एक अव्यक्त अशान्ति रहती थी। अन्तर्दाह से छटपटाते थे और मुख से 'माँ माँ' आर्तनाद करते थे।.

तीव्र व्याकुलता के कारण कभी-कभी वे अकस्मात् धड़ाम से जमीन पर गिर जाते और लोटपोट होने लगते। लोग उदर-शूल समझते। देवी के मन्दिर में सन्ध्या की आरती में मंजीरा, घड़ियाल (ताल), घण्टा आदि बज उठे हैं। इधर वे दिव्य उन्माद में रोते-रोते व्याकुल हो रहे हैं——"माँ और एक दिन बीत गया, तेरा दर्शन तो नहीं मिला? दिन पर दिन आयु क्षीण होती जा रही है ——हे माँ, तुझे दया नहीं आती? अभी तक मुझे दर्शन नहीं दिया।" उस रुदन की व्याकुलता से पत्थर भी पिघल जाता था।...

अबोध शिशु के व्याकुल क्रन्दन को सुनकर क्या माँ उसे गोद में बिना लिये रह सकती हैं ? और कितने दिन तक वे छिपी रहेंगी । चिन्मयी आनन्दमयी रूप में माँ अपने बच्चे के सामने आ खडी हुईं । बालक को गोद में खीच लिया ।

उस दर्शन के सम्बन्ध मे बाद म किसी समय उन्होने कहा था—.. "उस समय एक दिन मैं जगन्माता को गाना सुना रहा था, और रो-रोकर प्रार्थना कर रहा था—'माँ तुझे इतना पुकार रहा हूँ क्या तुझे कुछ भी सुनायी नहीं पडता ? रामप्रसाद को दर्शन दिया था, क्या मुझे नही देगी ?' माँ का दर्शन न होने के कारण उस समय हृदय मे असह्य वेदना थी, लोग जिस प्रकार गमछे को जोर से निचोडते है वैसे ही मानो हृदय को कोई जोर से निचोड रहा हो ! माँ का दर्शन शायद किसी समय भी नही होगा यह सोचकर भारी वेदना से मैं छटपटाता था । चचलचित्त होकर यह सोचने लगा—तो अब इस जीवन का क्या प्रयोजन ? माँ के मन्दिर म जो खड्ग रखा हुआ था, उस पर मेरी दृष्टि सहसा पडी । इसी क्षण इस जीवन का अवसान कर दूंगा यह सोचकर मैं उस खड्ग को लेने दौडा । उसी समय माँ का अद्भुत दर्शन मिला और मैं बाह्यज्ञान से शून्य होकर गिर पडा । इसके अनन्तर बाहर क्या हो रहा है, किस प्रकार वह दिन और दूसरा दिन बीत गया यह कुछ भी न जान सका । किन्तु हृदय म प्रतिक्षण, वह रह था एक अननुभूत और अभूतपूर्व आनन्द का स्रोत और मैं माँ के साक्षात् प्रकाश का अनुभव कर रहा था ।"

इसी दर्शन के प्रसग में अन्य किसी समय उन्होने कहा था — "द्वार मन्दिर मानो सब कही लुप्त हो गया । कहीं कुछ भी न था । केवल एक ही अनन्त असीम चेतन-ज्योति-समुद्र !

जिस ओर जितनी दूर तक दृष्टि जाती थी — चारों ओर उसकी उज्ज्वल तरंगें एक के बाद एक भीषण गर्जन करती हुई मेरे ऊपर तीव्र वेग से उमड़ रही थी। क्षण भर में मुझे आच्छन्न कर डाला। साथ ही मुझे मानो अथाह सागर के नीचे डुबा दिया। उस चैतन्य-समुद्र के तरंगों में गोता खाते हुए मैं बाह्य-संज्ञा रहित होकर गिर पड़ा।"...इस प्रथम दर्शन के समय उन्हें जब किंचित् बाह्य-चेतना प्राप्त हुई, उसी समय वे करुण स्वर मे 'माँ माँ' कहकर आर्तनाद कर उठे थे।

पूर्वोक्त दर्शन का उल्लास समाप्त होने के साथ ही उनका हृदय व्याकुल हो उठा —— जगन्माता के अविच्छिन्न दर्शन के लिए। चाहते थे——निरन्तर माँ का प्रकाश——माँ में लीन रहने की अवस्था। अबोध शिशु की तरह माँ की गोद छूटने मात्र से ही वे रो पड़ते थे। अपलक नेत्रों से प्रतिक्षण माँ को ही देखना चाहते थे। माँ को छोड़कर और कुछ नही चाहते थे। माँ का दर्शन न होने पर हृदय की शून्यता और व्यथा कभी-कभी इतनी बढ़ जाती थी कि उसे दबा न पाते थे। वेदना के कारण जमीन पर लोटपोट होते थे और माथा रगड़ते हुए रोते थे — 'माँ दर्शन दे, दर्शन दे।' उनके इस अद्भुत अवस्था को देखने के लिए चारों ओर लोगों की भीड़ लग जाती थी। उस असह्य व्याकुलता के समय 'माँ वराभया चिन्मयी रूप में दर्शन देती थी। कभी हँसकर बात करती थी, कितने ही प्रकार से उन्हें प्यार करती थी और सान्त्वना देती थी।'

६

जगन्माता के प्रथम दर्शन के अनन्तर उनके लिए कई दिनों तक मन्दिर के पूजा आदि कार्य कर सकना असम्भव हो उठा। हृदयराम ने अन्य एक ब्राह्मण के द्वारा पूजा आदि करा दी और वायु-रोग का सन्देह करते हुए भू-कैलास के राजवैद्य के द्वारा मामा की चिकित्सा आदि कराने लगे किन्तु यह तो था भावरोग! वैद्यक-चिकित्सा से भला क्या आराम होता ?

जिस दिन कुछ होश रहता था उस दिन वही पूजा करने जाते थे। वह पूजा भी अति अद्‌भुत होती थी। पूजा में बैठने के बाद तुरन्त ही ध्यानावस्थित हो निश्चल हो जाते थे। बाद में उन्होंने अपने त्यागी शिष्यों से कहा था—"माँ के मन्दिर के सामने वाले बरामदे के ऊपर जो ध्यानस्थ भैरव की मूर्ति है, ध्यान करने जाते समय उस मूर्ति को दिखलाते हुए अपने मन से मैं कहता था—'मन, इसी प्रकार स्थिर निश्चल भाव से बैठकर माँ के पादपद्मों की चिन्ता करना।' ध्यान करने बैठते ही सुनता था, शरीर की सम्पूर्ण ग्रन्थियाँ पैर की ओर से ऊपर खटखट शब्द करती हुई एक के बाद एक मानो भीतर से जकड़ी जा रही हों। ध्यान के समय थोड़ा-सा भी हिलने-डोलने यहाँ तक कि आसन-परिवर्तन करने का भी सामर्थ्य नहीं रहता था।... ध्यान में बैठने पर पहले अनेक ज्योतिबिन्दु दीख पड़ते थे, क-

दीख पड़ता था कि पुंजीभूत ज्योति चारों ओर फैल गयी और कभी-कभी पिघली चाँदी के समान उज्ज्वल ज्योतितरंगों से सब कुछ आच्छादित दिखाई देता था।...आँखें मूँदे हुए, पुनः आँखें खुले हुए भी ये सब दर्शन होते थे।"...

इसी समय श्रीरामकृष्णदेव का पूजादि भी दिन पर दिन नूतन भाव धारण करने लगा। विधि-निषेध की सीमा को प्लावित करता हुआ सब कुछ चल पड़ा असीम भावसमुद्र की ओर। इस समय तो वे पाषाणमयी प्रतिमा नहीं देख रहे थे—देख रहे थे प्राणमयी जाग्रत् देवी-मूर्ति। माँ हँस रही है, बोल रही हैं। यह करो, उसे न करो, कहती हुई आदेश दे रही है।...

पहले देवी को भोग-निवेदन करने के अनन्तर देखते थे कि देवी के 'नेत्रों से चमचमाती हुई अपूर्व ज्योति-रश्मि निकल कर निवेदित अन्नादि का स्पर्श करती थी।' और अब देखते हैं—भोगनिवेदन करते ही, कभी निवेदन करने के पूर्व ही माँ अपनी अगज्योति से मन्दिर को आलोकित करती हुई खाने बैठी है।' हृदयराम ने एक दिन देखा—"मामा हाथ में अर्घ्य लिये हुए तन्मय होकर ध्यानमग्न है। एकाएक चिल्लाकर कहने लगे—'अच्छा' ठहर-ठहर, पहले मन्त्र कह लूँ उसके बाद खाना।' और पूजा समाप्त करने के पहले ही भोग-निवेदन कर दिया।"...

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे—' माँ की नाक के पास हाथ रखकर देखता, माँ सचमुच ही साँस ले रही है। बार-बार अच्छी तरह देखने पर भी रात के समय दीपक की ज्योति में मन्दिर में माँ के दिव्यांग की छाया पड़ते हुए कभी न देखा। अपने कमरे में बैठकर मैं सुनता था, माँ नूपुर पहने हुए बालिका के समान आनन्द में झम झम शब्द करती हुई मन्दिर के ऊपर उठ रही हैं।

शीघ्रता से कमरे के बाहर निकलकर देखता था—माँ मन्दिर की दूसरी मंजिल के बरामदे म खुले केश, कभी कलकत्ते की ओर देख रही हैं—कभी गंगाजी के दर्शन कर रही है।"

पुन अर्घ्य सजाकर प्रथम उस अर्घ्य द्वारा अपने मस्तक, वक्ष स्थल, सब अंग, यहाँ तक कि अपने चरणो का भी स्पर्श करके फिर वह अर्घ्य जगन्माता के पादपद्मो में अर्पण करते थे। क्या यह सर्वत्र दिव्य दर्शन था, अथवा देवी के साथ अपना अभेद-बोध अथवा अपने भीतर ओतप्रोत रूप से देवी के प्रकाश का अनुभव करना . ?

कभी-कभी वे सिंहासन के ऊपर उठकर माँ को खिलाते थे। "खा, माँ खा—अच्छी तरह खा।" इसके बाद कभी-कभी कहते थे—"मै खाऊँ, अच्छा खाता हूँ।"—यह कहते हुए स्वयं थोडासा खाकर माँ के मुख में डालते थे।

इस समय से जगन्माता प्रतिक्षण उनके साथ-साथ उनकी सारी चेतना मे परिव्याप्त होकर रहती थी। माँ के साथ वार्तालाप, हँसी-मजाक, कौतुक-परिहास, मान-अभिमान—सब कुछ। छोटे भट्टाचार्य के इस अद्भुत क्रियाकलाप के प्रति कालीमन्दिर के कार्यकर्ताओ की दृष्टि पड़ी—पूजा के नाम पर यह सब अवैध कर्म ! भट्टाचार्य का दिमाग अवश्य खराब हो गया है। इस प्रकार के अनाचार मे तो महान् अकल्याण होगा। सब लोग चिन्तित हो उठे। सब वृत्तान्त विशद रूप मे जता कर कार्यकर्ताओ ने मथुरबाबू को जानबाजार में चिट्ठी लिखी। उन्होंने सन्देश भेजा—"मैं स्वयं आकर इसकी यथावत् व्यवस्था करूँगा।"

किसी को कुछ भी सूचना न देकर एक दिन मथुरबाबू पूजा के समय सीधे मन्दिर में आ उपस्थित हुए। कौन मा . मे

आता-जाता है, इस ओर भाव-विह्वल पूजक का तनिक भी ध्यान न था। वे तो विभोर और मस्त थे — अपनी माँ को लेकर। पूजा करते हुए कभी वे व्याकुल होकर रोते थे, कभी आनन्द के उल्लास में जोर से चिल्ला उठते थे। बातचीत कर रहे थे, मान कर रहे थे — माँ के साथ लाड़ले बालक की तरह। मन्दिर देवी के प्रकाश में झिलमिला रहा था। देखते-देखते मथुरबाबू का शरीर कण्टकित होने लगा। वे स्तब्ध हो गये। "ऐसा भाग्य ! यह क्या देख रहा हूँ, मेरा मानव-जन्म सार्थक हो गया।" — वे पुलकित होकर सोचने लगे। आँखों में आँसू आ जाने के कारण दृष्टि धुधली हो गयी, और वे कुछ न देख पाये। आँखें पोंछते हुए जिस प्रकार आये थे वैसे ही मन्दिर से बाहर निकल कर जानबाजार में लौट गये। "देवी की प्रतिष्ठा सार्थक हुई। इतने दिनों के बाद जगज्जननी वास्तव में आविर्भूत हुई हैं। यही तो माँ की वास्तविक पूजा है —" मथुरबाबू विचार में डूब गये। दूसरे दिन मन्दिर के प्रधान कर्मचारी को निर्देश मिला — "भट्टाचार्य महाशय जैसी इच्छा हो पूजा करें, उन्हें कोई भी बाधा न दे।"

उसी दिन से श्रीरामकृष्ण के प्रति मथुरबाबू का आकर्षण गम्भीर श्रद्धा में परिणत हो गया। क्रमशः और भी अनेक तरह से परिचय पाकर विद्वान् अनुभवी मालिक मथुरबाबू जीवन के अन्तिम दिन तक उनके अन्तरंग सेवक बने रहे।...

* * *

जगन्माता को लेकर ठाकुर ‡ का गम्भीर निवेश, भावावेश

---

‡ श्रीरामकृष्ण को भक्तगण 'ठाकुर' भी कहा करते थे। इस ग्रन्थ अब हम इस नाम का भी उल्लेख करेंगे।

और आनन्द-विलास क्रमशः इतना अधिक बढ़ चला कि उनमें नियमित आनुष्ठानिक पूजा अब सम्भव न रही। कभी तो पूजा किये बिना ही वे भोग का निवेदन कर देते, कभी पूजा में बैठकर फूल, चन्दनादि से आत्मपूजा कर डालते, फिर कभी माँ के क्षण भर के अदर्शन-विच्छेद से प्रलय जैसा हो जाता। 'माँ! माँ!' कहकर भूमि पर गिर पड़ते। सारा शरीर रक्ताक्त हो जाता। माँ के अदर्शन से श्वासरोध हो जाता, हृदय तड़पता रहता। जल में गिर रहे हैं या आग में, उसका ख्याल ही न रहता। साथ ही सारे शरीर में भीषण ज्वाला होने लगती। विरहाग्नि के ताप से उनका सर्वांग जलने लगता। घण्टों गंगा के जल में डूबे रहने पर भी उस दाह की शान्ति न होती थी।

हृदय ने वैद्यक तेल की मालिश की। औषधि सेवन करायी, लेकिन कुछ फल न हुआ। छः महीने तक शरीर का दाह चलता रहा। एकाएक एक अनोखे उपाय से यह गात्रदाह कुछ शान्त हुआ। उन्होंने कहा था—"एक दिन मैं पंचवटी में बैठा था। सहसा दिखायी पड़ा कि एक भयंकर काला आदमी लाल-लाल आँखें किये गिरते-पड़ते (अपने शरीर को दिखाकर) इसके भीतर से निकल कर सामने टहलने लगा। दूसरे ही क्षण देखा, एक सौम्य गरुआधारी पुरुष ने त्रिशूल हाथ में लिये इस शरीर के भीतर से निकलकर उस भयंकर वाले आदमी को अपने हाथ के त्रिशूल से मार डाला। उस दिन से गात्रदाह भी घट गया। उससे पहले असहनीय ज्वाला ने छः महीने तक बहुत कष्ट दिया था।"

उस समय गात्रदाह तो कम हो गया, परन्तु उन्माद-भाव का ह्रास न हुआ, बल्कि भावावेश क्रमशः बढ़ता ही गया था।

अकस्मात् एक दिन उस दिव्य उन्माद के एक अस्वाभावि-

व्यवहार से मन्दिर में हलचल मच गयी। बहुत ही विपरीत घटना हुई, रानी देवीदर्शन के लिए आयी थी। गंगा-स्नान करके मन्दिर में आकर वह श्रीमूर्ति के सामने पूजा-अर्चना करने बैठी। रानी ठाकुर के मधुर कण्ठ का मातृनाम गान सुनना पसन्द करती थी। कानों में मानो सुधा का वर्षण होता हो। पूजा करते हुए उन्होंने ठाकुर को माँ के भजन गाने के लिए अनुरोध किया। ठाकुर भी रानी माँ के पास बैठकर भाव-विभोर हो रामप्रसाद, कमलाकान्त आदि भक्तसाधकों के रचित गान गाने लगे। रानी माँ का हृदय भक्ति-रस से भर गया, परन्तु अनजान में उनके चित्त में एक मुकदमे की चिन्ता आ घुसी। वे उस मुकदमे के फलाफल की चिन्ता में डूब गयीं। ठाकुर का भजन एकाएक बन्द हो गया। असन्तुष्ट होकर वे रूखे स्वर से बोल उठे—"यहाँ भी वही चिन्ता?" इतना कहकर उन्होंने रानी को थप्पड़ मार दिया।

एक मामूली पुजारी ने रानी के ऊपर हाथ उठाया। मन्दिर में हल्ला मच गया। दरबान ठाकुर को पकड़ने के लिए झपटा, कोई गाली देने लगा। कोई मारने पर उतारू हो गया, परन्तु वे अपने ही भाव में विभोर थे—मुख पर मृदुमन्द हँसी विराज रही थी।

रानी के शरीर पर हाथ उठाना! मथुरबाबू के चित्त में बड़ी चोट लगी, परन्तु रानी ने उनसे कहा "ठाकुर के भीतर आविष्ट होकर माँ ने ही मुझे शिक्षा दी है।" मथुरबाबू को उससे सन्तोष न हुआ। उनका मन विचारशील था, उन्होंने सोचा—देवी का आवेश ठाकुर के भीतर होता है सही, उसके साथ वायु का प्रकोप भी बढ़ा है, चिकित्सा करानी चाहिए। प्रसिद्ध कविराज गंगाप्रसाद सेन की चिकित्सा में ठाकुर को रखा

गया। परन्तु उस दिन से रानी की ठाकुर के प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गयी। रानी के मन में यह भाव जम गया कि ये तो अन्तर्यामी पुरुष हैं।

मथुरबाबू केवल चिकित्सा का प्रबन्ध करके ही न रुके अनेक प्रकार की युक्ति-तर्कों के द्वारा ठाकुर को समझाने भी लगे कि भगवद्‌भक्ति की इतनी अधिकता अच्छी नहीं है। सभी विषयों की एक सीमा रहनी चाहिए। दोनों में इसी तरह का समझौता हो रहा था कि एकाएक एक घटना से मथुरबाबू के नेत्रों के सामने का पर्दा हट गया। कथा प्रसंग में एक दिन मथुरबाबू ने ठाकुर से कहा— ईश्वर को भी कानून मानकर चलना होता है। उन्होंने जो नियम बाँध दिया उसे तोड़ने की शक्ति उनमें भी नहीं है। यह सुन ठाकुर चौंक कर बोले— यह तुम क्या कह रहे हो? जिसका कानून है वह तो जब चाहे उसे तोड़ सकता है और उसके स्थान पर एक दूसरा कानून बना सकता है। मथुरबाबू उनकी बात न मानकर तर्क करने लगे—(लाल फूल के पौधे में लाल फूल ही होता है सफेद फूल कभी नहीं होता क्योंकि उन्होंने ऐसा ही नियम कर दिया है। अच्छा लाल फूल के पौधे में वह सफेद फूल बना तो दें।) ठाकुर ने तुरन्त उत्तर दिया— ईश्वर तो स्वतन्त्र हैं। इच्छामात्र से सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु मथुरबाबू को उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। दूसरे दिन ठाकुर शौच के लिए जा रहे थे रास्ते में देखा कि एक लाल जवा फूल के पेड़ की एक ही डाली में दो फूल खिले हैं एक लाल और दूसरा एकदम सफेद। देखते ही उस डाली को फूलसहित तोड़कर उन्होंने मथुरबाबू के सामने फेंक दिया और कहा— यह देख लो!

मथुरबाबू तो देखकर दंग रह गये। उन्हें कहना पड़ा—"हाँ बाबा* ! मेरी ही हार हुई।"

इससे भी मथुरबाबू ठाकुर को खुले दिल से ग्रहण न कर सके। अन्य उपायों से उन्हें जाँचने लगे।

"यह तो अनिद्रा और भावावेश की अधिकता है, सम्भवतः यह कठोर इन्द्रिय-निग्रह का फल है। ब्रह्मचर्य थोड़ा खण्डित हो जाय तो यह भाव कुछ शिथिल हो जायगा। व्यवहार में समता आ जावेगी"—मथुरबाबू ने सोचा। गुप्त रूप में शहर से दो परम सुन्दरियों को लाकर ठाकुर के कमरे में भेजा दिया, परन्तु उन्होंने उन्हें वारांगना नहीं देखा। 'स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।' उन्होंने उन दोनों के भीतर भवतारिणी जगदम्बा को देखा। वे माँ! माँ! कहते हुए समाधिस्थ हो गये। लज्जित होकर दोनों मुँह लटकाये निकल गयीं। इससे भी कुछ नहीं हुआ। थोड़े ही दिनों के बाद एक बार मथुरबाबू अपने बाबा को मछुआ बाजार की एक गली में ले गये—विलासिनी सुन्दरियों के बीच। ठाकुर तो स्त्रियों को देखते ही माँ की स्तुति करने लग गये। बाह्य चेतना लुप्त हो गयी। छोटे शिशु की तरह कपड़े आप ही आप खिसक गये। मुँह पर दिव्य भाव—दिगम्बर देव शिशु का। स्त्रियाँ अवाक् रह गयीं, क्या ऐसा भी सम्भव है? ये कौन महापुरुष है, ये कौन देव मानव है? वे अपने को धिक्कारने लगीं, अपराधी की तरह उनके चरणों पर गिर पड़ीं, परन्तु उस समय भी वे समाधिस्थ थे।... ऐसे ही और भी अनेक प्रकारों से उन्होंने ठाकुर की परीक्षा ली।

* * *

* मथुरबाबू श्रीरामकृष्ण को 'बाबा' भी कहा करते थे।

ठाकुर के द्वारा नियमित सेवा-पूजा अब सम्भव नही है—मथुरबाबू यह जान गये। उसका प्रबन्ध भी उन्होंने कर दिया। उस समय ठाकुर के चचेरे भाई रामतारक चट्टोपाध्याय नौकरी की तलाश में दक्षिणेश्वर आये थे। उनका व्यवहारिक नाम हलधारी था। ठाकुर की बीमारी जब तक अच्छी न हो तब तक के लिए मथुरबाबू ने उन्ही को देवी का पुजारी नियुक्त कर दिया।

हलधारी सुपण्डित, निष्ठावान और विष्णुभक्त थे। अन्य कोई नौकरी न मिलने के कारण लाचार हो उन्हे देवी-पूजा में व्रती होना पडा। कुछ दिनो के बाद ही उन्होंने बलिदान बन्द करने का प्रस्ताव किया। बलिदान की प्रथा बहुत दिनो से चल रही थी। एक पुजारी के कहने से उसे बन्द कैसे किया जा सकता है? बलिदान बन्द नही हुआ, इस कारण हलधारी दु खित चित्त से पूजा करने लगे। लगभग एक मास के बाद हलधारी एक दिन सन्ध्या-वन्दन करने बैठे। सुनायी पडा कि देवी क्रोधित स्वर से कह रही हैं—"मेरी पूजा अब तुझे नही करनी होगी। यदि की, तो सेवा-अपराध से तेरा लडका मर जायगा।" हलधारी ने उस पर ख्याल नही किया, उन्हे ऐसा भाव हुआ मानो अपनी मानसिक कमजोरी है। परन्तु कुछ दिनो के बाद ही खबर आ[illegible] कि उनका पुत्र दिवगत हो गया है। श्रीरामकृष्ण के परामर्श [illegible] वे उस दिन से देवी-पूजा छोडकर अनन्तर गोविन्दजी की पू[illegible] करने लगे। अब हृदयराम देवी के पूजक नियुक्त हुए।

* * *

श्रीरामकृष्ण के जीवन में अब 'सततबोध केवलानन्द निर्विकल्प' अवस्था है। माँ अब विविध भावों से तथा अनेक [illegible] से निरन्तर उन्हे घेरे रहती। निरवकाश मातृ-दर्शन, अनवच्छि[illegible]

मातृ-प्रकाश ! मातृसाधना पहुँच गयी सिद्धि मे। अब माँ केवल बाहर ही नही, भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप्त है। आँख मूंदकर, आँख खोलकर फिर अपलक दृष्टि से वे निरन्तर माँ के दर्शन करने लगे --नाना रूपो में। कभी माँ और वे अभिन्न हो जाते। तो भी उसमें भेद रहता--माँ और शिशु का। वह अब माँ की गोद का छोटा शिशु है — उठते-बैठते, चलते-फिरते माँ के मुखापेक्षी है। अब मुँह रगड़ना नही है—और न छटपटाहट; क्रमशः विलास,मातृ-भाव से निरवच्छिन्न विलास। माँ के विरह-जनित गात्रदाह अब रूपान्तरित हो गया है--दिव्य आनन्द की बाढ़ में--परिपूर्णता में।

'सर्व खल्विद ब्रह्म' वाक्य नये रूप में खिल उठा। माँ ही सब कुछ हैं। माँ ही सारी चेतना, सारी द्योतना त्रिकाल तथा कालातीत सत्ता मे विराजमान है--सभी वस्तुओं, प्राणियों और वाणियों में--सभी गुणों मे। केवल सत्त्व मे ही नही, तम मे भी वह ही है। 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' ऐसी दिव्य अनुभूति !

फिर स्थूल दृष्टि वाले जिसे मूर्तिपूजा कहते है, वही ज्ञानातीत परमतत्त्व का एक उत्तम स्तर है। उसी की उन्होने अपने जीवनादर्श के द्वारा प्रतिष्ठा की--मानो यह उनके समन्वयरूप जीवन-वेद का प्रथम मन्त्र है।

* * *

युगधर्म के सस्थापन के लिए श्रीरामकृष्ण निरन्तर लम्बे बारह वर्षों तक कठोर साधना करते रहे। प्रथम चार वर्ष के साधन-काल मे वे जगत्-जननी का मुँह निहार कर एकाकी हो साधन-पथ पर चल रहे थे। अब जगन्माता ने मातृ-मुखापेक्षी शिशु के फैलाये हुए हाथो को पकडकर उन्हे अपनी गोद में खीच लिया था। इस साधन-मार्ग मे एकान्त निष्ठा और तीव्र व्याकुलता

ही थी उनका एकमात्र पाथेय। यह व्याकुलता कितनी गम्भीर और तीव्र थी उसका आभास मिलता है ठाकुर के अपने ही वर्णन से।

"शरीर की ओर मन बिलकुल न रहने से उन दिनो सिर के केश बढकर तथा धूल मिट्टी लगकर अपने आप जटा बन गये थे। ध्यान करने के लिए बैठने पर मन की एकाग्रता से शरीर ऐसा स्थाणु की तरह स्थिर हो जाता कि चिड़ियाँ जड-वस्तु समझकर निडर भाव से सिर पर आ बैठती थी और जटा में चोंच मारकर खाने की खोज करती थी। फिर कभी भगवान् के विरह से अधीर होकर मैं जमीन पर इस ढग से मुँह रगडता था कि मुँह कटकर खून निकलने लगता था। इस भाव से ध्यान, भजन, प्रार्थनादि म सारा दिन कैसे बीत जाता था उसका ख्याल ही नही रहता था। फिर शाम को मन्दिर के शख घटाध्वनि सुनकर ख्याल आता कि दिन बीत चुका है, जीवन का और एक दिन वृथा चला गया माँ का दर्शन नही मिला। उस समय तीव्र वेदना से हृदय ऐसा व्याकुल होता कि मैं अस्थिर हो जाता, पछाड खाकर जमीन पर गिर पडता और चिल्लाकर—'माँ! अभी भी मुझे दर्शन नही दिया'—कहकर यातना से छटपटाते हुए रोने लगता था। लोग कहते थे—'पेट मे शूल हुआ होगा—इसी से वैसे रो रहा है।"

परवर्ती काल में बालक-भक्तो की ओर देखकर उन्होंने खेद के साथ कहा था—"लोग पत्नी पुत्रादि की मृत्यु से या विषय-सम्पत्ति के खो जाने से घडा आँसू बहाते हैं किन्तु ईश्वरप्राप्ति के लिए कौन उस ढग से रोता है कहो तो? फिर कोई कहेगा—'उन्हे इतना पुकारा, इतनी प्रार्थना की तो भी उन्होने दर्शन नहीं दिया।' भगवान् के लिए उस प्रकार व्याकुल भाव से एक... रोओ तो, देखो कि वे कैसे दर्शन नही देते।" इन बातो...

आन्तरिकता श्रोताओं के हृदय को स्पर्श कर जाती।

इन बारह वर्षों में तथा परवर्ती जीवन में ठाकुर को नित्य नयी-नयी अनुभूतियाँ, नये-नये दर्शन हुए। उन दर्शनों और अनुभूतियों के विषय मे ससार कितना जान पाया होगा? उस अनन्त, असीम अनुभूति के सम्बन्ध में उन्होंने एक समय कहा था—"यहाँ की उपलब्धि वेद-वेदान्त को लांघ गयी है।" उस 'अवाङमनसोगोचर' राज्य की खबर जितनी मिली थी उसे भी प्रकट करने का स्थान इस छोटे ग्रंन्थ में नही है, इस कारण हम उनके विभिन्न साधनों तथा दर्शनादि के विषय में यहाँ साधारण भाव से कुछ उल्लेख मात्र करेंगे।

श्रीरामकृष्ण की साधना का क्रम विभिन्न साधन-मार्गों का स्तर-सूचक नही था। सभी धर्म भगवत्-प्राप्ति के एक-एक पथ है—यह सत्य दिखाना ही उनकी साधना का मूल सूत्र है।... अद्वैत भाव से सिद्धि लाभ करने के बाद भी उन्होंने एकेश्वर-वाद-मूलक इस्लाम धर्म की साधना की थी।

विभिन्न धर्मों में छोटे-बड़े और भले-बुरे का जो द्वन्द्व या सकुचित दृष्टिकोण था, श्रीरामकृष्ण के साधन-क्रम से उसका निराकरण हो गया है। उन्होने चीनी के पहाड़ की एक कहानी कही थी—"चीनी का एक दाना खाने से ही जिस चीटी का पेट भर जाता है वह चीनी के पहाड़ में कितनी चीनी है उसकी खबर लेना चाहेगी कभी? शुक-सनकादि बहुत हुआ तो एक-एक चीटा थे और श्रीभगवान् चीनी के पहाड़ के तुल्य हैं।"

उन्होंने सभी धर्मों की साधना में सिद्धि-लाभ करके इस परम-सत्य की उपलब्धि की थी कि 'जितने मत, उतने पथ।' हर एक धर्म ही परा शान्ति-लाभ का एक पथ है।... इस

महामानव के जीवन में अनुष्ठित होकर सन्देह और वितर्क के वर्तमान युग में भी वेद, बाइबिल, पुराण, कुरान, त्रिपिटक, जिन्दावेस्ता आदि सभी धर्मशास्त्र एक साथ एक ही वेदी पर स्थान प्राप्त कर सके है।

प्रथम चार वर्षों तक विविध भावो से जगन्माता के दर्शन में प्रतिष्ठित होकर भी श्रीरामकृष्ण के जीवन की गति वहाँ रुक नही गयी, वह तो अनन्त भाव-समुद्र की ओर वेगशालिनी नदी के समान प्रवाहित हो रही थी। अब वे दास-भाव की साधना में डूब गये। रामचन्द्र के दर्शन के लिए उन्होंने अपने ऊपर राम-दास हनुमान के भाव को पूर्ण रूप से आरोपित कर लिया।...

दास्य-भाव की साधना की चरम अनुभूति उनके अपने ही कथन से जानी जाती है—"उन दिनो एक समय पचवटी में मैं उदास होकर बैठा था। इतने में दिखायी पडा कि एक अतुलनीया ज्योतिर्मयी नारी मूर्ति ने थोडी दूर पर आविर्भूत होकर उस स्थान को प्रकाशित कर दिया है। उनके मुख पर प्रेम, दुःख, करुणा तथा सहिष्णुता से पूर्ण अनुपम लावण्य खिल उठा। वह मूर्ति प्रसन्न दृष्टि से धीरे-धीरे उत्तर की ओर से दक्षिण में मेरी ओर अग्रसर हो आयी। आश्चर्यचकित होकर मैं सोचने लगा—यह कौन है? एकाएक कही से एक हनुमान 'उप्' शब्द करता हुआ सामने कूद पडा और उनके चरणों में जा लोटने लगा। मेरे भीतर मे मानो किसी ने कह दिया—"सीता देवी हैं—जनकराजनन्दिनी सीता देवी, राममय-जीविता सीता।" मैं माँ! माँ! कहते हुए अधीर भाव से उनके चरणो पर गिरने जा ही रहा था कि इतने में वह मूर्ति (अपने शरीर को दिखाकर) इसमें प्रविष्ट हो गयी। मैं आनन्द से अभिभूत तथा बाह्य चेतना से शून्य

हो गया । ध्यान, चिन्तन आदि विना किये ऐसी सहज अवस उन्हें
इससे पहले इस प्रकार के दर्शन मुझे कभी नहीं हुए थे ।"

७

रानी रासमणि के काली-मन्दिर का सुयश चारों ओर फैल गया। साधु-सेवा में रानी मुक्तहस्त थी। अनेक तीर्थयात्री साधु, सन्यासी तथा सिद्ध पुरुषों का समागम दक्षिणेश्वर में होने लगा। उस समय किसी साधु से श्रीरामकृष्ण ने प्राणायामादि हठयोग की क्रिया का अभ्यास किया था और उस प्रकार के योगाभ्यास के फलस्वरूप उन्हें जडसमाधि होने का उपक्रम हुआ था। किन्तु उन्हें तो जगत्-कल्याण के लिए रहना था, इस कारण भगवत्-कृपा से उनको जड-समाधि नहीं हुई।...

हलधारी की बात हमने पहले ही बतायी है। वे राधागोविन्द की पूजा करते थे। दूसरी ओर गुप्त रूप से वे परकीय प्रेमसाधन में प्रवृत्त हुए। वैष्णव मत में यह भी एक साधन-मार्ग है। उनकी निन्दा होने लगी। वे वाक्‌सिद्ध थे, इस कारण उनके सामने किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता था। सद्-धर्म-प्रवर्तक श्रीरामकृष्ण उनके कल्याणकाक्षी होकर एक दिन उनसे कहने गये, परन्तु फल उलटा हुआ। हलधारी ने क्रुद्ध होकर कहा— 'कनिष्ठ होकर तूने मेरी अवज्ञा की, तेरे मुख से खून निकलेगा।'

इसके कुछ दिनों के अनन्तर सन्ध्या समय ठाकुर के तालु देश से लगातार रक्तपात होने लगा। उन्होंने कहा— "सेम की पत्ती के रस की तरह एकदम काला खून।...मुँह के भीतर

कपड़ा ठूँसकर भी खून नहीं रोक सका। खबर पाकर उन्हें लोग आये। हलधारी भी घबड़ाकर आ गये। मैंने उनसेंन्या था। 'भैया! शाप देकर आपने मेरी कैसी दशा की है, देखिये भी रोने लगे। इस

"मन्दिर में उस दिन एक वृद्ध साधु आये थे। शोरगुल सुनकर वे भी आये। परीक्षा कर लेने के अनन्तर उन्होंने कहा— 'मालूम होता है कि तुम हठयोग की साधना करते थे, खून निकल जाने से अच्छा ही हुआ। हठयोग की चरम स्थिति जड़-समाधि ही है। तुम्हें भी वही हो रही थी।... सिर में न चढ़कर वह खून अपने आप मुख के भीतर से निकल आया, इससे अच्छा ही हुआ। क्योंकि जड-समाधि होने पर वह कभी भी न टूटती। तुम्हारे शरीर से जगन्माता का कोई विशेष कार्य होने वाला है, इसीलिए उन्होंने इस ढग से तुम्हारी रक्षा की है।' साधु की वह बात सुनकर मुझे ढाढ़स मिला।"

ठाकुर का शरीर देव-रक्षित तथा देव-कार्य के लिए है, कार्य समाप्त न होने तक क्या वह नष्ट हो सकता है?

* * *

हलधारी के साथ ठाकुर का सम्बन्ध बहुत ही रहस्यमय था। ठाकुर उम्र मे छोटे तथा हलधारी के शब्दों में 'वज्रमूर्ख' थे। हलधारी उम्र में उनसे बड़े, शास्त्रज्ञ तथा पाण्डित्याभिमानी थे। तथापि ठाकुर का दिव्य भावावेश, जगदम्बा के भाव में विभोर तन्मयता, भगवन्नाम-गुण-गान-श्रवण मे अपूर्व उल्लास आदि देखकर उनको ऐसा मालूम होता कि श्रीरामकृष्ण के भीतर अवश्य ही ईश्वर का आवेश हुआ है। वे हृदय से कहते — "हृदय, तूने निश्चय ही उसके भीतर कुछ देखा है, नहीं तो इतने यत्न से

महामा
वर्त ।करना कभी सम्भव न होता।"

कुर की पूजा देखकर हलधारी मुग्ध हो जाते। कहते—
कृष्ण! अब मैंने तुम्हे पहचाना है।" इन घटनाओ की
समाप्ति एक दिन अनोखे ढग से हो गयी। हलधारी काली
ता को तमोगुणमयी बतलाते और ठाकुर को तामसी देवी की
आराधना न करने के लिए कहते। एक दिन ठाकुर ने मन्दिर में
जाकर माँ भवतारिणी से रोते हुए पूछा "माँ! क्या तुम तमो-
गुणमयी हो? हलधारी तो वैसा ही कहते हैं।" जगन्माता के
मुख से उनका यथार्थ स्वरूप-तत्त्व सुनकर भावाविष्ट हो ठाकुर
हलधारी के पास चले आये और उनके कन्धो पर सवार होकर
कहने लगे—"तुम मेरी माँ को तामसी कहते हो, क्या माँ तामसी
हैं? माँ तो त्रिगुणमयी, शुद्ध सत्त्वगुणमयी हैं।" भावाविष्ट ठाकुर
के स्पर्श से पूजा के आसन पर बैठे हुए हलधारी का अन्तर
आलोकित हो उठा। वे ठाकुर के भीतर जगन्माता का प्रकाश
देखकर श्रद्धा से उनके चरणो में पुष्पाजलि देने लगे।

हृदयराम ने उस अद्‌भुत घटना को देखा था। उन्होंने बाद
मे हलधारी से पूछा—"मामा! आप तो कहते हैं, रामकृष्ण पर
भूत सवार हुआ है। यदि ऐसा ही है तो आपने उनकी पूजा कैसे
की?" हलधारी ने उत्तर दिया—"क्या कहूँ हृदय? काली-
मन्दिर से लौट आकर उसने मेरे ऊपर न जाने कैसा जादू डाल
दिया। मैं सब भूल गया। उसके भीतर साक्षात् भगवान का प्रकाश
देखा। कालीमन्दिर में जब भी मैं श्रीरामकृष्ण के पास जाता
हूँ तभी मुझे वैसा हो जाता है। कैसा अद्‌भुत चमत्कार है, कुछ भी
मेरी समझ में नहीं आता।"

तभी से क्रमश अनेक भाग्यवान् पुरषो ने ठाकुर के भीतर

जगन्माता तथा अन्यान्य देवी-देवों का दिव्य प्रकाश देखकर उन्हें देव-मानव जानकर उनकी श्रद्धा-पूजा करना प्रारम्भ कर दिया था।

* * *

उन दिनों एक समय 'रुपया मिट्टी' और 'मिट्टी रुपया' इस प्रकार का अभिनव साधन अनुष्ठित हुआ था। उस प्रकार के साधन के समय ठाकुर मिट्टी और सोने मे समज्ञान प्राप्त कर
ाश्मकांचन'—यह शास्त्र-वाक्य प्रमाणित हो
, उन्होने सम-दर्शन और समज्ञान को अन्यान्य
७०
थी। आब्रह्मस्तम्ब सभी वस्तुओं तथा प्राणियों में
उसकी सेव प्रकाश देखकर ठाकुर 'शुनि चैव श्वपाके च'
ठा
"ामनमय भाव की अधिकता से सभी एकाकार—ब्रह्माकार
परिसामान्य जाति-कुल की सीमा भाव के प्लावन से टूट-
म। अज्ञात जाति के कुछ भिखारियो की जूठन वे महाप्रसाद
र ग्रहण करने लगे और उनका भोजन-स्थान झाड़ू से
करने लगे। भगवान् तो सभी मे व्याप्त होकर विराजमान
हेय और उपादेय बुद्धि का स्थान कहाँ? मेहतर भी तो
ावान् का एक रूप है। मेहतर का काम भी भगवान् की पूजा
। इस कारण उन्होंने अपवित्र स्थान धोकर अपने सिर की जटा से पोछ दिया। इतना ही नही, बाद में और भी रोमाचकारी अभिनव साधना की। शास्त्रो मे इस प्रकार की साधना का उल्लेख कही भी नही है। शास्त्र तो अवतारी पुरुषो के अनुशासन-वाक्य तथा महामानवो की वाणी हैं। ठाकुर की समबुद्धि की साधना उस दिन चोटी तक पहुँच गयी जिस दिन उन्होने दूसरे का मल जीभ द्वारा निर्विकार चित्त से स्पर्श किया, मानो सुगन्धित चन्दन और

विष्ठा मे थोडा भी अन्तर नही है। इस साधना में भी वे सिद्ध हुए।

इस प्रकार के साधन की प्रेरणा उन्होंने किसी गुरु के उपदेश से नही पायी थी। अपने शुद्ध मन के इशारे से वे इस प्रकार के साधन में व्रती हुए थे। वे कहते थे—"शुद्ध मन और शुद्ध आत्मा एक ही है। मन शुद्ध हो तो वह गुरु का ही काम करता है।" जन्म से उनका शुद्ध मन सद्गुरु की तरह उन्हे साधन-पथ बतला रहा था, केवल इतना ही नही उनका शुद्ध मन ही युवक सन्यासी के वेश में अनुरूप सूक्ष्मदेह धारण करके उन्हे सब विषयो का निर्देश देता था। उस सम्बन्ध में परवर्ती काल में ठाकुर ने कहा था—"मेरे ही जैसा एक युवक, सन्यासी के वेश में भीतर से निकलकर मुझे हर विषय में उपदेश दिया करता था। उसके मुख से मैंने जो कुछ सुना था उन सब तत्त्व की बातो का ही ब्राह्मणी, नागा आदि ने आकर पुन उपदेश दिया था। इससे प्रतीत होता है कि केवल शास्त्र-विधि की सत्यता प्रमाणित करने तथा मर्यादा अक्षुण्ण रखने के लिए ही वे गुरु रूप से मेरे इस जीवन में उपस्थित हुए थे। इसके अतिरिक्त उन्हे गुरु रूप से ग्रहण करने का कोई दूसरा कारण नही मिलता।"

साधन के प्रथम चार वर्षों के अन्तिम भाग में ठाकुर को और भी एक महत्त्वपूर्ण अलौकिक दर्शन हुआ था। उस समय ठाकुर कामारपुकुर गाँव में थे। पालकी में सवार होकर एक दिन वे शिहड़ ग्राम में हृदयराम के घर जा रहे थे। विस्तृत मैदान तथा छाया-शीतल पथ, प्राकृतिक शोभाओ से समृद्ध मनोरम परिवेश तथा सुनील आकाश की महानता आदि प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द लेन हुए वे प्रसन्नता के साथ चल रहे थे। एकाएक उन्होंने देखा अपने शरीर मे दो सुन्दर किशोर बालक सहसा

निकालकर जंगली फूलों की खोज में कभी तो मैदान के भीतर दौड़ जाते, फिर कभी पालकी के पास आकर हँसते हुए वार्तालाप तथा हास-परिहास करते हुए चलने लगते। बहुत देर तक उस ढंग से नाना प्रकार के खेल करके वे दोनों दिव्य मूर्तियाँ उनके शरीर में पुनः प्रविष्ट हो गयी। सहज अवस्था में ही ठाकुर ने ऐसा लीला-अभिनय देखा था।*

* इसके लगभग डेढ़ साल बाद दक्षिणेश्वर में एक दिन प्रसंगवश ठाकुर ने भैरवी ब्राह्मणी से उस प्रकार के दर्शन की बात कही थी। ब्राह्मणी उत्तेजित होकर आवेग के साथ बोल उठी—"बाबा! आपने ठीक ही देखा है। अब की नित्यानन्द के शरीर में श्रीचैतन्य का आविर्भाव है। नित्यानन्द और श्रीचैतन्य इस बार एक साथ आपके भीतर हैं।" उसके बाद ब्राह्मणी ने चैतन्यभागवत से अनुरूप श्लोक उद्धृत किया।

कैवल "गदाधर" ही श्रीरामकृष्ण रूप में आये थे ऐसा नहीं। उनमें संगत हुए थे—शिव-शक्ति, राम-सीता, ईसा-मुहम्मद, नित्यानन्द-चैतन्य तथा और भी अनेक शक्तियों के अवतार। वे हमें आगे दिखायी पड़ेंगे।

८

ठाकुर के प्रथम चार वर्षों की श्रेष्ठ साधना में तथा अपने जीवन की भी सर्वश्रेष्ठ साधना में अब वे व्रती हुए। केवल उनके जीवन की ही नही, संसार के आध्यात्मिक इतिहास में भी वह दुस्तरतम साधना थी। 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' की अपेक्षा भी दुस्तर साधन-समुद्र में वे कूद पडे। उसी का परिचय हम यहाँ पायग।.

गदाई को उन्माद रोग हो गया, मन्दिर में अब वह पूजा नही कर सकता--चन्द्रमणि ने सुना, रामेश्वर ने भी सुना। मातृ-वक्ष निचोडकर स्नेह धारा चन्द्रमणि के नेत्रो में उतर आयी।--हाय रघुवीर! मेरे भाग्य में ऐसा भी था! माता का हृदय बेचैन हो उठा, चिट्ठी पर चिट्ठी लिखकर चन्द्रमणि ने अपने स्नेह की निधि का बुलाया। उस समय सन् १८५८ ई० का नवम्बर-दिसम्बर मास रहा होगा।

श्रीरामकृष्ण का उन्माद-भाव और उनके माँ! माँ! शब्द का क्रन्दन सुनकर चन्द्रमणि की छाती फटने लगी। उन्होंने शान्तिकरण, झाड-फूंक तथा औषधि आदि की चिकित्सा का प्रबन्ध किया। ओझा आये, चण्ड उतारा गया। लोगो ने कहा--"भूतावेश तो यह नही है।'

ठाकुर अपनी मित्र-मण्डली के साथ पहले की तरह ही

हँसी-दिल्लगी तथा मधुर व्यवहार करते थे, किन्तु बीच में मानो कुछ अन्तर रह जाता था। मित्र लोग ठीक पहले की तरह अपने गदाई के पास जा गले लगाकर खड़े नही हो सकते थे।... कुछ दिनों में उनका भाव कुछ शान्त हुआ, परन्तु उस समय भी उन्हे कभी-कभी भावावेश हो जाता था। निरन्तर एक आनन्द के नशे मे वे विभोर रहते थे। बाहरी उच्छ्वास उतना नही था। विरह का उस प्रकार मर्मभेदी क्रन्दन भी नहीं था, मानो अब परिपूर्णता के आनन्द से उनका मन लबालब भर गया हो। उसमें न तरंग थी, न स्फीति। वह था — प्रशान्त समुद्र के समान शान्त। जगन्माता के विविध दर्शनों से वे आत्मस्थ थे। भोजनादि भी बहुत कुछ स्वाभाविक था।

ठाकुर भूति की नहर और बुधई मण्डल के श्मशान में बहुत समय बिता देते थे। दिन-रात वहाँ जाकर वे विविध प्रकार की साधना करते थे। माता की साथिन डाकिनी योगिनियों को बुलाकर उन्हें भोग चढाते तथा उनसे आनन्दित होते थे। एक दिन आधी रात बीत गयी, पर गदाई घर न लौटे — यह देखकर रामेश्वर पुकारते हुए श्मशान की ओर गये। दूर से भैया की पुकार सुनकर वे चिल्ला उठे — "मैं आ रहा हूँ भैया! आप और आगे न आयें, नही तो ये (उपदेवता) आपको हानि पहुँचावेंगे।"...

क्रमशः बाधारहित निरन्तर दर्शन तथा जगन्माता का नानाभाव से विलास श्रीरामकृष्ण के मन को शान्त करने लगा। बाहर से गदाई को कुछ स्वस्थ देखकर चन्द्रमणि के नेत्रों में आनन्द के आँसू उतर आये। अब चन्द्रमणि ने गदाई के विवाह का निश्चय कर लिया। रामेश्वर के साथ एकान्त मे परामर्श

करके वे गुप्त रूप से योग्य कन्या की खोज मे चारो ओर आदमी भेजने लगी। अगर गदाधर को पता लग गया तो शायद वह इन्कार कर बैठे, इस डर से गुप्त रूप से सन्धान किया जाने लगा। कन्या तो मिल गयी, परन्तु रुपये कहाँ से आवेंगे। कन्या जितनी बडी और सुन्दरी मिली—दहेज के रुपये भी उतने ही अधिक। क्रमश चन्द्रमणि और रामेश्वर का मन गम्भीर विषाद में डूब गया। अब उपाय क्या है, वे लोग तो बहुत गरीब हैं। माता-पुत्र का परामर्श यद्यपि बहुत ही गुप्त रूप से हो रहा था तथापि ठाकुर से कुछ भी छिपा न रहा। वे चुपचाप तमाशा देख रहे थे। जब हताश हो चन्द्रमणि का चित्त आच्छन्न हो गया तब भाव के आवेश में श्रीरामकृष्ण ने एक दिन उनसे कहा—"जहाँ-तहाँ खोजना व्यर्थ है। जयरामबाटी के रामचन्द्र मुखोपाध्याय के घर में कन्या दैवनिर्दिष्ट है, देखो जाकर।"

उनके कहने के अनुसार खोज की गयी। दूसरे विषयो में कुछ भी हो, पर उम्र में वह बिलकुल बालिका थी। केवल छ साल की। होनहार जानकर चन्द्रा देवी ने उसी कन्या के साथ गदाधर का विवाह तय कर लिया। उसके अनन्तर सन् १८५९ ई. के मई माह में शुभ विवाह सम्पन्न हो गया। तीन सौ रुपया देना पडा। श्रीरामकृष्ण की उम्र उस समय २४ वर्ष की थी और श्रीशारदामणि की छ वर्ष। विवाह में आडम्बर कुछ न हुआ। बिल्कुल साधारण घटना थी, परन्तु इस मामूली घटना ने संसार के इतिहास में कितने बडे स्थान पर अधिकार कर लिया और वह कितनी बडी असाधारण घटना में परिणत हो गयी उसे हम आगे देखेंगे और इस सम्बन्ध में कुछ विवेचन भी करेंगे। . .

गरीब होने पर भी वंश के सम्मान की रक्षा के लिए चन्द्रा

देवी ने ग्राम के जमींदार लाहा बाबू के घर से कुछ गहने माँगकर नव वधू को सजाया था। उन गहनों के लौटा देने का समय आया, पर चन्द्रा देवी बालिका वधू के अंग से किसी तरह गहनों को खोल न सकी। मानसिक कष्ट से अभिभूत वृद्धा आँचल से आँसू पोंछने लगी और उसने शारदा को अंक मे समेट लिया। सूक्ष्मदर्शी ठाकुर अपनी माँ की हृदय-वेदना को समझ गये। वधू जब गहरी नीद मे सो रही थी, उस समय उसके अंगों से धीरे-धीरे उन्होंने सारे गहने खोलकर माँ के हाथ मे लाकर रख दिये। जाग उठने पर शारदा ने रोते हुए सास से जाकर कहा—"मेरे गहने कहाँ गये ?" चन्द्रमणि उसका क्या जबाव देती—उनकी भी छाती फट रही थी। स्नेह की पुतली बालिका वधू को उन्होंने अक में खीच लिया और रुँधे स्वर से कहा—"रोओ मत बेटी ! गदाधर तुम्हे इससे अच्छे-अच्छे गहने बनवा देगा।"

परन्तु उसी दिन वधू के चाचा आकर सारी बातें जान गये और अत्यन्त असन्तुष्ट होकर कन्या को घर ले आये। परिवार के लोगों को ढाढ़स देने के लिए श्रीरामकृष्ण परिहास करते हुए बोले—"वे लोग चाहे कुछ भी कहें या करे, विवाह तो रद्द हो नही सकता।"

विवाह के बाद भी ठाकुर एक वर्ष से अधिक कामारपुकुर गाँव मे रहे। सन् १८६० ई० के नवम्बर में वधू सातवें वर्ष में पहुँची। कुल-प्रथा के अनुसार उन्हे कुछ दिनो के लिए ससुराल जाना पड़ा। शुभ मुहूर्त में पत्नी को लेकर वे कामारपुकुर गाँव लौट आये। इसके कुछ दिनो के अनन्तर सम्पूर्ण स्वस्थ हो वे दक्षिणेश्वर लौटकर पहले की तरह काली माता की पूजा में लग गये।...

इतने दिनों तक मन्दिर मे माँ मानो अपनी सन्तान के अदर्शन से व्याकुल हो गयी थी। आते ही उन्होंने शिशु को छाती

में जकड लिया । ठाकुर का उन्माद-भाव और भी तीव्रता के साथ आरम्भ हुआ । उसी प्रकार शरीर मे जलन तथा बेचैनी । सदा छाती लाल रहती । आँख की पलकें न झपती । एकटक तन्मय होकर केवल माँ को निहारते — विविध भावो में, विविध रूपो में, सभी वस्तुओ तथा सारी व्याप्ति में ।

मथुरबाबू बहुत ही आश्चर्यचकित हुए । विवाह के बाद तो मन शान्त होना चाहिए परन्तु यह तो बिल्कुल उल्टा है । इससे मथुरबाबू की श्रद्धा-भक्ति श्रीरामकृष्ण के ऊपर और भी बढ गयी । उन्होंने घबडाकर कलकत्ते के श्रेष्ठ कविराज गगाप्रसाद सेन की चिकित्सा के अधीन ठाकुर को रखा । चिकित्सा से कोई फल नही दिखायी पडा तो भी चिकित्सा चलती रही । एक दिन हृदय के साथ ठाकुर वैद्य के घर गये, वहाँ वैद्य के एक निकट सम्बन्धी अन्य एक वृद्ध कविराज उपस्थित थे । रोग के सारे लक्षण सुनकर उन्होंने कहा — "इनकी तो दिव्योन्माद अवस्था मालूम पडती है । यह योगज व्याधि है । औषधि से आराम होने का नही ।" हुआ भी वैसा ही । रोग का उपशम न हो सका । वल्कि बढती ही चली वह उन्माद अवस्था ।

कामारपुकुर में पुत्र की बीमारी की बात चन्द्रा देवी ने सुनी । रोते-रोते उन्होंने 'बूढा शिव' के मन्दिर की शरण ली । जाग्रत देवता थ वह बूढ शिव । वे निराहार मन्दिर में पडी रही। आकाशवाणी हुई — "मुकुन्दपुर के शिव के सामने धरना देने से तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी ।" आदेश पाकर वृद्धा मुकुन्दपुर के शिव क सामन जा पड गयी । दो-तीन दिन के बाद शिव ने दिव्य शरीर म आविर्भूत होकर चन्द्रा देवी से कहा — "डरो मत, तुम्हारा लडका पागल नहीं हुआ है । ईश्वरी-भाव के आवेश मे

उसकी वैसी हालत हुई है।" कुछ शान्त होकर चन्द्रा पसे हम लौट आयी।... रज

इधर एक अनोखी घटना ने मथुरबाबू के जीवन में एक विराट परिवर्तन ला दिया। ठाकुर के भीतर मथुरबाबू को एक अलौकिक दर्शन हुआ।

उस घटना के सम्बन्ध में ठाकुर ने बाद मे कहा था "मैंने कहा, 'यह तुम क्या कर रहे हो? तुम बाबू हो, रानी के दामाद, तुम्हें ऐसा करते देखकर लोग क्या कहेंगे? स्थिर हो, उठो।' वे कहाँ सुनते। उसके बाद कुछ शान्त होकर सारी बातें खोलकर बतायी—उन्हे अपूर्व दर्शन हुआ था। कहा—'बाबा! आप टहल रहे थे, इसे मैंने स्पष्ट देखा, जब इधर आने लगे तो मालूम पड़ा—आप नहीं, हमारे मन्दिर की माँ है। फिर जब पीछे घूमकर उधर जाने लगे तो देखा प्रत्यक्ष महादेव! पहले सोचा शायद दृष्टिभ्रम हो, आँखो को पोछकर फिर देखा। देखा ठीक वही हैं, इस तरह जितनी बार देखा—आप नहीं, माँ और शिव!' इतना कहते हुए रोते रहे। मैंने कहा—'मै तो कुछ भी नहीं जानता, बेटा।' किन्तु कौन सुने। बहुत समझाने से कुछ शान्त हुआ। मथुर स्वेच्छा से इतना थोड़े ही करता, माँ ने उसे अनेक प्रकार से दिखा सुना दिया था।"

उस दर्शन के बाद मथुरबाबू के मन की शका मिट गयी। तब से जीवन के अन्तिम दिन तक वह ठाकुर को महामानव के रूप में देखते रहे और मनुष्य-देह में देवता समझकर उनकी भक्ति और सेवा करते थे। उस दिन से उन्होंने ठाकुर को पूर्ण हृदय से मान लिया था। उनकी सेवा को वे परम पुरुषार्थ समझते थे।

९

ठाकुर कामारपुकुर से दक्षिणेश्वर लौट आये। उसके कुछ दिनो के अनन्तर थोडे दिनो का रोग भोगकर रानी रासमणि सन् १८६१ ई की १९ फरवरी की रात्रि म दिवगत हो गयी।

ठाकुर कहते थे--"शरीर-त्याग के कुछ दिन पहले रानी अपने कालीघाट के आदिगगा-तट पर के मकान में आकर रह रही थी। देहत्याग के कुछ क्षण पहले उन्हे गगा-गर्भ में लाया गया। वह स्थान उस समय दीपमाला से आलोकित हो रहा था। एकाएक वे बोल उठी--"हटा दो, हटा दो, अब रोशनी अच्छी नही लगती, अब मेरी माँ आयी है, उनकी श्री-अग-प्रभा से चारो ओर प्रकाश छा गया है। . थोडी देर बाद "माँ आ गयी" इतना कहकर काली-चरण-अभिलाषिणी रासमणि शान्ति से काली-पद में लीन हो गयी।

श्रीरामकृष्ण के सर्व-धर्म-समन्वय की साधना का मन्दिर बनवाकर रानी युगधर्म-सस्थापन में सहायक हुई थी और इस विशेष कार्य के सम्पादन के लिए ही सम्भवत जगन्माता ने अपनी आठ सगियो में से एक को नियोजित किया था। जिस समय रानी ने शिव, काली और विष्णु के मन्दिर बनवाकर उन्हे एक ही स्थान में स्थापित किया, उस समय उस प्रकार का विभिन्न भावयुक्त कोई मन्दिर दिखायी नही पडता था। ईश्वरीय शक्ति के अदृश्य

संकेत से उनके हृदय में उस प्रकार की प्रेरणा हुई थी, उसे हम इतने वर्षों के बाद युगधर्म का प्रयोजन और प्रभाव देखकर सहज में ही अनुमान कर सकते है।

* * *

रानी के स्वर्ग सिधारने के कुछ दिनों बाद दक्षिणेश्वर में योगेश्वरी भैरवी ब्राह्मणी आयी—उन्होंने ही श्रीरामकृष्ण के भीतर भाव, महाभाव, ईश्वर का आवेश और प्रकाश देखकर उन्हें सर्व प्रथम अवतार घोषित किया था। उसके पश्चात् उन्होंने प्रसिद्ध पण्डितों की सभा में शास्त्र-वाक्यों को उद्धृत कर इसे प्रतिपादित भी किया था।

ठाकुर एक दिन सुबह गंगा-तट के बाग से फूल चुन रहे थे—माला गूँथकर माँ को सजायेंगे। इतने में उन्होंने देखा कि एक नाव बकुल-वृक्ष के घाट में आ लगी है। एक भैरवी उस नाव से उतरकर मन्दिर की ओर आयी। वह भैरवी कौन है और क्यों आयी है देखते ही ठाकुर उसे जान गये। तुरन्त कमरे में आकर हृदय से उस भैरवी को बुला लाने को कहा। हृदय ने आश्चर्य-चकित होकर कहा—"भैरवी अपरिचिता हैं, बुलाने से ही क्यों आवेंगी?" ठाकुर ने बाल-भाव से कहा—'मेरा नाम लेने से वह आ जावेंगी।' हुआ भी ऐसा ही। हृदय के जाकर मामा का नाम लेते ही भैरवी बिना कुछ पूछे उनके साथ ठाकुर के पास चली आई और ठाकुर को देखते ही आनन्द और विस्मय से अधीर हो सजल नयन से बोली—"बाबा! तुम यहाँ हो? गंगातीर पर हो, जानकर अब तक मैं तुम्हें ढूंढ़ रही थी।" ठाकुर ने पूछा—"मुझे कैसे जाना माँ?" भैरवी ने उल्लास के साथ कहा—"जगदम्बा की कृपा से।"

बहुत दिनो के अदर्शन के अनन्तर जिस तरह बालक अपनी माँ को सामने पाकर आनन्द से उत्फुल्ल हो अपने हृदय की सारी बाते कहता है उसी प्रकार ठाकुर भी भैरवी के पास बैठकर अपने अलौकिक दर्शन, भगवत प्रसग से वाह्य ज्ञान रहित तथा असहनीय गात्रदाह आदि अवस्थाओ की बाते कहने लगे। भैरवी विस्मय के साथ चुपचाप सुनती रही। ठाकुर ने व्याकुल भाव से पूछा—"हे माता। मुझे यह क्या हो गया है? क्या मै सचमुच पागल हो गया हूँ? आन्तरिक हृदय से सारा जीवन जगदम्बा को पुकार कर क्या अन्त मे मुझे कोई कठिन व्याधि हो गयी?" ब्राह्मणी ने उन्हे ढाढस देकर कहा—"तुम्हे कौन पागल कहता है बाबा? तुम्हे तो महाभाव हुआ है, उसी से ऐसी अवस्था हुई है। ऐसा भाव कोई समझ सकता है? यह अवस्था हुई थी राधारानी को, यह महाभाव हुआ था श्रीचैतन्यदेव को। भक्ति-शास्त्र में ये सब बाते लिखी हुई है।"

हृदयराम मौन हो विस्मय से उन दोनो की बाते सुन रहे थे। दोनो अपरिचितो में ऐसे अन्तरग मित्र की तरह व्यवहार! दिन चढ रहा था। ठाकुर ने प्रसादी, फल, मिठाई, माखन, मिश्री आदि भैरवी को खाने के लिए दिया, किन्तु पुत्र को बिना खिलाये माँ कैसे खा सकती है? इस कारण उनके आग्रह से ठाकुर को कुछ खाना पडा।

देवी-दर्शन और जलपान के बाद भैरवी ब्राह्मणी अपने इष्टदेव रघुवीर के भोग के लिए सीधा लेकर पचवटी की ओर चली गयी।

रसोई हो गयी, ब्राह्मणी गले से रघुवीर की मूर्ति उतार कर उनके सामने भोग निवेदित करके ध्यान मे बैठ गयी। अपने इष्टदेव का अपूर्व दर्शन पाकर क्रमश वह समाधि के अतल-तल में डूब गयी।

दोनों कपोलों पर से आनन्द के आँसू वह चले, इधर ठाकुर भावाविष्ट होकर पंचवटी में आये और रघुवीर का निवेदित भोग खाने लगे। उसके कुछ क्षण बाद सहजावस्था में आकर ब्राह्मणी ने जो देखा उससे वे आनन्द से विह्वल हो गई। ध्यान मे जो दर्शन हुआ था, आँख खोलकर भी उसी को देखा। उनके इष्टदेव भगवान् रघुवीर श्रीरामकृष्ण का रूप धरकर पूजा ग्रहण कर रहे हैं। इधर ठाकुर ने भावावस्था से उतर आकर अपने किये कार्य के लिए क्षुब्ध होकर कहा—"पता नही क्यों मैं इस प्रकार अपने को भूलकर ऐसा कर बैठता हूँ।"

इष्ट-दर्शन से पुलकित होकर भैरवी ने कहा—"अच्छा किया बाबा। यह तुमने तो नही किया, तुम्हारे भीतर जो विराजमान हैं उन्होने ही किया है। ध्यान में मैंने जो देखा, आँख खोलकर उसी को प्रत्यक्ष किया। मेरी पूजा सार्थक हुई है। अब बाहरी पूजा का कोई प्रयोजन नही।" इतना कहकर ब्राह्मणी बड़े भक्तिभाव से वह प्रसाद खाने लगी।

रघुवीर को वे जीवित पा गयी, अपने सामने उन्हें जीवित देख रही है। इष्टदेव के दर्शन में पूजा-ध्यान का लय हो गया। प्रेम से रोमांचित होकर ब्राह्मणी ने दीर्घ काल से पूजित अपनी रघुवीर-प्रतिमा को गंगा-गर्भ मे विसर्जित कर दिया।...

प्रथम दिन ही श्रीरामकृष्ण के भीतर रामचन्द्र का दर्शन-लाभ करके भैरवी को ऐसी दृढ धारणा हुई कि यह तो साधारण साधक या सिद्ध पुरुष भी नही, स्वयं भगवान् है। ठाकुर के दिव्य अलौकिक दर्शन और अनुभूति शास्त्रों से मिलाकर उन्हे दृढ़ विश्वास हुआ कि श्रीरामकृष्ण अवतार है। उस बात को वे सबसे कहने लगीं। मथुरबाबू ने भी सुना। अन्यान्य लोगों ने

भी सुना। कालीमन्दिर में हलचल मच गयी।

इस प्रकार छ-सात दिन बीत गये। ब्राह्मणी पचवटी में रहने लगी। दूरदर्शी ठाकुर ने सोचा—'ब्राह्मणी का यहाँ रहना उचित न होगा। ससार के मनुष्य अपने ही मन से सब कुछ सोचते-विचारते है। उनकी ऐसी घनिष्ठता दूसरे लोग किस दृष्टि से देखेंगे, कौन जानता है ? ब्राह्मणी से कहते ही वे भी समझ गयी और काली-मन्दिर छोडकर उसी दक्षिणेश्वर ग्राम के गगातट के देवमण्डल के घाट पर चली गयी।

ब्राह्मणी दूर हट गयी सही, परन्तु उनका मन हर समय ठाकुर के ऊपर लगा रहता। उस ब्रह्म-गोपाल को देखने के लिए तथा कुछ खिलाने के लिए वे रोज कालीमन्दिर आती रही। भिक्षा से जो कुछ मिलता था उसे ही गोपाल को खिलाने के लिए आती थी। अनेक ईश्वरीय प्रसग हुआ करते, अलौकिक भाव का आवेश ठाकुर को होता रहता। आनन्द से कुछ समय बिताकर ब्राह्मणी अपने स्थान को लौट जाती थी।

एक दिन मथुरबाबू के साथ पचवटी में बैठकर ठाकुर वार्तालाप कर रहे थे एकाएक बोल उठे—"भैरवी कहती है अवतार के सारे लक्षण इस शरीर में हैं। वे अनेक शास्त्र जानती हैं ?" सरलता और भोलेपन की मूर्ति बाबा की बात सुनकर मथुरबाबू ने कहा—'वे कुछ भी क्यों न कहे, अवतार तो दस से अधिक नहीं है इस कारण उनकी बात सत्य कैसी कही जाय ? हाँ, आप पर काली माता की कृपा हुई है यह बात सत्य है।"

यह बातचीत चल ही रही थी कि ब्राह्मणी एक थाली में मिठाई लेकर नन्दरानी के आवेश से तन्मय होकर पचवटी में आयी। सामने आते ही एक विपरीत भाव के मनुष्य को देखकर अपने का

उन्होंने सम्भाल लिया और मिठाई की थाली हृदय को दे दी। ब्राह्मणी को देखते ही ठाकुर ने कहा "माता ! तुम यहाँ के बारे में जो कुछ कहती हो, मैंने इसे वह सब बतलाया था। इसने कहा—'अवतार तो दस के अतिरिक्त और कोई नहीं हैं।'

मथुरबाबू की ओर देखती हुई भैरवी बोली—"क्यों, श्रीमद्भागवत में चौबीस अवतारों की चर्चा करके वेदव्यास ने विष्णु के असंख्य अवतार होने की बात कही है। वैष्णवशास्त्र में महाप्रभु के पुनरागमन की बात का स्पष्ट उल्लेख है।" ब्राह्मणी की इस बात का कोई उत्तर न दे सकने से मथुरबाबू चुप हो रहे। ८

* * *

कुछ महीनों से ठाकुर को असहनीय गात्रदाह हो रहा था। घटों गंगाजल में सारा शरीर डुबाकर या सिर में भीगा अंगोछा दबाकर पड़े रहने से भी शरीर की जलन कुछ न घटी। वैद्यक चिकित्सा हुई, पर जलन की शान्ति नहीं हुई। ब्राह्मणी ने सब सुनकर कहा—"यह तो रोग नहीं है, भगवत्-दर्शन के लिए तीव्र व्याकुलता के कारण ही शरीर में ऐसी जलन हो रही है। श्रीमती राधिका की भी श्रीकृष्ण के विरह से ऐसी ही अवस्था हुई थी। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के जीवन में भी ऐसी अवस्था आयी थी। इस दाह को शान्त करने की ओषधि अपूर्व है। सारे शरीर में सुगन्धित चन्दन का लेप करके सुरभित फूलों की माला धारण करने से ही यह दाह घट जायगा।"

यह विधान सुनकर मथुरबाबू आदि सभी ने इस बात को हँसकर उड़ा दिया। उसके पश्चात् ब्राह्मणी के विशेष आग्रह से ठाकुर के शरीर में चन्दन का लेप करके उन्हें फूल-मालाओं

से भूषित कर दिया गया। तीन ही दिन तक इस प्रकार के उपचार से असहनीय दाह पूर्णतया शान्त हो गया। सभी लोग विस्मित रह गये! भैरवी का विश्वास और भी दृढ़ हुआ। श्रीरामकृष्ण के शरीर में कौन निवास कर रहे हैं उसे वे अपने अन्तर में समझने लगी। वे जोर देकर कहने लगी कि ये मनुष्य देह में साक्षात् भगवान् हैं।

इसके कुछ दिन पश्चात् ठाकुर के शरीर में एक और नया उत्कट उपसर्ग दिखायी दिया। वृकोदर की भूख की तरह सर्वग्रासी भूख बढ़ गयी। इस रोग की भी भैरवी ने चिकित्सा की। यह भी योगज क्षुधा है—शास्त्र मिलाकर उन्होंने देखा और इस क्षुधा के उपशमन का विधान किया। ठाकुर ने एक समय कहा था—"ऐसे समय में एक प्रकार की विकट क्षुधा का उद्रेक हुआ था। चाहे जितना भी भोजन क्यों न करूँ पेट भरता ही नहीं था। भोजन करके जैसे ही उठा वैसे ही पुनः इच्छा हुई कि कुछ और भोजन करूँ। रात-दिन केवल खाने की चाह। सोचा, मुझे यह कैसी बीमारी हुई? ब्राह्मणी से कहा। उसने बताया—'बाबा! डरने की कोई बात नहीं। भगवान् के पथ पर चलने वालों की इस प्रकार की अवस्था कभी-कभी हो जाया करती है। शास्त्र में ऐसी अवस्था का वर्णन है। मैं अभी अच्छा किये देती हूँ।' ब्राह्मणी ने मथुरबाबू से कहकर कमरे के भीतर चबेने से लेकर सन्देश, रसगुल्ला, पूरी आदि अनेक प्रकार की खाने की चीजें सजाकर रखवा दी और कहा—'बाबा! इसी कमरे में आप रात दिन रहें और जब जो इच्छा हो खाया करें।' मैं वैसा ही करने लगा। उसी में घूमता-फिरता खाने की चीजों को देखता, हिलाता-डुलाता रहता। कभी एक में से कुछ खाता, कभी दूसरे में से खा

चखता। इसी प्रकार तीन दिन बीत गये। उसके बाद वह विकट क्षुधा और खाने की इच्छा चली गयी, मैं बच गया।"

ब्राह्मणी क्रमशः सिद्ध करने लगी और इन्होंने यह घोषणा कर दी—"श्रीरामकृष्ण अवतार हैं। यह मेरी मुँहजोरी की बात नहीं है, इसका शास्त्र में भी प्रमाण है। शास्त्र में से प्रमाण उद्धृत कर मैं इसे प्रमाणित करूँगी। यह महाभाव अधिकारी पुरुष के सिवा और किसी को नहीं होता, हो भी नहीं सकता। अगर किसी में शक्ति हो तो मेरी बात का खण्डन करे।"

मथुरबाबू के मन में असमंजस का भाव जगा और उन्होंने सोचा—भैरवी इतने दिनों से जो कह रही है, उसका समाधान हो जाना चाहिए। वैष्णवचरण एक महापण्डित और उच्चकोटि के साधक थे। मथुरबाबू ने उन्हें निमन्त्रित किया। और भी अनेक पण्डित तथा भक्त साधकों का समागम हुआ। कालीमन्दिर में सभा बैठी। ब्राह्मणी ने ठाकुर के सम्बन्ध में अब तक जो कुछ सुना और अपनी आँखों से देखा सबको बतलाया और शास्त्र का उद्धरण देकर उसको प्रमाणित भी किया। विद्वानों में इस विषय को लेकर आलोचना चलने लगी पर जिसके सम्बन्ध में यह सब हो रहा था, वे तो अपने भाव में विभोर होकर निर्विकार चित्त से निर्लिप्त बालक की तरह बैठे थे। आत्म-दर्शन की सौम्य कान्ति से उनका मुखमण्डल देदीप्यमान था। फिर कभी बटुए से थोड़ी सौंफ या इलायची वगैरह मुँह में डाल देते थे। अन्त में वैष्णवचरण ने कहा—"इनके शरीर में 'महाभाव' का लक्षण स्पष्ट दिखायी दे रहा है। 'महाभाव' का आविर्भाव साधारण लोगों में नहीं होता। अब तक केवल भावमयी श्रीराधिका और भगवान् श्रीचैतन्यदेव में ही यह भाव जगा था।" उनकी इस

बात को सुनकर सब लोग अवाक् रह गये और ठाकुर ! उन्होंने मथुरबाबू से कहा --"अजी, ये लोग क्या कहते हैं ? कुछ भी हो, रोग नही है --सुनकर मन में प्रसन्नता हुई ।"

इसके कुछ दिनो बाद एक और विराट सभा का आयोजन हुआ । वैष्णवचरण, विख्यात तान्त्रिक साधक गौरी पण्डित तथा और भी अनेक विद्वान् उपस्थित हुए । विविध शास्त्रीय आलोचना और तर्क-वितर्क के बाद सभी तर्कों के समाधान के हेतु श्रीगौरी पण्डित ने ठाकुर को सम्बोधित करके कहा -- "वैष्णवचरण आपको अवतार कहते है ? यह तो बहुत ही साधारण बात है । मेरी तो धारणा है कि जिनके अंश से प्रत्येक युग में अवतारी पुरुष लोक-कल्याण के लिए अवतरित होते है और जिनकी शक्ति से वे अपना कार्य सम्पन्न करते है, आप साक्षात् वही है ।" ठाकुर बालक की तरह हँसते हुए बोले --"अरे बाबा ! तुम तो उससे भी बढ गये । क्यो, कहो तो ! इसमे क्या देखा है, बताओ तो ?" गौरी पण्डित ने कहा --"शास्त्र के प्रमाण और अपने अनुभव से मैं कहता हूँ । यदि इस बात का कोई खण्डन करना चाहे तो मेरे साथ इस पर शास्त्रार्थ करे । मैं अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए तैयार हूँ ।"

भावाविष्ट ठाकुर ने कहा --"तुम लोग न जाने क्या-क्या कहते हो ? परन्तु कौन जाने क्या है ? मैं तो कुछ नही जानता।"

अब की तो छद्म वेष म आगमन है न !

जीवकोटि का साधन सिद्धि-लाभ के लिए है। ईश्वरकोटि नित्य सिद्ध है। उनकी सिद्धि पहले और साधन बाद में होता है। लोक-शिक्षा के लिए ही उनका साधन है। वे आजन्मसिद्ध होते हैं। ठाकुर कहते थे—"किसी-किसी वृक्ष में फल पहले आते हैं और फूल बाद मे।"

इतने दिनों में ठाकुर अपने अन्त:करण में खोजकर सब कुछ पा गये थे—जगदम्बा का ओतप्रोत भाव से दर्शन, भाव, समाधि, महाभाव, ज्ञान-विज्ञान। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, काली—सभी का दर्शन करते थे। एकमात्र अपने मन-रूपी गुरु के साहाय्य से ही वे चरम लक्ष्य तक पहुँच गये थे। शास्त्रानुमोदित साधनमार्ग की सत्यता की प्रतिष्ठा अभी बाकी थी, सम्भवत: इसी कारण जगन्माता के इशारे से बहुशास्त्र-पारदर्शिनी प्रवीणा साधिका योगमाया के अंश से उत्पन्न हुई योगेश्वरी ब्राह्मणी गुरु रूप से दक्षिणेश्वर में आयी।

का। ब्राह्मणी ने ठाकुर से कहा—"बावा, तुमसे यथाशास्त्र योड़ेन-मत की साधना कराऊँगी।" मन्दिर में विराजमान माँ से वैष्ण:मति प्राप्त किये बिना 'माँ का वह शिशु' कोई कार्य नहीं स्पष्टता था। माँ का आदेश पाकर वे (ठाकुर) ब्राह्मणी के आदेशा-लोगोंर तन्त्र-साधना मे लीन हो गये। साधन के सभी उपचार भगवती स्वयं संग्रह करती थी। वे ही सब आयोजन किया करती

थी। पचवटी के बिल्वमूल में यथाविधि मुण्डासन स्थापित कर दिया गया। इस साधना में ठाकुर इतने तन्मय हो गये थे कि महीनों तक उन्हे दिन और रात का भी पता नहीं रहा। कितने ही दर्शनों के बाद दर्शन, अनुभूतियों के बाद अनुभूतियाँ, सिद्धियों के बाद सिद्धियाँ—उन्हें प्राप्त होती रहीं—उनकी कोई सीमा-सख्या नहीं है। इसी प्रकार विष्णुक्रान्ता में प्रचलित चौसठ तन्त्रों के सभी साधनाओं में उन्होंने सिद्धिलाभ कर लिया। यह सब देखकर भैरवी तो अवाक् रह गयी। अधिकांश प्रयोगों के साधन करने में ठाकुर को तीन-तीन दिनों से अधिक समय नहीं लगा। समस्त तान्त्रिक प्रयोगों का साधन हो जाने पर आनन्द-पुलकित चित से भैरवी ने कहा—"अब तुम दिव्यभाव में प्रतिष्ठित हो गये।"

इस अवधि में दसभुजाओं से द्विभुजाओं तक की कितनी विभिन्न देविमूर्तियों का उन्हान दर्शन किया—इनकी कोई इति नहीं है। कितनी अनुपम थी उनकी कान्ति! पुन किसी-किसी देवीमूर्ति ने उन्हे विभिन्न भावों में उपदेश भी किया। ठाकुर कहते थे—"षोडशी या त्रिपुरा मूर्ति के श्रीअगो का सौन्दर्य गलकर मानो चारों दिशाओं में व्याप्त हो गया।" .. इसके अतिरिक्त भैरव आदि अनेक देव-मूर्तियों का भी उन्होंने इस समय दर्शन किया। वे दिव्य शक्ति के प्रभाव से जान गये थे कि बाद में अनेक लोग धर्मलाभ के लिए उनके पास एकत्र होंगे।

तन्त्रसाधना की परिसमाप्ति के बाद कई वर्षों तक ठाकुर के शरीर की कान्ति बढती ही गयी जिससे उनकी पूरी देह ज्योतिर्मय हो गयी। जिसकी भी उन पर नजर पडती वह अवाक् हो विस्मय से उनकी ओर देखता ही रह जाता। साधारण मानवदेह में तो इतनी कान्ति सम्भव नहीं है! उस समय उन्होंने

जगन्माता के निकट कातर स्वर में प्रार्थना की—"माँ, मेरे इस वाहरी रूप से क्या होगा ? अपने इस रूप को तो तुम वापस ले लो।" तन्त्रसाधना में सिद्ध होने के वाद वे सभी प्राणियों में जगन्माता का ही दर्शन करने लगे। सर्वत्र माँ का प्रकाश— माँ का ही रूप।...

* * *

श्रीदुर्गा-सप्तशती में लिखा है—'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण सस्थिता।' जो सब प्राणियों मे चिन्मय रूप से है, वही मातृरूप से भी विराजमान हैं। ठाकुर की तन्त्रसाधना के अनन्तर उनकी जन्मदात्री माँ चन्द्रमणि दक्षिणेश्वर में आयी (१८६५ ई. मे)। उस समय ठाकुर सुबह उठकर सर्वप्रथम अपनी जन्मदात्री माँ का चरण स्पर्श किया करते थे। उसके वाद मन्दिर मे जाते थे। 'मातृदेवो भव।' चन्द्रमणि भी देवी ही थी। ठाकुर की मातृ-भक्ति असाधारण थी। माँ के मन में आघात न लग जाय इस कारण उन्होंने छिपकर संन्यास लिया था। वे श्रीवृंदावन मे भी नही रह सके, क्योंकि वे अपनी माँ को रोते हुए नही देख सकते थे। यहाँ हम श्रीरामकृष्ण को आदर्श मानव-रूप मे पाते हैं। सासारिक दायित्व-ज्ञान के साथ-साथ स्नेहममता की भी उनमे जरा-सी कमी नही थी। मोहातीत विज्ञानी की अवस्था मे प्रतिष्ठित होने पर भी माँ की मृत्यु से अबाध अश्रुधाराएँ उनके दोनों कपालो को प्लावित करती रही। उन्होंने शास्त्रानुसार सन्न्यास लिया था। पितृकर्म आदि में तो सन्न्यासी को अधिकार नही है। उन्होंने गगाजल मे खडे हो अश्रुजल से तर्पण करके पुत्र का कर्तव्य पूर्ण किया।

चन्द्रमणि आदर्श महिला थी। सारा जीवन देव-द्विज-आर्त-

सेवा में बिताकर अन्तिम दिनो में वे गगा के तट पर गगा और गदाधर के निकट आकर रहने लगी थी। प्राय बारह वर्ष गगातट पर निवास करने के बाद उन्होंने देवी-लोक को प्रस्थान किया (२७ फरवरी, १८७६ ई.)।

ठाकुर की माँ सरलता की मूर्ति थी। भगवान् को छोडकर उन्हे न तो कोई चिन्ता थी और न किसी सासारिक वैभव में ही उन्हे आकर्षण था। मथुरबाबू ठाकुर को बाबा कहते थे। ठाकुर की माँ के दक्षिणेश्वर मे आने पर उन्हे वे 'ठाकुर-माँ (दादी) कहकर पुकारते थे। मथुरबाबू अब तक अपने बाबा को कुछ नहीं दे सके थे। एक बार लिखा-पढी कर वे उन्हे एक तालुका देना चाहते थे परन्तु ठाकुर उन्हे डडा लेकर मारने के लिए उद्यत हुए। इससे उनके मन में बडा खेद हुआ। मथुरबाबू ने एक दिन ठाकुर-माँ से कहा—"यदि आप मुझे पराया न समझें तो जो आपको इच्छा हो ऐसी कोई वस्तु मुझसे ले लीजिये।" वृद्धा को बहुत सोच-विचार करने पर भी किसी वस्तु की कमी नहीं मालूम पडी। सहसा याद पडा कि उनकी मिस्सी खतम हो गयी है। हँसकर उन्होने कहा—"अब याद आ गया। यदि देना ही चाहते हो तो एक आने की मिस्सी मुझे ला दो।" सुनकर मथुरबाबू की आँखो में आँसू भर आये। भावावेग से ठाकुर-माँ को प्रणाम कर उन्होंने सोचा—'अगर ऐसी माँ न हो तो ऐसा त्यागी पुत्र कहाँ से आये ?'.

* * *

शक्तितन्त्रोक्त सभी प्रयोग में सिद्धिलाभ के उपरान्त ठाकुर वैष्णव-तन्त्रोक्त पच प्रयोगो के साधन का व्रत किया। सम्भवत १८६४ ई में जटाधारी नामक एक रामायत पन्थी साधु दक्षिणेश्वर

आये। इस साधु से राममन्त्र की दीक्षा ग्रहण कर ठाकुर वात्सल्य भाव की साधना में प्रवृत्त हुए। जटाधारी के पास अष्टधातु से बनी हुई श्रीरामचन्द्र के बालस्वरूप की प्रतिमा थी। उसका नाम रामलाला रखा था। किन्तु अलौकिक प्रेमभक्ति से जटाधारी अपने पास के उस विग्रह को ही अपने इष्टदेव की भावघनमूर्ति समझते थे। इसी कारण उस मूर्ति की पूजा-सेवा में तन्मय हो वे ईश्वरीय भाव के दिव्यानन्द से भर उठते थे। उन्हें दिव्य-दर्शन होता था — उनके रामलाला चिन्मयरूप धारण कर खेलने लगते थे — नाना भावों से उन्हें दर्शन देते थे और चिर-संगी रूप में सदा उनके साथ रहते थे।

जटाधारी से वात्सल्य भाव के साधन में दीक्षित होने के बाद ठाकुर भी इस भाव में डूब गये। वे जटाधारी के निकट चुपचाप बैठे रहते — तन्मय होकर रामलाला के दिव्य खेल और दिव्य लीलाएँ देखते रहते। उसी समय एक बड़ी अद्भुत घटना घटी। रामलाला अब जटाधारी के पास रहना नहीं चाहते थे। धीरे-धीरे वे श्रीरामकृष्ण के बहुत लाड़ले बन उठे। जब भी वे जटाधारी के पास से चलने को उठ खड़े होते — रामलाला भी उनके साथ ही चल पड़ते। मना करने पर भी सुनते ही नहीं थे। खेलते-कूदते वे साथ ही चले आते। कभी वे गोदी में चढ़ने के लिए जिद्द करने लगते।

ठाकुर कहते थे — "एक दिन मैं नहाने के लिए जा रहा था — रामलाला ने भी जिद् पकड़ ली साथ जाने की। क्या करता, आखिर में ले ही गया। उसके बाद जल में से किसी तरह वह निकलना ही नहीं चाहता था। कहने पर कुछ सुनता भी नहीं था। अन्त में गुस्से से मैंने उसे जल में डुबाते हुए कहा — 'ले

जितना डूबना है डूब ।' और मैंने सचमुच देखा कि जल के भीतर उसका दम घुटने लगा । तब उसका कष्ट देखकर मेरे मन में आया कि यह मैंने क्या कर डाला । तब मैं उसे जल से निकाल गोदी में उठाकर घर ले आया ।"

और भी कितनी ही दिव्य लीलाएँ चलती थीं । धीरे-धीरे रामलाला निरन्तर ठाकुर के ही पास रहने लगे । जटाधारी के पास जाने का नाम भी नहीं लेते थे । एक दिन वृद्ध साधु जटाधारी रसोई तैयार करके बैठे थे—मगर रामलाला कहाँ ? खोजते-खोजते देखा —रामलाला श्रीरामकृष्णदेव के कमरे में आनन्द में खेल रहे हैं, वे जबरदस्ती रामलाला को ले आये । इसी प्रकार बहुत दिनों तक रामलाला के साथ दिव्य क्रीडाएँ चलती रहती ।

उसके बाद एक दिन जटाधारी ने ठाकुर के पास आ सजल-नयन होकर कहा —"रामलाला ने कृपा कर मेरे हृदय की आकांक्षा को पूर्ण कर दिया है । जिस भाव में मैं देखना चाहता था, उसी भाव में मुझे दर्शन दिया और कहा —अब तुमको छोड़कर वह कहीं नहीं जायेगा । तुम्हारे पास वह सुखी है, यह सोचकर मुझे बड़ी प्रसन्नता है ।" यह कह रामलाला को ठाकुर के हाथों में सौंप कर बाबाजी ने विदा ली । तब से रामलाला श्रीरामकृष्ण के पास रहने लगे ।

साधारण मनुष्य की दृष्टि में रामलाला एक धातुमयी मूर्ति से अधिक कुछ नहीं है । किन्तु ठाकुर के सन्निकट तो वह दिव्य लीलामय चिन्मय बाल-भगवान्-स्वरूप है । भवतारिणी की मृन्मयी मूर्ति जिस प्रकार चिन्मयी हो गयी थी और लीलामयी होकर श्रीरामकृष्ण के साथ दिव्य लीलाएँ करती थी, उसी प्रकार रामचन्द्र की यह छोटीसी मूर्ति भी बालक रामचन्द्र-रूप में

चिन्मय रूप धारण कर उन्हें दर्शन देती थी।

यह दर्शन स्थूल चक्षुओं से होने वाला साधारण दर्शन नहीं था। यह दर्शन था—भावमय चक्षु का दर्शन, दिव्य चक्षु का दर्शन। भावचक्षु के बिना चिन्मय रूप का दर्शन नहीं हो सकता। यहाँ तक कि स्वयं श्रीकृष्ण के सखा अर्जुन को भी भगवान् के वास्तविक स्वरूप को देखने के लिए दिव्य चक्षुओं की आवश्यकता पड़ी थी। यह दिव्य भाव असाधारण अनुभूति है। उससे भी अधिक असाधारण अनुभूति है महाभाव। ठाकुर कहते थे—"पूजा की अपेक्षा जप बड़ा है, जप की अपेक्षा ध्यान महत्तर है, ध्यान से भाव का अधिक महत्त्व है और भाव की तुलना में महाभाव उत्तम माना गया है।" 'महतो महीयान्' के भाव को ही महाभाव कहते हैं। इसी महाभाव में समस्त भाव समाविष्ट हो जाते हैं और इस महाभाव में ही सब भावों की सम्पूर्णता है। प्रेमस्वरूप ईश्वर महाभावमय है। महाभाव का ही दूसरा नाम प्रेम है। इसी लिए तो कहा गया—'स ईश: अनिर्वचनीयप्रेमस्वरूप:।'

* * *

वात्सल्य भाव की साधना के समय ठाकुर अपने को माँ कौशल्या समझते थे। अपने ऊपर उन्होंने तन, मन और वाणी से नारी भाव—मातृभाव का आरोप कर लिया था। वात्सल्य में प्रतिष्ठित होने के अनन्तर ठाकुर के मन में मधुर भाव के साधन की तीव्र इच्छा हुई।

वैष्णवशास्त्र मधुर-भाव को शान्तादि भावपंचक का सार अथवा परिपूर्ति कहकर वर्णन करते हैं। उनके मत में एकमात्र मधुर भाव में ही शान्त आदि सभी भावों का समावेश हो जाता है। मधुर भाव का साधन करते समय वे नारी-वेश धारण करते

थे। ठाकुर के अभिशात सेवक मथुरबाबू ने उनके लिए बहुमूल्य बनारसी साड़ी, घाघरा, ओढ़नी, चुनरी तथा कीमती सोने के गहने आदि लाकर दे दिये। इस वेश में अति निकट सम्बन्धी हृदयराम भी ठाकुर को भ्रम से नारी ही समझ बैठते थे।

श्रीरामकृष्ण के जीवन की — जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त— प्रत्येक घटना धर्म की ही प्रतिष्ठा के लिए थी। इसलिए वे प्रत्येक भाव का साधन करते समय शास्त्रानुसार ही उस भाव का लिंग या चिह्न धारण करते थे। तन्त्रसाधना के समय वे रक्तवस्त्र, सिंदूर और रुद्राक्ष आदि का धारण करते थे। वैष्णवतन्त्र की साधना के समय भी वे आचार्योक्त वेशभूषा यथा — श्वेतवस्त्र, श्वेतचन्दन और तुलसीमाला आदि धारण करते थे — ऐसा सुना जाता है। उनके अद्वैत भाव की साधना के समय भी उन्होंने शिखा-सूत्र का त्याग करके सन्यास के चिह्न — काषाय वस्त्र को धारण किया था। सब व्यवहारों में वे दीर्घकाल से विस्मृत शास्त्र-मर्यादा का ही पालन करते थे।

अब ठाकुर की श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए व्याकुलता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी। उनकी प्रार्थनाओं एवं करुण क्रन्दनों से दिशाएँ परिपूरित हो गयी। श्रीकृष्ण का विरह उनके मन और प्राण में इस तरह व्याप्त हो गया कि उन्हें आहार और निद्रा का परित्याग किये दिन, दिन के बाद पक्ष और पक्ष के बाद मास बीतते चले गये — सब कुछ छोड़कर अस्थिर प्राण से केवल वे विलाप करने लगे। हृदय की अति तीव्र व्याकुलता के कारण उन्हें पुनः गात्रदाह होने लगा। इस समय के विरह के प्रसंग में उन्होंने बताया था कि श्रीकृष्ण का विरह इस समय इतना प्रबल हो गया था कि उनके शरीर के प्रत्येक रोमकूप से समय-समय पर बूँद-

बूंद रक्त निकलने लगा था। देह की सभी ग्रंथियाँ शिथिल हो गयी थी और हृदय की तीव्र यन्त्रणा से वे मृत के समान संज्ञाशून्य होकर पड़े रहते थे।

वैष्णवशास्त्रों में लिखा है कि श्रीराधारानी की कृपादृष्टि के बिना श्रीकृष्ण का दर्शन असम्भव है। इसलिए ठाकुर अब एकाग्र मन से श्रीराधारानी के ध्यान में ही निमग्न हो गये। फलस्वरूप थोड़े ही दिनों में राधारानी ने उन्हें दर्शन दिया। केवल दर्शन ही नहीं अपितु सर्वमाधुर्यमयी राधारानी उनके अंगप्रत्यंग में व्याप्त हो गयी। बाद में उस दर्शन के सम्बन्ध में ठाकुर ने भक्तों को बताया था — "श्रीकृष्ण-प्रेम की दीवानी उस निरुपम पवित्रोज्ज्वल मूर्ति की महिमा और माधुर्य का वर्णन कर सकना असम्भव है। श्रीराधारानी की अंगकान्ति नागकेशरपुष्प के केशर के समान गौर-वर्ण थी।"

उनके शरीर में श्रीराधिका के प्रविष्ट होने के अनन्तर वे अपने को श्रीराधिका ही समझने और कहने लग गये एवं मधुर भाव की पराकाष्ठा से प्रसूत महाभाव का प्राबल्य उनके भीतर दिखायी पड़ने लगा। उनके अंगों में श्रीराधिका का अनिन्द्य सौन्दर्य खिल उठा। उनका पूरा शरीर मानो स्त्री-रूप — पूर्णतया श्रीराधिका के रूप में परिणत हो गया — भाव में, महाभाव में, श्रीकृष्ण-प्रेम में, देह के रूप में, गुण में और हरेक विषय में। इसके थोड़े ही समय बाद वे श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त करने में सफल हुए। भगवान् की वह दिव्य-मूर्ति उनके श्रीअंगों में प्रवेश कर गयी। [illegible] दर्शन के आनन्द से बहुत दिनों तक वे विभोर होते रहे। कभी उ[illegible] ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र कीट तक में श्रीकृष्ण का ही दर्शन होता और कभी वे अनुभव करते कि वे स्वयं ही कृष्णस्वरूप

हैं। आत्मानुभूति के समस्त वैभवों से युक्त ठाकुर का उस समय का उपशान्त और आनन्दमय जीवन महाभाव से परिपूर्ण हो गया था। उसी भावावेश में वे हरदम डूबे रहते। उनके भीतर श्रीकृष्ण और श्रीराधिका का मिलनमय रासोत्सव चलता रहता। एक प्रकार के अनिर्वचनीय आनन्दमय की अनुभूति उन्हें हो रही थी।

इसके कई साल बाद जब भक्तगण दक्षिणेश्वर में इकट्ठे हुए तब एक दिन ठाकुर बगीचे से एक नीला फूल तोड़ लाये और प्रसन्न मन से उसे सबको दिखाते हुए उन्होंने कहा—"मधुर भाव के साधनकाल में जिस श्रीकृष्णमूर्ति का दर्शन हुआ था उसके अंगों का वर्ण इस फूल के समान था।"

इस समय एक अन्य दर्शन की कथा भी उन्होंने भक्तों को सुनायी—"एक दिन विष्णुमन्दिर के सामने के दालान में बैठा मैं श्रीमद्भागवत का पाठ सुन रहा था। सुनते-सुनते भावावेश में श्रीकृष्ण के ज्योतिर्मय स्वरूप के दर्शन हुए। बाद में मैंने देखा—इस मूर्ति के पादपद्मों से रस्सी के समान एक ज्योति निकली, और वह श्रीमद्भागवत का स्पर्श करती हुई (अपनी छाती की ओर संकेत करते हुए) मेरे हृदय में विलीन हो गयी।" भगवान, भागवत और भक्त—ये तीनों एक रूप होकर ठाकुर के भीतर संगत हुए। तीनों ही एक हैं।

सब प्रकार के द्वैतभाव-साधनो की चरमसिद्धि को प्राप्त करने के बाद ठाकुर के मन में भावातीत अद्वैतसाधना की इच्छा जागृत हुई। उनके विशुद्ध मन में जिस किसी अभिलाषा का उदय होता, जगन्माता अविलम्ब उसे पूर्ण कर देती थी। वेदान्त-साधन की इच्छा के साथ ही साथ बड़े अद्भुत ढग से जटाजूटधारी ब्रह्मदर्शी नागा परिव्राजकाचार्य श्रीमान् तोतापुरीजी दक्षिणेश्वर में आये। नर्मदातीर में तथा अन्यान्य अनेक स्थानों मे दीर्घ चालीस वर्ष पर्यन्त कठोर साधना के फलस्वरूप निर्विकल्प समाधि योग से उन्होने ब्रह्मोपलब्धि की थी। नाना तीर्थों में विचरण करते हुए वे ब्रह्मज्ञ महात्मा दक्षिणेश्वर में आ पहुँचे। गगा के तट पर कालीमन्दिर की विस्तृत छत के नीचे उन दोनों की प्रथम भेंट हुई। ठाकुर अन्यमनस्क बैठे थे। उनके तपोज्ज्वल मुख की ओर देखते ही तोतापुरी उन्हे पहचान गये। उन्हे देखते ही स्तब्ध होकर उन्होने सोचा—'यह तो असाधारण पुरुष है—वेदान्त साधन का वास्तविक अधिकारी।' स्वय श्रीतोता ने ठाकुर से जिज्ञासा प्रकट की— "तुम वेदान्त-साधना करोगे ?"

तोत[illegible] सुनकर ठाकुर की शान्ति मानो विच्छिन्न हो गयी। उन्होने [illegible] बार उन महानुभाव को अच्छी तरह देखा। फिर बोले—"मै कुछ नहीं जानता—मेरी माँ ही जानती हैं। जो वे

कहेगी वही मैं करूँगा।"

"ठीक है, तो जाओ, अपनी माँ से पूछ आओ"—तोतापुरी ने कहा। ठाकुर धीरे-धीरे मन्दिर में गये और भावावेश में उन्हें माँ का कण्ठस्वर सुनायी पडा—"जाओ वेदान्त-साधना करो। तुम्हारे लिए ही इस सन्यासी का आगमन हुआ है।" माँ का आदेश पाकर बडी खुशी से वे तोतापुरी के पास आये और बोले—"माँ की आज्ञा हो गयी है।" तोतापुरी अद्वैत ज्ञानी थे। उनकी दृष्टि में देवी-पूजा त्रिगुणमयी ब्रह्मशक्ति की उपासना आदि सब माया का ही खेल था—बिल्कुल अविद्या की लीला। ठाकुर को मन्दिर की माँ का आदेश लेकर आते देख तोतापुरी समझ गये कि यह पुरुष शक्ति-साधक है। अस्तु, तोतापुरी ने कहा कि वेदान्त-साधन में प्रवृत्त होने से पूर्व उन्हें (ठाकुर को) अपना श्राद्धादि करके विरजा होमाग्नि मे शिखासूत्र की आहुति देकर शास्त्रानुसार सन्यास ग्रहण करना होगा। ठाकुर एक बार इधर-उधर देखकर बोले—"यह सब छिपकर करने से यदि काम चल सके तो सन्यास लेने में मुझे कोई आपत्ति नही है। करीब एक साल से मेरी जन्मदात्री माता यहाँ आयी हुई हैं। सन्यासी हुआ जानकर उनके मन में बडा आघात पहुँचेगा। उनके मन को मैं किसी तरह का कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता।"

तोतापुरी इस बात के लिए राजी हो गये। उन्होंने चुप श्रीरामकृष्ण को सन्यास देने के शुभदिन की प्रतीक्षा मे पंच के नीचे आसन लगा लिया।

शुभ दिन आने पर पुण्यमय ब्राह्ममुहूर्त में त शिष्य को साथ लेकर पंचवटी के समीपस्थ कुटी म प्रवे होम की पूर्ण सामग्री वहाँ प्रस्तुत थी। यथाविधि

तब भी तोतापुरी को पूर्णतया विश्वास नहीं हुआ । क्या
भी सम्भव है ? जिस निर्विकल्प समाधि की साधना करने में
चालीस वर्ष तक कठोर तपस्या करनी पड़ी, उसी अवस्था
शिष्य ने इतने अल्प समय में प्राप्त कर लिया । . . .नागा
सी पुनः शिष्य की परीक्षा लेने लगे । विशेष रूप से उन्होंने
लक्षणों की जाँच की । देखा, श्वास-प्रश्वास एकदम बन्द है
हृदय की गति रुकी हुई है । शिष्य के शरीर को बारम्बार हाथ
र्श करते हुए देखा — चेतना का कोई लक्षण शेष नहीं
केवल मुखमण्डल पर एक दिव्यानन्द झलक रहा है जिससे
अंग प्रकाशमय हो गये हैं । आनन्द और विस्मय से
री चिल्ला उठे — "यह क्या दैवी माया ?" सच ही तो
विकल्प समाधि थी ।

इसके बाद तोतापुरी शिष्य को समाधि से व्युत्थित करने
प्रयत्न में लग गये । गम्भीर स्वर में उन्होंने 'हरि ॐ'
ा उच्चारण आरम्भ कर दिया । बहुत देर तक 'हरि ॐ'
ा उच्चारण करते-करते क्रमशः ठाकुर का मन सहजा-
ं उतर आया । उन्होंने आँखें खोलीं ।

तोतापुरी स्तम्भित रह गये । समझ गये — शिष्य अलौकिक
है । तोतापुरी परिव्राजक सन्यासी थे । एक स्थान पर तीन
से अधिक रह सकना उनके लिए सम्भव नहीं था । किन्तु
दिव्य आकर्षण के वशीभूत होकर वे ग्यारह माह तक दक्षिणे-
में रह गये । इस अवधि में शिष्य को अखण्ड ब्रह्मानन्द में —
कल्प समाधि में — दृढ रूप से प्रतिष्ठित करना ही उनकी
हेप चेष्टा थी । एक साधन के बाद नया साधन चलने लगा ।
के बाद अनुभूति होती रही । वेदान्त का ही विचार होता

था, और उसी की साधना होती थी।

ठाकुर के दिव्य संग में तोतापुरी इतने आनन्दमग्न हो गये कि जाने की बात मानो भूल ही गये। इतने दीर्घकाल तक एकत्र रहने के फलस्वरूप तोतापुरी के वेदान्तमय जीवन पर श्रीरामकृष्णदेव के उदार भाव का प्रभाव प्रचुर मात्रा में पड़ा। और परमप्रज्ञ तोतापुरी इस बात को समझ गये कि शिष्य की अद्वैत भाव की सिद्धि में वे निमित्त मात्र हैं। एक दिन की एक साधारण सी घटना ने नागा सन्यासी के प्रज्ञाघन मन में एक गम्भीर छाप डाल दी।

ठाकुर ने एक बार उनसे जिज्ञासा की—"आपको तो ब्रह्मलाभ हो गया है, सिद्धि भी मिल गयी है। अब भी आप क्यों नित्य ध्यान का अभ्यास करते हैं?" नागा सन्यासी ने अति गम्भीर भाव से उनके चमकते लोटे की ओर देखकर कहा—"देखो, कितना चमक रहा है? मगर यदि इसे नित्य न मांजा जाय तो क्या यह मलिन नहीं हो जायेगा? मन को भी ऐसे ही समझो। ध्यानाभ्यास के द्वारा नित्य यदि मन का परिष्कार न किया जाय तो यह मलिन हो जायेगा।" गुरु के मुख की ओर देखते हुए स्मित मृदुकण्ठ से ठाकुर ने कहा—"किन्तु यदि सोने का लोटा हो तो?" तोतापुरी ने स्वीकार किया कि सोने का लोटा हो तो उसे नित्य मांजने की आवश्यकता नहीं। और वह शिष्य का संकेत समझ गये। श्रीरामकृष्ण साधारण साधक तो थे नहीं। किसी साधन-भजन द्वारा भी वे सिद्ध नहीं हुए थे। वे तो चिर शुद्ध एवं नित्य सिद्ध थे।

ठाकुर के चिर शुद्ध परिपूर्ण जीवन को देखकर तोतापुरी ने और भी बहुत कुछ सीखा। निर्विकल्प समाधि के बाद भी

तोतापुरी के जीवन में जो कमी थी, वह श्रीरामकृष्णदेव के दिव्य संग से पूरी हो गयी।

तोतापुरी बचपन से ही अद्वैतवादी थे। एकाग्र निष्ठा से शुद्ध अद्वैतभाव की ही उन्होंने साधना की थी। ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ वे माया का ही खेल मानते थे। वहाँ द्वैत भाव के लिए कोई स्थान नहीं था, देव-देवी की कोई सत्ता नहीं थी और सगुण ईश्वर का भी कोई अस्तित्व नहीं था —— एक अद्वैत भाव ही उनके लिए सब कुछ था। उसी की उन्होंने साधना की थी। किन्तु सर्वभावमय श्रीरामकृष्ण का जीवन सम्पूर्ण स्वतन्त्र था। सभी भावों का समन्वय था उनके जीवन में। अद्वैत भाव में, निर्विकल्प समाधि में प्रतिष्ठित होने के बाद भी वे अनेक बार द्वैत-भावापन्न होकर भक्ति एवं भक्त के भाव से लवलीन रहा करते थे। बचपन से चले आ रहे अभ्यास के कारण उस समय भी वे सुबह-शाम तालियाँ बजाकर हरिनाम, माँ का नाम और अन्य देवी-देवताओं का नाम-गान करते थे। एक दिन ठाकुर पचवटी मे नागा संन्यासी के पास बैठे हुए थे। अनेक प्रसंग और आलोचनाएँ चल रही थी। उसी समय सन्ध्या का समागम देखकर ठाकुर कथा बन्द कर हाथ से तालियाँ बजाते हुए भगवान् का नाम-गान करने लगे। इसे देखकर नागा सन्यासी तो स्तब्ध रह गये —— यह कर क्या रहा है? बड़े विद्रूप के स्वर में उन्होंने कहा —— 'अरे रोटी क्यों ठोंकते हो?' ठाकुर भावस्थ होकर बालक के समान हँसने लगे और बोले —— 'हाथ से तालियाँ बजाकर भगवान् का नाम लेने को आप 'रोटी ठोंकना' बोलते है।" देख-सुनकर तोतापुरी के प्रज्ञाचक्षु मानो खुल गये। उन्हे समझ आ गयी।

तोतापुरी के दक्षिणेश्वर में निवासकाल के अन्तिम भाग की

एक और घटना है। वे शक्ति को तो मानते नही थे। इसे भी वे स्वीकार नही करते थे कि शक्ति की कृपा के बिना ब्रह्मलाभ असम्भव है। इतना मानने का ही उन्हे प्रयोजन था। अथवा तोतापुरी को निमित्त करके, ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति में कोई भेद नही है यह सत्य प्रतिष्ठित हुआ।

तोतापुरी सहसा कठिन रक्तातिसार रोग से आक्रान्त हो गये। सभी प्रकार की चिकित्साएँ, नाना औषधियाँ तथा पथ्य आदि सब व्यर्थ हुआ। किसी प्रकार भी रोग का उपशम नही हो रहा था। गहरी रात मे वे धूनी के पास बैठे थे। पेट की असह्य यन्त्रणा से उस समय वे छटपटा रहे थे। इस कारण तोता ने सोचा—मन को समाहित कर रखूँ तो शरीर का कष्ट शरीर में पडा रहेगा। ध्यान में बैठे, किन्तु मन को सहृत नही कर सके। मन मानो पेट की यन्त्रणा के साथ ही मिलित रहना चाहता था। बारम्बार चेष्टा करन पर भी जब उन्ह सफलता नही मिली तब उनके मन में अति तीव्र वैराग्य का उदय हुआ—इस पाचभौतिक देह के लिए मै कष्ट क्यो भोगूँ? इस देह को गगा में विसर्जित कर दूँगा। मन में इस भावना के जागते ही तोतापुरी दृढसकल्प-पूर्वक ब्रह्म-समाधि म लीन हो गये। धीरे-धीरे गगा-गर्भ में उतर पडे। क्रमश गहरे जल की ओर अग्रसर होने लगे। बराबर बढते चले गये मगर गहरा जल उन्ह नही मिला। क्रमश वे गगा के दूसरे किनारे पर पहुँच गये। तब भी गगा में घुटन भर से ज्यादा जल उन्हे नही मिला। तोतापुरी विस्मयाभिभूत हो गय। यह क्या दैवी माया? सहसा तोतापुरी का हृदय एक दिव्य प्रकाश म आलोकित हो उठा। उन्होने स्तब्ध होकर देखा—जल में, स्थल में—सर्वत्र शक्ति का ही स्पन्दन दिखायी दे रहा है। चराचर

विश्व-ब्रह्माण्ड सब उस महाशक्ति के निःश्वास से ही प्राणमय हो रहा था। जिस ब्रह्म का अब तक वे ध्यान करते आ रहे थे—वह ब्रह्म तो निर्लिप्त है। जो कुछ हो रहा है सब शक्ति का ही तो खेल है। उसी के इंगित से जन्म, मृत्यु, बन्धन और मुक्ति आदि होते हैं। शिव निर्गुण ब्रह्म होकर पड़े हैं और शक्ति ही सब लीलाएँ कर रही है।

इस प्रकार का अनुभव होने के साथ ही तोतापुरी ने अपने आपको पूर्ण स्वस्थ और स्वाभाविक अवस्था में पाया। मन मानो एक अव्यक्त आनन्द से भर गया। पुनः वे पचवटी में लौट आये। मन अनायास लोटने लगा—"या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता"—उसी देवी के चरणों में। शिवशक्ति के एकत्र मिलन-दर्शन से उनका हृदय अपूर्व आनन्द में उल्लसित हो गया।

अगले दिन सुबह ठाकुर ने जाकर देखा—तोतापुरी तो एक और ही व्यक्ति बने हुए थे। सर्वांग में आनन्द हिलोरें ला रहा था। उनका शरीर तो नीरोग था ही, मन भी पुलकित हो रहा था। ठाकुर के समीप उन्होंने पूर्वरात्रि की सब घटना और दिव्यानुभूति की बात कह सुनायी। सब कुछ सुनकर ठाकुर ने हँसते हुए कहा—'पहले तो आप माँ को नहीं मानते थे न। शक्ति को मिथ्या बताकर मेरे साथ बहुत तर्क-वितर्क करते थे। अब तो देखकर समझ में आ गया न? माँ ने मुझे पहले ही समझा दिया है—ब्रह्म और शक्ति परस्पर अभिन्न हैं—अग्नि और दाहिका शक्ति के समान।"

इसके कुछ दिन बाद 'मन्दिर की माँ' को प्रणाम कर तोतापुरी ने ठाकुर से चिर दिन के लिए विदा ले ली।

श्रीरामकृष्ण के जीवन में जिस प्रकार एक ओर ईश्वरी शक्ति व्याप्त थी — दूसरी ओर उनके विराट् मन में परदु:खका-सरता का भाव भी कम नहीं था। इस समय की एक छोटी-सी घटना से इसकी मनोरम छबि हमें देखने में आती है।

मथुरामोहन की पत्नी जगम्बा दासी सहसा कठिन रोग से विपन्न हो गयी। रोग बहुत ही बढ़ गया। कलकत्ते के बड़े से बड़े डाक्टर-वैद्यों ने भी जवाब दे दिया। विवश हो मथुरबाबू दौड़कर दक्षिणेश्वर पहुँचे। उनकी हालत पागल जैसी हो रही थी। श्रीरामकृष्णदेव के चरणों में गिरकर रोते-रोते उन्होंने कहा — 'मुझे जो कुछ होना है वह तो होने जा रहा है। बाबा, आपकी सेवा के अधिकार से भी अब वंचित हो जाऊँगा। अब आपकी और सेवा नहीं कर सकूँगा।'

मथुरबाबू का यह कष्ट देखकर ठाकुर के प्राण करुणा से विगलित हो गये। उन्होंने भावाविष्ट हो मथुरबाबू से कहा — 'डरो मत! तुम्हारी पत्नी ठीक हो जायगी।' बाबा की अभय-वाणी सुन मथुरबाबू ने जानबाजार में लौट आकर देखा कि पत्नी की हालत अब धीरे धीरे अच्छी हो रही है।

ठाकुर बताते थे — "उस दिन से जगदम्बा दासी धीरे-धीरे नीरोग होने लगी और उसके रोग का भोग (अपने शरीर की ओर इशारा करके) इस शरीर में आ गया।'

१२

ब्रह्म की उपलब्धि का भी स्तर है। निर्विकल्प समाधि की गम्भीरता एवं स्थिति-विशेष में आनन्द और अनुभूति का तारतम्य रहता है। इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव ने एक बार बताया था—"देवर्षि नारद दूर से इस ब्रह्म-समुद्र को देखकर ही लौट गये थे। शुकदेव ने इसका स्पर्शमात्र किया था। और जगत्गुरु शिव उसी अमृतसमुद्र का केवल तीन घूंट जल पीकर शव हो पड़े रह गये।" ...

साधारण जीवकोटि का मनुष्य कठोर साधना के बल से निर्विकल्प समाधि लाभ कर सकता है, किन्तु दीर्घकाल तक उसमें स्थित नहीं रह सकता। शास्त्र में लिखा है कि अधिक से अधिक वह इक्कीस दिन इस अवस्था में रह सकता है, उसके बाद वह तत्वरूप में लीन हो ही जायेगा। सूखे पत्ते की तरह उसकी देह झड़ जायेगी। किन्तु ईश्वरकोटि के या अवतारी व्यक्ति दीर्घकाल तक निर्विकल्प समाधि में अवस्थान कर सकते हैं एवं उस समाधि से व्युत्थित होने के बाद लोककल्याण की इच्छा-रूप शुद्ध संकल्प का अवलम्बन कर जगत् में रहते हैं। किन्तु श्रीरामकृष्ण के जीवन का इतिहास तो और भी अभूतपूर्व है और भी अलौकिक। उन्होंने लगातार छः मास तक निर्विकल्प समाधि में अवस्थान किया था। उसके बाद महाशक्ति की विशेष इच्छा से लोककल्याण के

लिए भौतिक जीवन के अन्तिम दिनों तक उन्हें भाव मुख* होकर रहना पड़ा था। इस समय वे निर्विकल्प और सविकल्प, अद्वैत और द्वैत, विज्ञान एवं परम भक्ति में विचरण करते रहते थे।

*   *   *

छः मास के दीर्घकाल तक ब्रह्मानन्द का उपभोग करने के बाद उन्हें भावमुख होने के लिए आद्याशक्ति द्वारा आदेश हुआ था—यह हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। इसके बाद ठाकुर के मन में अन्यान्य धर्मों के बारे में जिज्ञासा हुई। उन्होंने जगदम्बा से कहा—"माँ अन्यान्य धर्मावलम्बी किस भाव से तुम्हें भजते हैं—यह मुझे बताओ।"

कुछ दिन बाद दक्षिणेश्वर में सूफी सम्प्रदाय का एक मुसलमान फकीर आया। उसका नाम गोविन्दराय था। गोविन्द-राय की सरलता और प्रेम देखकर श्रीरामकृष्णदेव बहुत मुग्ध हो गये और उनसे दीक्षा ग्रहण कर इस्लाम धर्म के साधन में प्रवृत्त हो गये। इस समय वे 'अल्लाह' के नाम का जप करते थे, नमाज पढ़ते थे एवं आहार विहार आदि में उन्होंने सम्पूर्णतया मुसलमानी भाव को अपना लिया था। इस भाव में तीन दिन साधन करने के बाद उन्हें लम्बी दाढ़ी वाले सुगम्भीर ज्योतिर्मय एक पुरुष-विशेष का दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ। बाद में सगुण विराट ब्रह्म की उपलब्धि करने के अनन्तर उनका मन तुरीय निर्गुण ब्रह्म में लीन हो गया।

---

* भावमुख शब्द का अर्थ है कि क्षुद्र 'अहं' का त्याग करके सभी अवस्थाओं में विराट 'अहं' अर्थात् ईश्वरेच्छा के साथ मन को एकीभूत करते हुए लोक-कल्याण साधन करना।

तेरह सौ वर्ष पूर्व मुहम्मद ने सगुण एकेश्वरवाद का प्रचार किया था। उस समय उन्होंने अपनी शिष्यमण्डली को उपदेश दिया था—'एक ही ईश्वर है और एक ही धर्म है।' यह एक ईश्वर वेदान्त में वर्णित निराकर सगुण ब्रह्म का ही नामान्तर है। और एक धर्म है—वेदान्त-धर्म। बाह्य दृष्टि से जो अनेक धर्म दिखायी पड़ते हैं वस्तुतः सभी एक ही है।

इसके प्रायः डेढ़ साल बाद की घटना है। ठाकुर के मन में ईसामसीह द्वारा प्रवर्तित धर्म के गूढ़ मर्म को जानने की इच्छा हुई। दक्षिणेश्वर में कालीमन्दिर के दाहिनी तरफ यदुलाल मल्लिक का मनोरम बगीचे वाला मकान था। यदु बाबू और उनकी परम धार्मिक वृद्धा माँ ठाकुर के प्रति देवभाव से श्रद्धा रखते थे। यदु बाबू के बगीचे की बैठक की दीवार पर अन्यान्य चित्रों के बीच मेरी की गोद में विराजमान् शिशु ईसा की भी एक कमनीय मूर्ति टँगी थी। श्रीरामकृष्णदेव एक बार उस बैठकखाने में बैठे तन्मय होकर उस मूर्ति की ओर देख रहे थे। क्रमशः ईसा के अत्यद्भुत जीवन-चरित्र को सोचते-सोचते वे भावाविष्ट हो गये। उस समय उन्होंने देखा—मूर्ति मानो सजीव और ज्योतिर्मय हो उठी है। देवजननी और देवशिशु के अंग से निकलकर एक दिव्य ज्योति उनके शरीर में प्रवेश करने लगी। वे गम्भीर ध्यान में डूब गये। ध्यान में उन्होंने—ईसा की शान्तिमय दिव्यमूर्ति और प्रार्थना-मन्दिर को देखा। ईसाई पादरी धूपदीप जलाकर कातर प्राणों से पूजा और प्रार्थना में लगे हुए थे। भाव में मग्न हुए ही वे काली-मन्दिर लौट आये।

उनकी यह तन्मयता तीन दिनों तक चलती रही। जगन्माता क्षमारूप और प्रेमरूप से श्रीरामकृष्ण के हृदय-मन्दिर में उद्भासित

हो रही थी। इन तीन दिनों तक वे कालीमन्दिर में नहीं गये। अन्तिम दिन भाव-विभोर हो पचवटी के नीचे टहल रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा—एक गौरवर्ण देव-मानव-मूर्ति दिव्य-ज्योति को फैलाती हुई और उन्हीं की ओर देखती हुई आगे आ रही है। उनकी बडी-बडी आँखों में अपार करुणा भरी हुई है और मुखमण्डल पर देवभाव अंकित है। 'यह कौन महानुभाव हैं'—ठाकुर सोचने लगे। उनके हृदयतल से ध्वनि निकली—हो न हो, यह ईसामसीह ही हैं जिन्होंने जीव-कल्याण के लिए हृदय का रक्तदान कर दिया था। धीर शान्त भाव से पदविक्षेप करता हुआ वह परम पुरुष आगे बढकर ठाकुर को आलिंगन करके उनके शरीर में प्रविष्ट हो गया।

श्रीरामकृष्ण की दिव्य देह में दो हजार वर्षों की अनिर्वाण और अम्लान धर्मज्योति आ मिली। ठाकुर का मन विराट् ब्रह्म-समुद्र में डूब गया। कुछ वर्षों के बाद दक्षिणेश्वर में एक बार ईसा का प्रसग चला। उसमें उन्होंने भक्तों से जिज्ञासा प्रकट की—'क्यों जी, तुमने तो बाइबिल पढी है? बताओ तो सही, उसमें ईसा के चेहरे का किस प्रकार वर्णन किया गया है?. लेकिन मैंने देखा कि उनकी नाक कुछ चिपटी थी।'

• • •

श्रीरामकृष्णदेव ने बौद्ध धर्म, जैन धर्म या सिक्ख धर्म का भी साधन किया था या नहीं इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु भगवान् तथागत के सम्बन्ध में वे कहते थे—"बुद्धदेव की कथा बहुत सुनी है। वे भी दस अवतारों में एक अवतार हैं। ब्रह्म अचल, अटल, निष्क्रिय और बोधस्वरूप है। बुद्धि जब इस बोधस्वरूप में लीन होगी तभी ब्रह्मज्ञान होगा और मनुष्य तभी

युद्ध हो जायेगा।"

जैन धर्म-प्रवर्तक तीर्थंकरों पर एवं सिक्खों के आदि-गुरु नानक पर भी उनकी असाधारण श्रद्धा थी। गुरु नानक विदेह जनक के अवतार थे—ठाकुर कहा करते थे और तत्तद् धर्मों को भी वे भगवद्‌लाभ का सत्यपथ ही मानते थे। उनके कमरे में अन्यान्य देव-देवियों के चित्रों के साथ-साथ महावीर तीर्थंकर की भी एक प्रस्तरमय प्रतिमूर्ति स्थापित थी।

"सभी धर्म सत्य है, जितने मत उतने ही पथ"—यही वह सत्यवाणी थी जो ठाकुर को सब धर्मों के साधन से प्राप्त हुई थी। यह विचार या बुद्धि परिकल्पित नहीं है। ठाकुर के अन्दर से सर्वधर्मसमन्वय रूप जो महान् धर्म जगत् में प्रचारित हो रहा था—उसी के वे स्वयं जीवित-जाग्रत रूप हैं।

अन्तिम दिनों में जब वे काशीपुर के बगीचे में रह रहे थे, वहाँ अपना चित्र देख भावस्थ होकर उन्होंने कहा था—"इस मूर्ति की घर-घर में पूजा होगी।" उनकी अभयवाणी यह थी—"जिनका यह अन्तिम जन्म है, उन्हें यहाँ (उनके प्रचारित उदार धर्म-मत में) आना ही पड़ेगा।"—अर्थात् इस उदार धर्मभाव में भावित होकर जो लोग श्रीरामकृष्ण का आश्रय लेंगे, उनकी मुक्ति अवश्यम्भावी है।

१३

ठाकुर के छ मास तक निर्विकल्प अवस्था में रहने के बाद 'भावमुख' अवस्था में मन को उतारने के कारण ब्रह्मशक्ति की इच्छा से उन्हे कठिन उदर रोग ने आ घेरा। परिणाम यह हुआ कि उनका शरीर कंकाल मात्र होकर रह गया। अपने 'बाबा' का दुर्बल शरीर देखकर मथुरबाबू विशेष चिन्तित हुए। सामने वर्षाकाल था। वर्षाकालिक गंगाजल के सेवन से उनके पेट का रोग और बढ जायेगा यह सोचकर मथुरबाबू ने उन्हे कुछ दिनों के लिए कामारपुकुर भेज देने की तैयारी कर ली। कामारपुकुर में 'शिव का परिवार' जानकर जगदम्बा दासी ने खुद अपने हाथों से सब चीज-वस्तु जुटा दी -- बत्ती तक।

श्रीरामकृष्णदेव कामारपुकुर चले गये। हृदयराम और भैरवी भी साथ ही गये। लगभग सात वर्ष बाद ठाकुर को अपने बीच में पाकर आत्मीय स्वजनो और ग्रामवासियो के मन मानो आनन्दोत्सव मे लग गये। नववधू को लाने के लिए जयरामबाटी आदमी भेजा गया। श्रीशारदा देवी सानन्द कामारपुकुर आयीं। वस्तुत उनका यही प्रथम स्वामिदर्शन था।

श्रीशारदा देवी ने भी इधर कई वर्षों मे स्वामी को नहीं देखा था। सात वर्ष की आयु में उनका द्विरागमन हुआ था, उस समय श्रीरामकृष्णदेव जयरामबाटी गये थे। उस समय की अनुर

स्मृति से उनके मन में केवल इतना आ रहा था कि वह घर के एक कोने मे छिप गयी थी। उनको खोजकर भागिनेय हृदयराम ने बहुत से कमलपुष्पों द्वारा उनकी चरण-पूजा की थी। तब उन्होंने स्वयं ठाकुर के पैर धोकर अपने केशों से उन्हें पोंछा था और वह पंखा लेकर हवा करने लगी थी। यह देखकर सभी पड़ोसिनें हँसने लगी थी। बालिका श्रीशारदा देवी श्रीरामकृष्णदेव के पास में खड़ी होकर अपने नन्हे-नन्हें हाथों को हिलाते हुए उन्हे पंखा झल रही थी—उस दृश्य से भावुकों के हृदय में गहरी अनुप्रेरणा हिलोरें लेने लगती है।

जयरामवाटी मे रहते हुए इन कुछ वर्षों में श्रीशारदा देवी ने श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुना था। किन्तु कामारपुकुर आने के बाद उनके मन के सभी मेघ कट गये और उनके चक्षु-कर्ण का द्वन्द्व भी मिट गया। यह तो उसी प्रकार स्नेह और ममतामय हैं। कुछ ही दिनों में श्रीशारदा देवी ने उनकी सेवा का पूरा भार अपने हाथों पर ले लिया। ठाकुर भी स्नेह और ममता से समीप आकर पत्नी को और अधिक आकृष्ट करने लगे। वे प्रयत्नपूर्वक उन्हें सब छोटे-मोटे काम भी सिखाने लगे—यह भी बताना नहीं छोड़ा कि दिये की बत्ती कैसी रखनी चाहिये। उनके प्रेममय व्यवहार और अपनेपन से श्रीशारदा देवी अभिभूत हो गयी। समय का व्यवधान उनकी समीपता को नहीं मिटा सका। उनके मानो चिरकाल से मिले हुए एक ही प्राण थे—एक ही पदार्थ का यह भाग और वह भाग। ठाकुर नाना प्रकार के ईश्वरीय प्रसंग उन्हें सुनाते। श्रीशारदा देवी तन्मय होकर सब सुनती। ठाकुर को भावावेश होने पर वह विस्मय से उनकी ओर देखती रहती।

उनकी इस घनिष्ठता को भैरवी ब्राह्मणी नेक निगाह से

१३

ठाकुर के छ मास तक निर्विकल्प अवस्था में रहने के बाद 'भावमुख' अवस्था में मन को उतारने के कारण ब्रह्मशक्ति की इच्छा से उन्हें कठिन उदर रोग ने आ घेरा। परिणाम यह हुआ कि उनका शरीर कंकाल मात्र होकर रह गया। अपने 'बाबा' का दुर्बल शरीर देखकर मथुरबाबू विशेष चिन्तित हुए। सामने वर्षाकाल था। वर्षाकालिक गंगाजल के सेवन से उनके पेट का रोग और बढ़ जायेगा यह सोचकर मथुरबाबू ने उन्हें कुछ दिनों के लिए कामारपुकुर भेज देने की तैयारी कर ली। कामारपुकुर में 'शिव का परिवार' जानकर जगदम्बा दासी ने खुद अपने हाथों से सब चीज-वस्तु जुटा दी -- बत्ती तक।

श्रीरामकृष्णदेव कामारपुकुर चले गये। हृदयराम और भैरवी भी साथ ही गये। लगभग सात वर्ष बाद ठाकुर को अपने बीच में पाकर आत्मीय स्वजनों और ग्रामवासियों के मन मानो आनन्दोत्सव म लग गये। नववधू को लाने के लिए जयरामबाटी आदमी भेजा गया। श्रीशारदा दवी सानन्द कामारपुकुर आयीं। वस्तुत उनका यही प्रथम स्वामिदर्शन था।

श्रीशारदा देवी ने भी इधर कई वर्षों से स्वामी को नहीं देखा था। सात वर्ष की आयु में उनका द्विरागमन हुआ था, उस समय श्रीरामकृष्णदेव जयरामबाटी गये थे। उस समय की अस्फुट

स्मृति से उनके मन मे केवल इतना आ रहा था कि वह घर के एक कोने मे छिप गयी थी। उनको खोजकर भागिनेय हृदयराम ने बहुत से कमलपुष्पो द्वारा उनकी चरण-पूजा की थी। तब उन्होंने स्वय ठाकुर के पैर धोकर अपने केशों से उन्हे पोंछा था और वह पखा लेकर हवा करने लगी थी। यह देखकर सभी पड़ोसिनें हँसने लगी थी। बालिका श्रीशारदा देवी श्रीरामकृष्णदेव के पास में खड़ी होकर अपने नन्हें-नन्हे हाथो को हिलाते हुए उन्हे पखा झल रही थी——उस दृश्य से भावुको के हृदय मे गहरी अनुप्रेरणा हिलोरें लेने लगती है।

जयरामबाटी मे रहते हुए इन कुछ वर्षों में श्रीशारदा देवी ने श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुना था। किन्तु कामारपुकुर आने के बाद उनके मन के सभी मेघ कट गये और उनके चक्षु-कर्ण का द्वन्द्व भी मिट गया। यह तो उसी प्रकार स्नेह और ममतामय है। कुछ ही दिनो मे श्रीशारदा देवी ने उनकी सेवा का पूरा भार अपने हाथो पर ले लिया। ठाकुर भी स्नेह और ममता से समीप आकर पत्नी को और अधिक आकृष्ट करने लगे। वे प्रयत्नपूर्वक उन्हे सब छोटे-मोटे काम भी सिखाने लगे—यह भी बताना नहीं छोड़ा कि दिये की बत्ती कैसी रखनी चाहिये। उनके प्रेममय व्यवहार और अपनेपन से श्रीशारदा देवी अभिभूत हो गयी। समय का व्यवधान उनकी समीपता को नहीं मिटा सका। उनके मानो चिरकाल से मिले हुए एक ही प्राण थे——एक ही पदार्थ का यह भाग और वह भाग। ठाकुर नाना प्रकार के ईश्वरीय प्रसंग उन्हें सुनाते। श्रीशारदा देवी तन्मय होकर सब सुनती। ठाकुर को भावावेश होने पर वह विस्मय से उनकी ओर देखती रहती।

उनकी इस घनिष्ठता को भैरवी ब्राह्मणी नेक निगाह से

नहीं देख रही थी। उन्हें भय हुआ कि उनका शिष्य कहीं आदर्श से च्युत न हो जावे। वह ठाकुर को पत्नी से दूर रखने के लिए अनेक चेष्टाएँ करने लगी। किन्तु ठाकुर अपने कर्तव्य साधन में अटल थे। उससे ब्राह्मणी मन ही मन प्रतिहत होने लगी। ठाकुर जब अद्वैत साधना में प्रवृत्त हुए थे तब भी ब्राह्मणी ने उन्हें इस साधना से रोका था। देवादिष्ट ठाकुर ब्राह्मणी के उस आदेश का पालन नहीं कर सके। भैरवी की धारणा थी कि ठाकुर में जो कुछ भी दिव्य चेतना थी वह उसी की शक्ति और उसी की कृपा के कारण थी। वह कहती थी—"तुम्हें दृष्टि तो मैंने ही दी है।" ठाकुर मन्द-मन्द हँसते हुए सब सुनते और अपनी पत्नी को ब्राह्मणी की और अधिक सेवादि करने के लिए कह देते। उन्हें खुश करने के लिए स्वयं भी अनेक तरह की चेष्टाएँ करते।

ब्राह्मणी के बढ़ते हुए दृप्त व्यवहार के कारण घर की सभी स्त्रियाँ क्षुब्ध हो उठी थीं। पड़ोसिनें भैरवी से बचने की ही कोशिश करतीं। उनका (भैरवी का) क्रोध और अहंकार धीरे-धीरे इतना बढ़ गया कि एक दिन एक बहुत ही साधारण घटना को लेकर हृदयराम के साथ उनका बड़ा भारी विवाद हो गया। सभी को इससे बड़ा कष्ट हुआ। क्रोध शान्त होने पर ब्राह्मणी अपने अन्दर से सोचने लगी। उन्हें पता चल गया कि गलती उन्हीं की थी। मन ही मन बहुत सन्तप्त होती हुई वह ठाकुरजी से क्षमा-प्रार्थना करके वाराणसीधाम चली गयीं।

ब्राह्मणी ने ही पहले-पहले श्रीरामकृष्णदेव के भीतर ईश्वरीय शक्ति का विकास देखकर उनके अवतार होने की घोषणा की थी और बाद में कई साल तक वह उनके साथ ही रहती रहीं। किन्तु अन्त तक "गुरु अभिमान" उनकी निर्मल दृष्टि को आच्छन्न

किये रहा ।

* * *

कामारपुकुर के स्वास्थ्यकर जलवायु और निर्मल ग्राम्य वातावरण से कुछ ही माह में ठाकुर बहुत कुछ स्वस्थ हो गये । उनके अंगों में स्वास्थ्य की लालिमा पड़ने लगी । उनके मुख से ईश्वरीय कथाओं को सुनने के लिए ग्रामवासी भीड लगाये रहते। उनके ईश्वरीय भावावेश को देखकर उन्हे भय होने लगता । वे सोचने लगते कि ये मर तो नही गये? वचपन के साथियों के साथ वे कितनी ही रसभरी बातें करते । वे इस प्रकार की कथाएँ सुनाते कि हँसते-हँसते स्त्री-पुरुषो के पेट मे वल पड जाते । उस समय उन्हें देखकर प्रतीत होता कि ये बहुत ही साधारण मानव हैं ।

वर्षाकाल--वर्षा हो गयी थी । ठाकुर भूति के नाले की ओर शौच के लिए गये थे। लौटते समय देखा--रास्ते के कीचड़ में एक बड़ी मछली पडी हुई है। देखकर उनके मन में दया आयी--आह! अगर किसी की इस पर नजर पड गयी तो वह इसे मार डालेगा । पैर से ठेलकर उस मछली को उन्होने पोखरी में डाल दिया . . . सुनकर हृदयराम को बड़ा अफसोस हुआ ।

हृदयराम की बडी अभिलाषा थी--मामा को अपने गाँव शिहड में ले जाने की । ठाकुर पालकी मे बैठकर हृदयराम के साथ शिहड़ चले गये । वहाँ बहुत दूर तक फैले हुए विस्तीर्ण मैदान में घूमते हुए उनके मन में विराट चैतन्य की स्फूर्ति हुई । वर्षा के जल से मैदान को भरा हुआ देखकर वे भावस्थ हो उठे । वे कहा करते थे--"वर्षा से जिस प्रकार पृथ्वी मिली हुई है उसी प्रकार जीव-जगत् भी चैतन्य से मिला हुआ है ।"

श्रीरामकृष्णदेव का मन स्वभावतः ही ऊर्ध्वगामी था । इस

कारण 'यह खाऊँ, वह खाऊँ' इस ढग से अपने मन को समझा-बुझाकर सहज अवस्था में उन्हे नीचे उतार रखना होता था। अत कामारपुकुर आकर सुबह होते ही प्राय कह दिया करते थे -- "आज ये चीजे पकाना।" एक दिन घर में छौकने का मसाला पचफोडन नही था। लक्ष्मी की माँ (रामेश्वर की पत्नी) ने कहा -- "नही है तो न होने दो। बिना मसाले से ही काम चलेगा।" ठाकुर ने यह सुनकर कहा -- "ऐसा क्यो ? अगर नही है तो एक पैसे का मसाला मगवा लो न। जिसमें जिस-जिस चीज की जरूरत है, उसे छोड देने से कैसे काम चलेगा ? तुम्हारी इस मसाले वाली तरकारी को खाने के लिए ही तो मैं दक्षिणेश्वर से यहाँ आया हूँ -- इसी को तुम छोड देना चाहती हो।" लक्ष्मी की माँ तो लाज से गड गयी। झटपट पचफोडन मँगवा लिया।

प्राय सात माह नाना भावो से कामारपुकुर में बिताकर ठाकुर फिर दक्षिणेश्वर में लौट आये। सम्भवत दिसम्बर १८६७ ई की बात है यह।

• • •

इधर मथुरबाबू सपत्नीक उत्तर-भारत के पुण्य तीर्थों की यात्रा का आयोजन कर रहे थे। ठाकुर के दक्षिणेश्वर में लौट आने पर सस्त्रीक मथुरबाबू उनसे तीर्थ-यात्रा पर चलने के लिए बडा आग्रह करने लगे। वे भी राजी हो गये। तय हुआ कि हृदयराम भी साथ चलेंगे।

अनन्तर शुभ दिन देखकर २७ जनवरी, सन् १८६८ ई. को शताधिक व्यक्तियों के साथ ठाकुर को लेकर मथुरबाबू तीर्थ-यात्रा के लिए रवाना हुए। यात्री-दल ने प्रथम गन्तव्य स्थान देवघर को चुना था। . सभी एक ग्राम के रास्ते से चल रहे थे। गरीब

ग्रामवासियों की दुर्दशा देखकर ठाकुर का हृदय करुणा से आर्द्र हो उठा। उन्होंने मथुरबाबू से कहा--"तुम तो माँ के दीवान हो। इन लोगों को सिर में लगाने का तेल, और एक-एक धोती दे दो और पेट भरकर एक दिन उन्हें खाना खिला दो।" यह सुनकर तो मथुरबाबू ने इसे एक झझट ही समझा और कहा--"बाबा, तीर्थों में अनेक तरह के खर्च करने पड़ते है। यहाँ तो बहुत लोग हैं--इन्हे खिलाने-पिलाने में तो दिवाला ही निकल जा सकता है।"

दरिद्र-नारायणो के दु ख से ठाकुर की आँखों में आँसू भर आया। उनका हृदय अपूर्व करुणा से पूर्ण था। उन्होंने कहा--"धत् तेरी, मै तेरे साथ वाराणसी नही जाऊँगा--मै अब इन्ही के पास रहूँगा। इनका कोई नही है, इनको छोड़कर मै नही जा सकता।" यह कहते हुए वे मथुरबाबू को छोड़ गरीबों के साथ बैठे। विवश होकर मथुरबाबू को उन्ही के इच्छानुसार सब व्यवस्था करनी पड़ी। भूखों के मुख पर प्रसन्नता देखकर ही वे आगे बढ़े।

वाराणसी पहुँचकर ठाकुर ने भावावेश मे शिवपुरी को सुवर्ण-मण्डित ज्योतिर्मय देखा। युगों से साधु-भक्तों के हृदय के भाव घनीभूत होकर हेममय भाव-प्रवाह से शिवपुरी में मानो सर्वत्र व्याप्त थे। ठाकुर के मन में इस भाव का इतना गम्भीर प्रभाव पड़ा कि शौचादि द्वारा इस स्थान को अपवित्र करने की उनकी प्रवृत्ति नही हुई। इसलिए वे पालकी में बैठ अस्सी से पार जाकर ही शौचादि से निवृत्त होते थे।

मथुरबाबू ने केदारघाट के पास समीप-समीप के दो मकान किराये पर लिये थे। पूजा-दानादि मे मथुरबाबू मुक्तहस्त थे। जब वे बाहर निकलते तब चाँदी का छत्र और दण्ड लिये कितने

ही दरबान उनके आगे-पीछे लगे रहते। मानो कोई छोटा-मोटा राजा ही हो।

वाराणसी में रहते हुए श्रीरामकृष्णदेव पालकी से प्रायः प्रतिदिन विश्वनाथ-दर्शन के लिए जाते थे। वहाँ पहुँचते ही वे भावस्थ होकर अपने भीतर विश्वनाथ का ज्योतिर्मय प्रकाश देखने लगते। केदार के मन्दिर में उनका वह भाव और भी बढ़ जाता।

वाराणसी के प्रसंग में ठाकुर ने बताया —'मणिकर्णिकाघाट के पास जाकर हमारी नौका लगी थी। सहसा वहाँ शिवदर्शन हुआ। नौका में ही बैठा बैठा मैं समाधिस्थ हो पड़ा। मल्लाहों ने हृदय को पुकारकर कहा -- पकड़ो पकड़ो, नहीं तो गिर जायेगा। देखा, समस्त जगत् को अपने भीतर समेटे वे (शिव) उसी घाट पर खड़े हुए है। पहले दूर से देखा, और उसके बाद देखा कि पास में आ पहुँचे है। उसके बाद वह मेरे भीतर समाविष्ट हो गये।"

वाराणसी में उनके अन्य दर्शनों का विवरण 'श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग' में पाया जाता है—"देखा, पिंगल वर्ण जटाजूट धारी वहाँ दीर्घ श्वेतकाय पुरुष गम्भीर पादविक्षेप करते हुए श्मशान में पड़ी प्रत्येक चिता के पास पहुँचते हैं एवं प्रत्येक देही को यत्न-पूर्वक उठाकर उसके कर्ण में तारक ब्रह्म मन्त्र का उपदेश दते हैं एवं सर्वशक्तिमयी स्वयं जगदम्बा भी महाकाली का रूप धारण कर जीव के दूसरी ओर उसी चिता के ऊपर बैठकर उस (जीव) के स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सब प्रकार के संस्कार-बन्धनों को खोल दे रही हैं एवं निर्वाण का द्वार उन्मुक्त कर स्वयं अपने हाथों में उसे परम धाम की ओर भेज दे रही हैं।"*

---

* काशीखण्ड में लिखा है कि काशी में मृत्यु होने पर बाबा

वाराणसी में सहसा ठाकुर की भैरवी ब्राकुर ने पंचवटी गयी। चौसठ योगिनी में मोक्षदा नाम की एक भा॰ रज उन्होंने पास वह रह रही थी। ठाकुर कई बार उसके घर में भेंट स्थान वाद में ब्राह्मणी भी उनके साथ ही वृन्दावन को चल दी। द से

ठाकुर त्रैलंगस्वामी को देखकर बड़े आनन्दित हुये थे। उन्होंने कहा था, "साक्षात् विश्वनाथ उनके शरीर में प्रविष्ट होकर प्रकाशित हो रहे थे। उनके रहने से वाराणसी शोभायमान हो रही थी। वे ज्ञान की उच्चावस्था में पहुँचे हुए थे।" ठाकुर त्रैलंगस्वामी को खिलाने के लिए खीर बनाकर ले गये थे। उन्हें दिखाकर हृदयराम से उन्होंने कहा था—"यही ठीक-ठीक परमहंस अवस्था है।"

पाँच-सात दिन वाराणसी में रहने के बाद ठाकुर मथुरबाबू के साथ ही प्रयाग को चले गये। प्रयाग में उनके दर्शन आदि की किसी विशेष घटना का उल्लेख नहीं मिलता। पुनः एक पक्ष तक वाराणसी में निवास करने के बाद सभी वृन्दावन-दर्शन के लिए चले गये। वहाँ के दर्शनादि के सम्बन्ध में ठाकुर ने बताया था—"मथुरा के ध्रुवघाट पर पहुँचते ही हमें दर्शन हुआ मानो वसुदेव श्रीकृष्ण को गोदी में लिये यमुना पार कर रहे हैं।... गोवर्धन-दर्शन के लिए जाते समय राधाकुण्ड के मार्ग में श्यामकुण्ड आता है। गोवर्धन को देखते ही एकबारगी मैं विह्वल हो उठा। दौड़कर गोवर्धन के ऊपर जा खड़ा हुआ। व्रजवासी लोग मुझे उतार

विश्वनाथ जीव को मुक्ति प्रदान कर देते हैं, किन्तु किस रूप में? इसका कोई विस्तृत उल्लेख वहाँ नहीं है। ठाकुर के दर्शन से यह बात स्पष्ट हो गयी है।

ही दरवान उनके बिहारी का देखते ही भावाविष्ट हो मैं उस राजा ही हो, ए दौड पडा था। .. वृन्दावन में मैंने भिक्षुव्रत वर, जिसे पन्द्रह दिनों तक निभाया। . कालियदमनघाट प्रति नने मात्र से मैं विह्वल हो गया था। . '

ठाकुर के वृन्दावन आदि स्थानों के दर्शन के सम्बन्ध में हृदयराम ने जो बताया था, उस समय आलम बाजार मठ से स्वामी रामकृष्णानन्द महाराज के २६।१२।१८९५ को स्वामी प्रेमानन्द को लिखे गये एक पत्र के अनुसार वह इस प्रकार है--". श्रीश्रीगुरुदेव ने मथुरा मे उतर कर प्रथम ध्रुवघाट का दर्शन किया। बाद में श्रीवृन्दावन धाम मे आकर गोविन्दजी के मन्दिर के निकटवर्ती एक मकान मे रहने लगे थे। साथ में मथुरबाबू, हृदयराम आदि भी थे। वृन्दावन मे वे सदा ही भावाविष्ट में रहते थे। एक कदम भी वे नही चल सकते थे। पालकी में ही उन्हे ले जाना पडता था। उसका द्वार खुला रहता था। वे दर्शन करते-करते जाते थे। ज्योंही भाव में अधीर होकर वे पालकी से नीचे गिरने को होते झट हृदयराम उन्हे रोक लेते। हृदयराम पालकी का पलडा पकडकर चलते थे। इस प्रकार हृदयराम के साथ जाकर उन्होने राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड के दर्शन किये। इन दर्शनों के समय मथुरबाबू साथ में नहीं थे। . मथुरबाबू ने करीब १५० रुपयों की चौवन्नी-दुअन्नियाँ वितरण के लिए हृदयराम के हाथ में सौंपी थी। वे हृदयराम से वैष्णव साधु को देखते ही कुछ न कुछ देने के लिए कह देते थे। बाद में वे गोवर्धन-दर्शनार्थ चले गये। वहाँ वे नग्न होकर एकदम गिरि-शिखर पर जा चढ़े। पण्डों ने पकडकर उन्हे नीचे उतारा।

' गंगा माई उन्हे देखकर पहचान गयी। वे (ठाकुर)

उनके पास प्राय: ६–७ दिन रहे । . . . हृदयरठाकुर ने पंचवटी अनुरोध के अनुसार गंगा माई की एकदम अनिच्छा रज उन्होंने उन्हें निधुवन से ले आये ।. . . वृन्दावन में उन्होंने भिन् स्थान ग्रहण कर रखा था । उसके विषय में वाद में हम लिखेंगे । र से

वृन्दावन में ठाकुर और गंगा माई का मिलन एक अपूर्व मिलन था । गगा माई निधुवन मे रहती थी । वह उच्चकोटि की माधिका थीं —समय-समय पर उन्हे भावावेश भी हो आता था । उनके भाव को देखने के लिए लोगो की भीड़ लग जाती । ठाकुर को देखकर वह उन्हें भावावेश में भी पहचान गयी थी । वे कहती थी — "यह साक्षात् श्रीराधिका ही देहधारण करके आयी हैं ।" वह उन्हे दुलारी कहकर पुकारती थी । किसी अपरिचित व्यक्ति को दुलारी कहकर पुकारना ! गगा माई ने भाव-नेत्रों से देखा था ! मधुर-भाव के साधनकाल में श्रीराधिका ठाकुर के अंगों में समा गयी थी और तभी से वह ठाकुर के भीतर निवास कर रही थी । इसीलिए गगा माई ठाकुर को राधिकाजी के रूप में देख रही थी । ठाकुर भी गगा माई को पाकर निरन्तर भावावेश में

---

* वाद की एक चिट्ठी में स्वामी रामकृष्णानन्द ने स्वामी प्रेमानन्द को लिखा था — .. भाई वावूराम, ठाकुर ने राधाकुण्ड के पास रहने वाले चतुरा पण्डा नामक व्यक्ति से भिक्षुक व्रत ग्रहण किया था । वृन्दावन-दर्शन के समय उनके हाथ में सदा एक कच्चे बाँस की छडी रहती थी । अगर कभी हृदय उसे छीन लेता, उस समय वे बहुत ही कातर हो पड़ते थे और जब तक उसे पुन. प्राप्त न कर लेते तब तक उन्हे चैन नही मिलता था । वृन्दावन में वे एक कदम भी नही चल सकते थे । यहाँ तक कि पालकी के भीतर बैठे-बैठे ही वे यमुना में स्नान करते थे ।

ही दरवान उनके अत्यधिक आनन्द के आवेग से वे दक्षिणेश्वर को राजा ही हो उसी समय मथुरबाबू के वाराणसी लौटने का समय हो

गंगा माई किसी तरह भी अपनी दुलारी को नही छोड़ेगी, प्रति जाने देंगी। ठाकुर का एक हाथ पकडकर हृदयराम खींच रहे थे और दूसरा हाथ पकडकर गगा माई खीच रही थी। इस समय ठाकुर के मन मे आया कि दक्षिणेश्वर में माँ अकेली ही रह रही है। यह सोचकर फिर वह वृन्दावन में और अधिक नही टिक सके।

एक पक्ष तक वृन्दावन में रहने के बाद सभी फिर वाराणसी लौट आये। ठाकुर की आज्ञा से मथुरबाबू वाराणसी में कल्पतरु हो गये। ब्राह्मणों और गरीबो को उन्होंने मुक्तहस्त से बहुत दान दिया, कोई भी याचक विमुख नही लौटा। बाबा से कुछ लेने का अनुरोध करने पर उन्होने कहा—"प्रेम से कुछ देना ही है तो एक कमण्डलु दे दो।" . . मथुरबाबू की आँखो में जल भर आया।

'एकमेवाद्वितीयम्' भाव में प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्णदेव को अन्य तीर्थों में जाने की क्या आवश्यकता ? वे स्वय ही तो सर्वतीर्थस्वरूप होकर रह रहे हैं। समस्त देवी-देवता उनके भीतर ही तो मिलित हैं। 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्त.स्थेन गदाभृता,—इस शास्त्रवाक्य के याथार्थ्य को प्रमाणित करने के लिए ही श्रीरामकृष्णदेव की तीर्थयात्रा है। श्रीरामकृष्णदेव का जीवन देखकर तीर्थ का वास्तविक माहात्म्य समझने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नही रह जाती।

ठाकुर गयाधाम मे जाने को राजी नहीं हुए, इसलिए मथुरबाबू भी गया म गये बिना ही कलकत्ता लौट आये। चार माह तक तीर्थों में भ्रमण करने के बाद सन् १८६८ ई. के मई माह के

मध्य भाग तक वे दक्षिणेश्वर में लौट आये। ठाकुर ने पंचवटी की चारो ओर वृन्दावन की रज छोड़ी। कुछ रज उन्होंने अपनी साधन-कुटीर के मध्य मे गाड़ दी। "आज से यह स्थान वृन्दावन के समान ही देवभूमि हो गया है"—उन्होंने आनन्द से कहा। उसी समय मथुरबाबू ने अनेक वैष्णव गोस्वामियों और भक्तो को आमन्त्रित कर पचवटी मे विराट महोत्सव का आयोजन किया। प्रचुर दक्षिणा और पर्याप्त भोजन प्राप्तकर मथुरबाबू को तीर्थयात्रा का सुफल देकर आशीर्वाद देते हुए सभी चले गये।

* * *

सन् १८६८ ई. के शारदीय नवरात्र मे ठाकुर को अपने घर ले जाकर दुर्गोत्सव मनाने की हृदयराम की बहुत इच्छा हुई। उसी समय मथुरबाबू से जानबाजार स्थित निवास-स्थान पर भी दुर्गोत्सव मनाया जाने वाला था। मथुरबाबू अपने बाबा को किसी प्रकार भी छोडना नही चाहते थे। ठाकुर को अपने घर न ले जा सकने के कारण हृदयराम के मन में बड़ी चोट पहुँची। उन्हें दुःखित देखकर ठाकुर ने कहा—"तुम दुःखी क्यों हो रहे हो? मै सूक्ष्म शरीर से नित्य ही तुम्हारी पूजा में सम्मिलित रहूँगा। अन्य कोई मुझे नही देख सकेगा, लेकिन तुम अवश्य देखोगे।" इसी प्रकार हुआ भी। सप्तमी-विहित पूजा समाप्त कर आरती के समय हृदयराम ने देखा कि ठाकुर ज्योतिर्मय देह से भावस्थ हुए प्रतिमा के बगल में खड़े है। बाद मे हृदयराम ने बताया था—"प्रतिदिन इस समय और संध्याकालिक पूजा के समय देवी-प्रतिमा के समीप ही मैं मामा को दिव्य देह में देखा करता।" दक्षिणेश्वर लौटकर जब हृदयराम ने ठाकुर को प्रतिदिन उनके दर्शन पाने की बात बतायी तब उन्होंने कहा था—"आरती और सन्धि-पूजा के

समय मुझे अनुभव होता था कि मैं ज्योतिर्मय दिव्य शरीर में तुम्हारे चण्डीमण्डप में उपस्थित हूँ।"

* * *

श्रीरामकृष्ण के जीवन में देवत्व और मानवत्व का अपूर्व सम्मिश्रण वास्तव में ही अलौकिक और सर्व माधुर्यमय है। एक ओर जहां उनमें अति उच्च ब्रह्मानुभूति और ब्रह्मदृष्टि थी, साथ ही दिखायी पड़ता है कि वे साधारण मनुष्य के समान दूसरों के सुख-दुःख में भी अभिभूत होते थे, अन्यों के दुःख-सुख के साथ मानो उनका अविच्छिन्न भाव से सम्बन्ध था। दोनों अवस्थाओं में वे सहज भाव से ही विचरण करते थे। एक क्षण में वे जीव जगत् से ऊपर परम तत्त्व में अवस्थित दिखायी पड़ते थे किन्तु दूसरे ही क्षण पुत्र-शोक से सन्तप्त व्यक्ति के समान विपन्न होकर आंसू बहाते हुए दिखायी पड़ते थे।

ठाकुर के ज्येष्ठ भ्राता रामकुमार का पुत्र सूतिकागृह में ही मातृहीन हो गया था, और उसका नाम था रामअक्षय। बड़ा होने पर वही दक्षिणेश्वर में विष्णुमन्दिर का पूजक बना। उसकी भक्ति और तन्मयता देखकर सभी मुग्ध हो गये। इसीलिए ठाकुर भी उसे बहुत प्यार करते थे। अक्षय को तीन वर्ष की अवस्था पर्यन्त उन्होंने अपनी गोदी में खिलाया था। वही तो क्षुदिराम के वंश का गौरवचिह्न था। उसकी निष्ठा, भाव और भक्ति सभी अनुपम थे। बीस-इक्कीस साल की उसकी अवस्था थी। विवाह के कुछ दिन बाद ही ससुराल में वह भयंकर रोग से आक्रान्त हो गया था। कुछ स्वस्थ होने पर वह पुनः दक्षिणेश्वर लौट आया। अभी कुछ स्वस्थ और सबल हुआ ही था कि वह फिर ज्वराक्रान्त हो गया। डाक्टर ने कहा—मामूली सा बुखार है, जल्दी ही

ठीक हो जायेगा। तीन-चार दिनों तक बुखार ने पिण्ड नही छोड़ा। ठाकुर ने यह देख हृदय को अलग ले जाकर कहा—"हृदय, डाक्टर को पता नही चल रहा है—अक्षय की बीमारी विकार में परिणत हो गयी है। किसी अच्छे चिकित्सक को बुलाकर अच्छा इलाज तो करवाओ, मगर आशा छोड़ दो, लड़का बचेगा नही।"

सुनकर हृदयराम ने कहा—"छि छि मामा, यह क्या कह रहे है आप ?" ठाकुर ने उत्तर दिया—"मै क्या अपनी इच्छा से कह रहा हूँ ? माँ जो कुछ मुझसे कहला रही है, इच्छा न होने पर भी मुझे वह सब कहना पड़ रहा है। तुम क्या यह समझते हो कि मेरी इच्छा है कि अक्षय मर जाये ?"

अक्षय का अन्तिम समय आ पहुँचा। ठाकुर ने उसकी शय्या के पास जाकर कहा—'अक्षय, बोलो गगा, नारायण, ॐ राम।" तीन बार इस मन्त्र का उच्चारण करते ही रामअक्षय की आत्मा अक्षयधाम में चली गयी। हृदयराम तो रोते-रोते वि[illegible]ल हो गये। किन्तु ठाकुर भावावेश मे खडे-खड़े सब देख रहे थे [illegible]र हँस रहे थे। देख रहे थे—कैसे आत्मा निकलती है और कह[illegible] जाती है ? मृत्यु तो अवस्थान्तर-प्राप्ति का ही एक नाम है।

दूसरे दिन की घटना है। ठाकुर चुपचाप अपने कमरे के बर[illegible]दे में खड़े थे। सहसा अक्षय के शोक से अवसन्न हो उठे। उन्[illegible]ने बताया था—"जैसे कपडा निचोडा जाता है, मालूम पड़[illegible] था कि मेरे हृदय को भी कोई निचोड रहा है।" दूसरे ही क्ष[illegible] पुनः भावस्थ होकर बोले—"माँ, यहाँ तो अपने ही कपड़ो की [illegible]ध नही तो भतीजे से क्या सम्बन्ध। मुझ साधु को जब इतना शोक हो रहा है तब ससारियों की क्या हालत होती

होगी । क्या तुम यही मुग्ध दिखा रही हो माँ ? '

* * *

ठाकुर को मथुरबाबू दिन तथा रात में जितना ही परखकर देखते उनकी श्रद्धा और आकर्षण उतना ही बढ़ता जाता । इतना त्याग संयम ज्ञान भक्ति ईश्वरपूर्णता विगलित करुणा साथ हो साथ अहंकार का सर्वथा अभाव !

बाबा को अब वे अपने से अलग नहीं कर सकते थे । आहार विहार में — यहाँ तक कि सोने के समय में भी वे उन्हें अपने पास रखना चाहते थे । नाना भावों से ठाकुर की सेवा करते हुए उन्हें तृप्ति नहीं होती थी । सोने के पात्रों में खिलाकर हजारों रुपयों का दुशाला ओढ़ाकर भी उनकी आस नहीं मिटती थी । बाबा दुशाले को पैरों से रौंदकर फेंक देते स्वर्णपात्रों को थू थू कर हटा देते — समलोष्टाश्मकांचन अवस्था में जा पहुँचे हुए थे ! ठाकुर विकार मात्र से अतीत थे — किसी वस्तु में उन्हें आसक्ति नहीं थी ।

ठाकुर को तृप्त करने के लिए मथुरबाबू ने अन्नमेरु यज्ञ का आयोजन किया । और जितने भी बड़े बड़े साधु और पण्डित थे — सभी को उन्होंने निमन्त्रित किया । बाबा का कीर्तन सुनवाने के लिए वे नामी कीर्तनियों को बुला लाये । गायक गायिकाओं की योग्यता का परिमापक यह था कि उनका कीर्तन सुनते सुनते बाबा समाधिस्थ हो जायें । जिसका कीर्तन सुनकर उनकी अधिक बार समाधि हो जाय वही बड़ा कीर्तनिया माना जायगा । उसी को अधिक पुरस्कार भी दिया जायगा । ठाकुर को लेकर आनन्दोत्सव चल रहा था ।

इस समय मथुरबाबू थोड़े दिनों के अन्तर पर ही बाबा को

अपने जानबाजार स्थित घर पर ले जाते थे। बाबा के प्रति मथुरबाबू का असाधारण आकर्षण देखकर कालीघाट के हालदार पुरोहित मन ही मन जल-भुन रहा था। वह सोचता — 'यह आपद कहाँ से आ जुटी ? मालूम पड़ता है कि इस व्यक्ति ने मथुरबाबू पर कोई जादू डाल दिया है, नही तो वे उसके इतने वश में कैसे हो गये ? एक नम्बर का पाखण्डी है और दूसरी तरफ भोलेपन का स्वाग रचता है। काश ! किसी तरह से इसकी जादूगरी मेरे हाथ मे आ सकती तो ठीक होता --"

एक दिन सन्ध्या का समय था। ठाकुर जानबाजार वाले मथुरबाबू के घर में अर्धचेतन अवस्था मे बैठे थे। धीरे-धीरे सहज अवस्था लौट रही थी। इसी समय वह पुरोहित कही से वहाँ आ निकला और उसने ठाकुर को अकेले बैठे हुए देखा। उसने मन में सोचा कि यही समय है। पास मे पहुँचकर उसने इधर-उधर झाँका और ठाकुर के शरीर मे धक्का मारते हुए कहा --"ओ ब्राह्मण ! बोल, तूने बाबू को कैसे वस मे किया है ? बोल न ! क्यों ढोंग रच कर चुपचाप बैठा है ? बोलता क्यो नही ? " बार-बार इसी प्रकार पूछने पर भी जब उसे कोई उत्तर नही मिला तो गुस्से से उसने कहने--"यह साला नही बतायेगा' और अपने पैर के जूते से ठाकु को ठोकर मारते हुए चला गया। ठाकुर तो क्षमा की मूर्ति ही थे। इस घटना के बारे में उन्होंने किसी से कुछ भी प्रकट नहीहोने दिया। वे जानते थे कि मथुरबाबू के कान में इस घटना का विवरण पहुँचने से पुरोहित की क्या दशा होगी ? लेकिन कुछदिनों बाद किसी अन्य कारण से पुरोहित को मथुरबाबू के घर से निकाल दिया। बाद में कभी प्रसगवश ठाकुर ने मथुरबाबू को यह घटना बतायी। सुनकर क्रोध के मारे मथुरबाबू की आँखें

लाल हो गयी। बडे आक्षेप के साथ उन्होंने कहा—"बाबा, इस घटना को कहीं हम उसी समय जान जाते तो पुरोहित को जिन्दा न छोडते।"

बाद में कभी मथुरबाबू ने कहा था—"बाबा, तुम्हारे भीतर तो केवल वही ईश्वर विराजमान हैं और कुछ नहीं। देह तो सिर्फ चोली भर है।" दिन-रात मथुरबाबू ने ठाकुर को सामने देखकर परख लिया, तब उनके चरणों में उन्होंने अपना माथा नत कर दिया।

इसके कुछ दिन बाद मथुरबाबू बाबा को साथ लेकर अपनी जमींदारी का महाल देखने के लिए गये। राणाघाट के पास कलाइघाट में पहुँचते ही दरिद्रता से कराह रहे ग्रामीण स्त्री-पुरुषों की दुरावस्था, पर ठाकुर की निगाह पडी। उनके फटे वस्त्र और दुर्बल सूखे चेहरे देखकर उनका मन चीत्कार कर उठा। आनन्दमयी के राज्य में भी इतना दुःख और इतना कष्ट! मथुरबाबू से उन्होंने कहा—"इनको पेट भर भोजन खिलाओ, पहनने को एक-एक वस्त्र दो और सिर में लगाने को तेल दो।" पहले तो मथुरबाबू ने कुछ आपत्ति की, किन्तु ठाकुर के हठ के कारण अन्त में उनके इच्छानुसार सबको पूर्णतया तृप्त करना ही पडा। इसके बाद ठाकुर के आदेश से मथुरबाबू ने निर्धन प्रजा की सालाना लगान भी माफ कर दी।

ठाकुर छः मास तक निर्विकल्प समाधि में अवस्थित रहे। जन्म लेने के बाद से भगवान् के ही साथ वह हिलते-डोलते भगवान् के साथ ही उनका अखण्ड विराम होता। इतने पर भी साधारण मनुष्य को उन्होंने नहीं बिसारा। बिसार भी कैसे सकते थे? मनुष्य भी तो भगवान् का ही रूप है, भगवान् का ही अंश

है। मनुष्य को छोड़ देने से पूर्ण भगवान् की प्राप्ति सम्भव नहीं है।..

मथुरबाबू के देवादिष्ट कर्म समाप्त हो चुके थे। अब उनकी महायात्रा की बारी थी। सात-आठ दिन ज्वर भोगने के बाद उनकी आत्मा देवी-लोक को चली गयी। इस अन्तिम समय में जब मथुरबाबू बीमार पड़े, ठाकुर समझ गये कि इस बार माँ उन्हें अपने धाम में ले ही जायेगी। प्रतिदिन मथुरबाबू का हाल जानने के लिए वे हृदयराम को भेजते, किन्तु स्वयं एक दिन भी नहीं गये। १६ जुलाई १८७१ ई के तीसरे पहर का समय था। ठाकुर गम्भीर भाव में अवस्थित थे। ज्योतिर्मय दिव्य देह से वे सेवक के अन्तकाल में उसकी शय्या के पास जा खड़े हुए। पाँच बजे जब भावसमाधि टूटी, उन्होंने हृदय को पास में बुलाकर कहा—"जगदम्बा की सखियाँ मथुर को बड़े सम्मान के साथ एक दिव्य रथ पर बैठा कर ले गयी। उसकी ज्योति देवी-लोक में पहुँच गयी है।" बहुत रात बीते खबर आयी—'मथुरबाबू पाँच बजे शाम को गुजर चुके है।'

बहुत दिनों के बाद "मथुरबाबू को क्या हुआ" यह पूछे जाने पर ठाकुर ने भक्तों को बताया—"कहीं जाकर कोई राजा-महाराजा होकर जन्म लेगा। उसकी भोगवासना प्रबल थी।"

* * *

पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि सन् १८६७-६८ ई. में श्रीरामकृष्णदेव और श्रीशारदा देवी ने कामारपुकुर में एक साथ कई मास बिताये थे। इस अवधि में ठाकुर के दिव्य संग से उन्हें जो आनन्द प्राप्त हुआ था, वह श्रीशारदा देवी के कथन से जाना जाता है—"मानो हृदय में आनन्द से पूर्ण घट स्थापित

हो गया था। तब से निरन्तर मुझे उसी अपूर्व आनन्द का अनुभव होता रहा है। उस धीर, स्थिर, दिव्य उल्लास में हृदय कैसा भरा हुआ था, उसे कहकर नही समझाया जा सकता . ।" उसके बाद और भी चार साल श्रीशारदा देवी ने फिर जयरामवाटी में बिताये और अब वह अठारह वर्ष की पूर्ण युवती हो गयी थी। हृदय में स्वामी का ध्यान करती हुई वह आनन्द-स्मृति हृदय में भरकर बहुत अच्छी तरह से रही। किन्तु जयरामवाटी में इस समय ठाकुर के बारे में और ही विचित्र चर्चाएँ चल पडी--'दामाद एकदम पागल हो गया है।' यह भी ग्राम की स्त्रियों में एक पागल की स्त्री समझी जाने लगी। पति-निन्दा श्रवण से बचने के लिए श्रीशारदा देवी घर से बाहर ही नही निकलती थी। किन्तु यही तो समस्या का समाधान नही था। श्रीशारदा देवी का मन कुछ शंकित हो उठा। वह सोचने लगी--"पाँच जन जो कहते हैं वही वैसा ही तो नही ? अब मेरा यहाँ अधिक रहना ठीक नहीं है।" उनकी आँखें धुंधली हो उठी। शारदा देवी की कुछ पडोसिनें किसी त्योहार के उपलक्ष्य में गगा-स्नान करने जा रही थी। 'यह तो शुभ सुयोग है'--उन्होने (श्रीशारदा देवी ने) मन में सोचा। पडोसिनो के पास उन्होने स्नान के लिए जाने की इच्छा प्रकट की। श्रीशारदा के पिता रामचन्द्र ने जब उनकी इस इच्छा के बारे में सुना, वे समझ गये कि उन्हे स्नान की क्यो इच्छा हो रही है ? उन्हे वे अपने साथ ही ले जाने के लिए राजी हो गये।

शुभ दिन में यात्रा प्रारम्भ हुई। लम्बी पगडण्डी से जाना पडता था, तब भी शारदा देवी उल्लसित मन से सबके साथ-साथ चल रही थी। रात में सभी पडाव पर विश्राम करते और दिन भर चलते रहते। किन्तु दो दिनो में ही एक स्थान पर

श्रीशारदा देवी भी तरह से उन्होंने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया।
चिन्ता का कारवन का एक और दिव्य भाव प्रकाश में आया।
विस्मित कर ि उल्लेख किया जा चुका है कि श्रीरामकृष्णदेव ने
देवी ने) वर्षे ही भावावेश में एक बार अपनी भावी पत्नी का
थी, मैंने देखा बता दिया था, सब जानकर ही उन्होंने ऐसा किया
उस स्त्री का हा उनके साथ और उनकी पत्नी के साथ क्या सम्बन्ध
उसके जैसी करने का प्रयोजन क्या है, आदि सब कुछ जानबूझकर
ही उसने मेरेने विवाह किया था। फिर यह कैसे सम्भव था कि
वह हाथ किाद वे सब कुछ भूल जाते? हमें मालूम है कि वे
होने लगी। ाता के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।
स्त्री ने उत्तर पूर्व ही तन्त्रसाधन में सिद्धि-लाभ के अनन्तर ठाकुर
स्तब्ध होते ही श्रीजगदम्बा का रूप है,' इस ज्ञान में प्रतिष्ठित हुए
दक्षिणेश्वर ;सके बाद वेदान्त-साधना में अद्वैतसिद्धि का लाभ किया
को, कर रहास तक निरन्तर वे निर्विकल्प समाधि में स्थित रहे थे।
पड़ता है किमे उन्हें ब्रह्म का ही दर्शन होता था। इसके बाद उन्हें
—'यह था कि वे स्त्री को दूर रखने की कोशिश करते?
वहाँ जाओ

* * *

उनकी वहाँरामकृष्णदेव काय-मनोवाक् से पुत्रैषणा, वित्तैषणा और
उसने उत्तरआदि समस्त सांसारिक एषणाओं का परित्याग कर ही
इसीलिए हुए थे। वे अनुपम त्यागोज्ज्वल जीवन बिता रहे थे।
कर फिर पतु के स्पर्शमात्र से ही उनका शरीर सिहर सा उठता
ही मध्यरेउन्होंने स्वयं सुनाया था—'एक बार मथुरबाबू और
आर्या थी रायण मारवाड़ी की सम्पत्ति लिखापढ़ी कर मुझे देने की
था। श्रीसकर सिर में मानो शूल-सा चुभने लगा। बहुत ज्यादा
अ होने लगी थी।'

हाव-भाव सम्पन्न सुन्दरियों के बीच भी उन्हें ले जाया गया था, किन्तु वहाँ पहुँचते ही वे समाधिस्थ हो गये। और भी कितनी ही घटनाएँ हैं जो उनके जीवन में त्याग के आदर्श को और भी ऊँचा उठा देती हैं।

* * *

केवल विभिन्न धर्मों की साधना करने के लिए या सन्यासी बनने के ही लिए तो वे आये नहीं थे। वे आये थे सभी देशों के हित के लिए—प्राणिमात्र के कल्याण के लिए। सभी उनके जीवन में परिपूर्णता पावेंगे। ससार में करोड़ों स्त्री-पुरुष गृहस्थ-जीवन बिताते हैं, उनके लिए नवीन आदर्श पाया जाता है श्रीरामकृष्ण के जीवन में। उन आदर्शों को उज्ज्वल रूप दिखाने के लिए ही था उनका विवाह। और उन आदर्शों को पूरा करने के लिए श्रीशारदा देवी का दक्षिणेश्वर में आगमन हुआ था।

उपनिषद् में है—'त्यागेनैके अमृतत्वमानशु'—त्याग से ही अमृतत्व का लाभ हो सकता है। मानवमात्र के लिए ही तो यह श्रुतिवाक्य है। सन्यासी या गृहस्थ का तो यहाँ प्रश्न ही पैदा नहीं होता। यही अमृतत्व लाभ का एक मात्र मार्ग है। भा[illegible]तवर्ष म एक समय था जब गृहस्थाश्रम भी त्याग के आदर्श प ह[illegible]पर प्रतिष्ठित था। समय के प्रभाव स समाज अपन उस आ[illegible] से बहुत हट गया है। गृहस्थाश्रम भी जो भूमानन्दप्राप्ति का [illegible] सोपान था, एक पथ था, आज दूर अतीत म गूजती हुई उस [illegible] प्रतिध्वनि मात्र रह गयी है। गृहस्थाश्रमियों का भी अमृत[illegible] हो वे भी सत्पथ पर चले, इसी उद्देश्य से ही तो श्रीराम[illegible] गृहस्थ-जीवन ग्रहण किया था। गृहस्थाश्रम के सर्वोच्च [illegible] को दिखाना ही तो उनका लक्ष्य था। 'स यत् प्रमा[illegible]

लोकस्तदनुवर्तते ।' श्रीरामकृष्ण के जीवन को ध्यान से देखा जाय तो एक बात बड़ी अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। वह यह कि आत्मानन्द में प्रतिष्ठित होने के लिए मनुष्य को भौतिकता से ऊपर उठ जाना पड़ता है। सांसारिक विषयभोगजन्य आनन्द से जब तक मन को न मोड़ लिया जाये तब तक भूमानन्द की उपलब्धि कथमपि सम्भव नही है।

बहुत से लोगों के मन में प्रश्न उठता होगा — ठाकुर के गृहस्थ-जीवन में पूर्णता आयी थी कि नही ? श्रीरामकृष्ण एक साथ संन्यासी और गृहस्थ के आदर्श थे। अतः पत्नी के साथ उनका कोई भी भौतिक-वैषयिक सम्बन्धतही था। अखण्ड ब्रह्मचर्य ही तो सन्यासाश्रम की एकमात्र भित्ति है। श्रीरामकृष्ण के जीवन ने यह स्पष्ट कर दिया कि विषय भोग ही सब कुछ नहीं है, पति-पत्नी के केवल आत्मिक मिलन से — बिना किसी प्रकार का विषय-जन्य सम्बन्ध रखे — भी गभीर प्रेम सम्भव है। संसार ने इसे श्रीरामकृष्णदेव के जीवन मे देख लिया। यही प्रेम रजोगुण से रहित, विशुद्ध और पूर्ण प्रेम है। इस प्रेम में भावुकता नही है, अवसाद नही है और कभी अतृप्ति भी नही है। यह प्रेम ही मनुष्य को देवत्व मे, देवीत्व में, पूर्णानन्द में और आत्मानन्द में प्रतिष्ठित करता है।

* * * *

यह प्रेम विशुद्ध, दो आत्माओं का मिलन-रूप था — दैहिक स्पर्श से रहित। मगर क्या उनमे गम्भीर प्रेम नही था ? अपने प्रेममय व्यवहार से वे संसार मे किसी भी प्रेमी-प्रेमिका के मन में ईर्ष्या पैदा कर सकते थे। श्रीशारदा देवी ने बाद में किसी समय भक्तिनों से बातचीत के सिलसिले में कहा था — "आह !

कितना मधुर व्यवहार करते थे मेरे साथ वे ! एक दिन भी कोई ऐसी बात नहीं कही जिससे मन में कुछ व्यथा होती। कभी फूल से भी उन्होंने आघात नहीं किया। दक्षिणेश्वर में रहते समय की बात है—एक दिन मैं उनके कमरे में खाना रखने के लिए गयी थी। उन्होंने समझा कि लक्ष्मी उनकी भतीजी खाना रखकर जा रही है। यही समझ उन्होंने कहा—'दरवाजा अटकाकर जाना।' मैंने कहा—'बहुत अच्छा।' मेरे गले का स्वर पहचान वे चौंक कर बोले—'कौन ? तुम हो ? मैं तो समझ ही नहीं सका कि तुम आयी हो। मैंने तो समझा था कि लक्ष्मी है, मन में कुछ बुरा मत मानना।' मैंने कहा—'तो क्या हुआ ?' कभी मुझे तुम छोड़कर उन्होंने 'तू' नहीं कहा था। हमेशा वे मुझे सुखी रखने का ही प्रयत्न करते थे।"

ठाकुर कहते थे—"वह शारदा है, सरस्वती है।. . वह सजधजकर रहना पसन्द करती है।" खुद तो वे सुवर्ण का स्पर्श भी नहीं करते थ। किन्तु अपनी पत्नी के लिए उन्होंने यत्न से कुछ सुवर्ण के आभूषण बनवा दिये थे। नक्काशीदार कड़ा, ताबीज, बड़ी भारी नथ बालियाँ तथा और भी कितने ही गहने—जो उन दिनों प्रचलित थे—ठाकुर ने बनवा दिये। उस पर मनभावन साड़ी—किसी चीज की कमी नहीं थी—योग्य देखभाल करने में जरा भी त्रुटि नहीं थी। सदा वे सतर्क रहते। किसी दिन पत्नी का माथा जरा भी दुखने लगता तो वे अस्थिर हो उठते और उनको आराम पहुँचाने का कितना ही प्रयत्न करते।

श्रीरामकृष्णदेव जिस प्रकार का विवाहित जीवन बिता रहे थे, उसे देखकर देवताओं को भी आश्चर्य होता था। मनुष्यों के इतिहास में इस प्रकार के जीवनयापन की कोई और मिसाल नहीं

मिलेगी। शुकदेव, आचार्य शंकर और ईसा -- इनका जीवन तो स्वतन्त्र था -- वैवाहिक जीवन में इन्होंने प्रवेश नही किया था। किन्तु वैवाहिक जीवन मे उन सबकी श्रेणी में पहुँचने वाले एकमात्र श्रीरामकृष्णदेव ही थे। गृहस्थों के सामने त्याग का आदर्श रखते हुए उन्होंने मध्यम मार्ग की व्यवस्था की थी -- "दो-एक सन्तान होने के बाद ईश्वर-चिन्तन-पूर्वक पति-पत्नी को भाई-बहन के समान जीवन बिताना चाहिए" -- गृहस्थाश्रमियों के लिए यही उनका निर्देश था।

श्रीरामकृष्णदेव ने अपनी पत्नी की पूजा की थी। यह पूजा नारी के प्रति उस प्रकार के सम्मान का प्रदर्शनमात्र नही था जैसा पश्चिमी देशों में प्रचलित है। यह पूजा थी -- आत्मा की पूजा, मातृत्व और देवीत्व की पूजा, नारी को दिव्य सिंहासन पर बैठाकर "स्वे महिम्नि" प्रतिष्ठित करना। . . .

ज्वलन्त अग्नि-शिखा-प्रकारो से घिरे हुए इसी साधन-पथ पर स्निग्ध शरीर और अक्षत मन से सिद्धि के अमृत-सरोवर तक पहुँचने के बाद वे हुए "रामकृष्ण परमहंस" और इससे वे हुए जगत् के इतिहास मे श्रेष्ठ मानव और आध्यात्मिक इतिहास में महामानव।

* * *

श्रीरामकृष्णदेव ने श्रीशारदा देवी के लिए रहने की व्यवस्था तो अपनी माता वाले घर में नहबतखाने के नीचे कर दी थी, पर रात्रि में उनके शयन का प्रबन्ध उन्होंने अपने ही कमरे में किया था। एक या दो दिन नही -- लगातार आठ माह तक वे दोनों दिन-रात एक साथ रहे। स्वस्थ, सबल और पूर्ण युवा थे ठाकुर और नवयौवन-सम्पन्ना थी श्रीशारदा देवी। इसके साथ साथ

उनके सम्बन्ध भी बहुत ही घनिष्ठ और अन्तरंग थे।... कभी-कभी वह उनके साथ इतनी सरस बातें करते कि श्रीशारदा देवी हँसते-हँसते लोटपोट हो जाती।.. दिन-रात एकसमान दिव्य आनन्द में कट रहे थे। श्रीशारदा देवी सानन्द स्वामी की सेवा में तत्पर रहती। शयनगृह को साफ-सुथरा रखना, उनके सिर में तथा शरीर मे तेल की मालिश करना, स्वयं पकाकर उन्हें भोजन खिलाना, उनके पैर दबाना आदि सभी कुछ स्वाभाविक गति से चलता था। परन्तु उसका अधिकाश भाग ही लोक-चक्षु की ओट में होता था।.

शुरू शुरू में एक रात ठाकुर ने अपनी पत्नी से एकान्त में पूछा था—"क्या तुम मुझे सासारिक विषयभोगो की ओर खीच लेने आयी हो ?" इस पर स्वच्छन्द सरल कण्ठ से श्रीशारदा देवी ने कहा—"नही, क्यो मैं आपको इस ओर आकृष्ट करूँगी ? आपको अपने अभीष्ट पथ में सहायता देने के लिए ही मैं आयी हूँ।"

ठाकुर का गृहस्थ-जीवन बहुत ही मधुर था। कभी-कभी तो दोनो ही ईश्वर-चर्चा मे तन्मय हो जाते। कभी-कभी ठाकुर विभिन्न भावो से उन्हे घर के कामकाज सिखाने लगते। ससार में दस आदमियो से कैसे व्यवहार करना चाहिए, उनके साथ किस प्रकार चलना चाहिये आदि छोटी से छोटी बात भी वे छोडते नही थे। किन्तु रात होने पर ठाकुर अपने आप में नही रहते थे। ज्यो-ज्यो रात बढती जाती, त्यो त्यो उनकी समाधि और भाव में भी गभीरता आती जाती। कभी-कभी वे सारी रात समाधि में ही बिता देते।

पहले-पहले तो श्रीशारदा देवी भय से घबडा-सी गयी थी।

इस विषय में अन्तिम जीवन में एक बार भक्तिनों से उन्होंने कहा था—"किस अपूर्व दिव्य भाव में वे रहते थे, यह दूसरे को नहीं समझाया जा सकता। कभी तो भावावेश में आकर वे कितनी ही तरह की बातें करने लगते, कभी हँसने लगते, कभी रोने लगते, कभी एकदम ही गभीर समाधि में अवस्थित हो जाते। पूरी रात इसी प्रकार बीतती। क्या ही वह एक दिव्य आवेश होता था! देखकर भय से मेरा सारा शरीर काँपने लगता और मै यही सोचती रहती कि कैसे रात बीते? उस समय भाव-समाधि के बारे मे तो मैं कुछ समझती नही थी। कभी-कभी उनकी समाधि भंग होते हुए न देखकर रोते-रोते मैं हृदयराम को बुलवा भेजती। वह आकर उनके कानों में नामोच्चारण करने लगता तब किसी प्रकार उनकी समाधि टूटती। इसके बाद जब उन्होंने देखा कि मै भय से घबडाने लगती हूँ तब स्वयं उन्होने मुझे बता दिया कि उस प्रकार का भाव देखो तो इस नाम का उच्चारण करना, इस प्रकार का भाव देखो तो इस बीज मन्त्र को सुनाना। उसके बाद फिर मुझे भय नही रहा। जैसे उन्होंने मुझे बताया था आवश्यकता पड़ने पर मैं वैसा ही उच्चारण करने लगती और उनकी चेतना पुन: लौट आती। कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये। बाद मे जब उन्हें पता चला कि 'न जाने कब उन्हे किस भाव का आवेश हो जाये' इस चिन्ता से मै रात भर सो नही पाती तब उन्होंने कह दिया कि मैं अलग घर में सो जाया करूँ।" यह है उनके दिव्य गार्हस्थ्य जीवन की एक झांकी—अचंचल प्रशान्त प्रेम की एक झलक! ...

वैष्णव ग्रन्थो में सहज अटूट अवस्था के वर्णन-प्रसंग में लिखा है—"इस अवस्था का आविर्भाव होने पर मुंह में आयी हुई

मेढक को भी साँप कोई हानि नही पहुँचाता। अर्थात् यह सिद्धावस्था प्राप्त होने के अनन्तर विषय-सान्निध्य से भी साधक में किसी प्रकार का चित्त-विकार उत्पन्न नही हो सकता और वह भोग लिप्त भी नही होता।" यह उन महापुरुषो की अवस्था का वर्णन है जो शास्त्रोक्त रीति से साधन-सग्राम मे सफलता पा चुके हैं। श्रीरामकृष्ण के जीवन की ओर और उनकी साधनाओ की ओर दृष्टिपात करने से वैष्णव ग्रन्थों में वर्णित यह अवस्था मामूली-सी बात मालूम पडती है। पत्नी के प्रति उनकी दृष्टि सर्वथा अन्य ही थी। प्रत्येक स्त्री में उनकी मातृबुद्धि थी और वह उन्हे जगन्माता के रूप में ही दिखायी देती थी। .वे कहते थे—"हम दोनो ही माँ की सहेलियाँ हैं। नही तो पत्नी को लेकर मैं लगातार आठ माह तक एक साथ कैसे रह सकता था ?" युगधर्म के सस्थापन में दोनो एक दूसरे के पूरक थे। और एक-साथ रहने से उनका यह परिचय मानो और गहरा हो गया था।

एक दिन की बात है। ठाकुर की पत्नी उनके पास ही सोयी थी। वह निश्चिन्त होकर सोयी पडी थी। ठाकुर ने अपने मन से ही कहा—"मन, यही तो स्त्री-शरीर है। लोग इसे परम भोग्य वस्तु समझकर इसका उपभोग करने के लिए सदा लालायित रहते है। किन्तु एक बार ग्रहण करने से इसी दैहिक भोग में बँध-कर रह जाना पडता है। तब सच्चिदानन्दघन ईश्वर की प्राप्ति नही हो पाती। . सच कह—इसको ग्रहण करना चाहता है या भगवान् को ? यदि स्त्री-शरीर को ही ग्रहण करना चाहता है तो यह पडा है तेरे सामने—ग्रहण कर ले।"—यह विचार करते हुए उन्होंने स्त्री का अग स्पर्श करने के लिए हाथ बढाया तो सही, परन्तु उसी समय उनका मन समाधिस्थ होकर

सच्चिदानन्द-सागर में डूब गया। उस पूरी रात उनकी समाधि नहीं टूटी। दूसरे दिन बड़ी मुश्किल से उनके मन को सांसरिक धरातल पर लाया जा सका।

इस प्रकार विभिन्न अवस्थाओं मे उनका आत्मिक मिलन होता था। यही उनका दाम्पत्य जीवन था। दो होते हुए भी वे वस्तुतः एक ही थे। एक दूसरे के प्रति उनका शान्त समर्पण था।एक दूसरे के दुःख-सुख की ही दोनों को सदा चिन्ता रहती थी। एक दूसरे को अपने जीवन की श्रेष्ठतम वस्तु दे देने पर भी मानो तृप्ति नहीं होती थी। एक दूसरे के भीतर और बाहर में पूर्णतया परिव्याप्त होकर रहते थे। अब वे दो नहीं, बल्कि एक तरह से एक ही हो गये थे।

इसी समय श्रीरामकृष्णदेव के मन में पत्नी की पूर्ण उपचारों से षोड़शी वा त्रिपुरासुन्दरी के रूप में पूजा करने की इच्छा हुई। उनकी इस अभिलाषा के पीछे किसी दिव्य दर्शन की प्रेरणा थी या दैवी शक्ति का इंगित था—इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।... षोड़शाक्षर मन्त्र से जगदम्बा की पूजा की जाती है इसलिए इस पूजा को षोडशी पूजा कहते हैं।

१२७९ (१८७२ ई. का मई-जून) साल के ज्येष्ठ मास की फलहारिणी पूजा के दिन ठाकुर ने उक्त षोड़शीपूजा की थी। उस रात्रि मे उनके निर्देश से उनके कमरे ही मे गुप्त रूप से देवी-पूजा का पूरा आयोजन किया गया था। कालीमन्दिर में जो विशेष पूजादि होती थी, वह तो हुई ही।

ठाकुर ने पहले ही श्रीशारदा देवी से पूजा के समय अपने कमरे में उपस्थित रहने के लिए कह दिया था। यथासमय वह ठाकुर के कमरे मे पहुँच गयी। रात्रि में नौ बजे के बाद ठाकुर

पूजा मे बैठे। शारदा देवी ठाकुर के इशारे से देवी के आसन—मांगलिक चित्रकारी युक्त पीढे-पर विराजमान हुई। पूजा प्रारम्भ हुई। ठाकुर शारदा देवी को साक्षात् देवी समझकर षोडशोपचार से पूजा कर रहे थे। इस अवधि मे वह पूर्णतया समाधिस्थ रही। अर्धचेतन अवस्था मे मन्त्रोच्चार करते-करते ठाकुर भी गभीर समाधि में लीन हो गये। 'समाधिस्थ पूजक और समाधिस्थ देवी आत्मस्वरूप में मिलकर एक हो गये।'

रात्रि का द्वितीय प्रहर बीत गया। इस समय ठाकुर का मन धीरे-धीरे अर्धचेतन अवस्था में उतर आया। उन्होने देवी के चरणों में आत्मनिवेदन किया। जपमाला के साथ सम्पूर्ण साधना का फल देवी श्रीशारदा के चरणकमलो में अर्पण कर वे प्रणत हो गये।

पूजा समाप्त हुई। श्रीशारदा देवी की चेतना लौट आयी। वह जगज्जननी के स्वरूप में प्रतिष्ठित हुई थी। विश्वमातृत्व का अकुण्ठ प्रकाश उनके अन्तरतल में उद्भूत हो गया।

षोडशी पूजा के बाद भी लगभग एक वर्ष तक श्रीशारदा देवी श्रीरामकृष्णदेव के पास रही। वे प्राणमन से ठाकुर और ठाकुर की माता की सेवा में तत्पर रहती। सेवा में ही उनको परम तृप्ति मिलती थी—मां जो थी—वह।

१४

सामान्यतया 'प्रचार' शब्द से जो कुछ जाना जाता है, इस प्रकार का कोई प्रचार श्रीरामकृष्णदेव ने नही किया। भावराज्य मे ही उनका कार्य था। अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल से उन्होने जीवमात्र का कल्याण किया था।

वे कहते थे -- "मैंने सभी धर्म की एक बार साधना की थी। — हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, फिर वैष्णव, वेदान्त — इन सब मार्गों पर मैंने चलकर देखा। सर्वत्र मैंने एक ही बात का अनुभव किया कि अन्त में ईश्वर एक ही हैं। भिन्न-भिन्न मार्गो से सभी उस एक ईश्वर के पास ही पहुँचते हैं।" श्रीरामकृष्ण का साधन और उनकी सिद्धि सब कुछ एक नवीन आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए था।

आद्याशक्ति की प्रेरणा से 'भावमुख' अवस्था मे स्थित हुए ठाकुर को जब जीवकल्याण के लिए व्रती होने का आदेश मिला तब सबसे पहले उन्हे विभिन्न धर्मों एव सम्प्रदायों में मिलते हुए ही देखा जाता है। गीता मे लिखा है -- 'यद् यद् विभूतिमत्' इत्यादि। इसलिए उन्होने विभिन्न विभूतिमान और ऊर्जित साधककुल के अन्दर शक्तिसचार करते हुए उसके उदार भावों को जाग्रत करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार मालूम नहीं कितने ही साधकों ने श्रीरामकृष्ण के दिव्य संग से आध्यात्मिक

चेतना प्राप्त की। उन्होने भाव-धारा से धीरे-धीरे सबको परिप्लावित कर दिया। जगत् में जिस विशेष भावधारा को प्रवाहित करने के लिए 'श्रीरामकृष्णदेव' ने देहधारण किया था, अब उसकी अप्रतिहत अग्रगति प्रारम्भ हुई।

इस समय की उल्लेखनीय घटनाओं में तत्कालीन ब्राह्म धर्माचार्य श्री केशवचन्द्र सेन और ब्राह्म समाज के साथ श्रीरामकृष्णदेव का मिलन बहुत ही गुरुत्वपूर्ण है। १८७५ ई में बेलघरिया के उद्यान में श्री केशवचन्द्र के साथ प्रथम साक्षात्कार करने के लिए जाने से पूर्व ठाकुर ने भावावस्था में दल-बल के साथ केशवचन्द्र को देखा था।

जगदम्बा के इशारे से ही श्रीरामकृष्णदेव केशवचन्द्र के साथ भेंट करने गये थे। उसी समय से ठाकुर की गभीर आध्यात्मिक अनुभूतियो और उनके उदार भावो ने केशव के जीवन पर स्निग्ध प्रभाव डालना शुरू कर दिया था। केशवचन्द्र इस देव मानव का राग प्राप्तकर इतने मुग्ध हो गये कि प्रथम मिलन के दिन से ही उन्होने 'श्रीरामकृष्णजीवन' को जितना भी समझा उतने से ही मुक्तकण्ठ से उपासनाकाल में, व्याख्यान के समय, उनके द्वारा सचालित समाचार-पत्र के माध्यम से और अन्य लोगो के साथ पत्र व्यवहार में उनका प्रचार करना आरम्भ कर दिया। उनके इस प्रचार का फल यह हुआ कि अत्यल्पकाल मे ही बगाल के और सम्पूर्ण भारत के अग्रेजी पढे-लिखे समाज मे, उसके बाद इसी क्रम से विदेशीय विद्वानो में 'श्रीरामकृष्णजीवन वेद' प्रचारित होने लग गया।

१५ मार्च १८७५ ई की बात है। घोडा-गाडी से ठाकुर बेलघरिया के उद्यान भवन में केशवसेन से भेंट करने के लिए गये।

दोपहर बीत चुका था। अति साधारण वेश मे थे वे—वस पहनने भर की धोती ही थी, नंगा वदन। पहनी हुई धोती का सामने वाला अंश उन्होंने कन्धे पर डाल रखा था। शरीर तो शीर्ण था ही। चेहरा भी रूखा-रूखा सा लग रहा था। केशवचन्द्र उस समय अपने साथियों के साथ बगीचे की पोखरी में स्नान का उपक्रम कर रहे थे। ठाकुर को देखकर पहले तो सब लोगों ने उन्हें कोई साधारण व्यक्ति ही समझा। किन्तु थोड़ी ही देर में उनकी वह धारणा अपार विस्मय में परिणत हो गयी। विभिन्न ईश्वरीय प्रसंगों के बाद—"के जाने मन काली कैमन, षटदर्शने ना पाय दरशन"* इत्यादि गान गाते गाते ठाकुर समाधिस्थ हो गये। उनकी भावावस्था को पहले पहले सब लोग केवल स्वाँग ही समझ रहे थे। किन्तु अर्धचेतनावस्था में आकर जब ठाकुर विभोर हो गम्भीर आध्यात्मिक तत्त्वों की भी अति सरल व्याख्या करने लगे तब सभी इतने मुग्ध हो गये कि स्नान-भोजन आदि का भी उन्हे ध्यान नही रहा। उनकी अमृतमयी वाणी सुनते-सुनते ही जब सायंकालीन उपासना का समय आ पहुँचा तब उन्हे होश आया।

इस प्रथम मिलन के बाद से १८८४ ई की जनवरी के पूर्वार्द्ध—केशवचन्द्र के शरीरत्याग के पूर्व—तक लगभग दस सालों के लम्बे समय में कितनी बार केशवचन्द्र शिष्यवर्ग के साथ दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव से मिलने गये और कितनी बार उन्हें बेलघरिया, कमलकुटीर और ब्राह्मसमाज में ले गये—इसकी कोई इयत्ता नहीं है। सख्या की दृष्टि से जैसे बहुत बार उनके

---

* कौन जाने काली कैसी है, षड्दर्शन उनका दर्शन नहीं पाते।

मिलन हुए उसी प्रकार प्रभाव और अन्तरगता की दृष्टि से भी वे मिलन बहुत ही गभीर थे।

श्रीरामकृष्ण द्वारा अनुष्ठित उदार धर्म-भाव के प्रभाव ने ब्राह्म समाज के भीतर से सम्पूर्ण कलकत्ता और निकटवर्ती स्थानो के विभिन्न धर्मावलम्बियो के जीवन मे एक अभिनव विपर्यय उत्पन्न कर दिया। सभी को श्रीरामकृष्ण के जीवन में एक नूतन प्रकाश और त्यागजन्य दीप्ति के दर्शन हुए। सब लोग समझ गये कि भगवत्प्राप्ति के लिए कितनी पवित्रता, कितने त्याग, कितनी उदारता और आन्तरिकता की आवश्यकता है।

श्रीरामकृष्ण किसी नवीन धर्म का प्रचार करने के लिए या कोई नवीन सम्प्रदाय स्थापित करने के लिए जगत् मे नही आये थे। सभी धर्मो को पुनरुज्जीवित करने के लिए नवीन दिव्य शक्ति का सचार करना ही उनके आगमन का प्रयोजन था। उनका समन्वयमूर्ति रूप जीवन सब धर्मों के लिए मिलन-भूमि थी। यही कारण था कि उनके चरणो मे बैठकर हरेक सम्प्रदाय के मनुष्य पूर्ण स्वच्छन्दता का अनुभव करते थे। वे किसी धर्म या किसी सम्प्रदाय का अनुयायी क्यो न हो, हरेक व्यक्ति को ठाकुर के भीतर से अपने अपने भाव की पूर्णता प्राप्त होती थी।

कलकत्ता और निकटवर्ती स्थानो के विभिन्न साधको के साथ मिलकर श्रीरामकृष्णदेव ने किस प्रकार सकीर्णता का घेरा तोड सभी के मन में उदार भाव जगा दिया था, इसका एक सुन्दर विवरण श्रीकेशव के द्वारा उस समय परिचालित "न्यू डिस्पन्सेशन" नामक पत्र मे पाया जाता है। यहाँ उसका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है—'नवविधान" ८ जनवरी, १८८२ ई। "आशा का प्रकाश—कलकत्ता के नागरिक जीवन और आध्या-

त्मिक भाव-धारा के सम्बन्ध में वर्तमान में जिन लोगों ने ध्यान दिया है—उन्हें यह देखकर परम विस्मय होगा कि दक्षिणेश्वर के परम भक्तिभाजन श्रीरामकृष्णदेव हिन्दुओं और नवविधान ब्राह्म समाजियों में किस अपूर्व संयोग की स्थापना करते जा रहे हैं। इस समय बहुत से सम्भ्रान्त हिन्दू गृहों में कितनी ही धर्मसभाओं के आयोजन हो रहे हैं। वहाँ दो सम्प्रदायों के प्रतिनिधिगण किस प्रकार एकमन होकर इन सभाओं मे सम्मिलित होते हैं, इसे वहाँ जाकर देखा जा सकता है। उसमें आध्यात्मिक भावधारा और प्रेमभक्ति का ऐक्य-भाव देखकर एक साथ विस्मित और विमुग्ध होकर रह जाना पड़ता है। ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना, श्रीरामकृष्णदेव द्वारा धर्मालोचना, और उन्मादनापूर्ण मुग्धकारी संकीर्तन—साधारणत यही इन सभाओं के प्रधान कार्यक्रम रहते हैं। तत्त्वज्ञ पण्डित, शिक्षित युवक, कट्टर वैष्णव एव योगी आदि सभी सदलबल इन सभाओं मे शामिल होते हैं।... इन स्थानों में जाकर अनायास मन में जीवित प्रेमभक्ति का प्रकाश हो उठता है। समस्त स्त्री-पुरुष मानो एक स्वर्गीय आनन्द-धारा मे बहते रहते हैं। यह एक अपूर्व दृश्य है।

"अति आश्चर्यजनक है इसका प्रभाव। विभिन्न धर्मो के परस्पर-विरोधी मत प्रेम-भक्ति की इस तीव्र धारा में मालूम नहीं कहाँ अन्तर्हित हो जाते हैं। यह कहना बड़ा मुश्किल है कि धर्म का यह एकत्व और प्रेम का यह अपूर्व मिलन अन्त मे कहाँ तक पहुँचेगा? भगवान् के क्रियाकलाप मनुष्य की बुद्धि से परे है।"

* * *

एक दिन श्रीरामकृष्णदेव ने मथुर बाबू से कहा था—"माँ ने मुझे सब कुछ दिखा-समझा दिया है। बहुत से व्यक्ति जो

अन्तरग हैं वे सभी यहां आयेंगे। यहाँ रहकर वे ईश्वरीय विषयो का ज्ञान प्राप्त करेंगे, श्रवण करेंगे, प्रत्यक्ष करेंगे और प्रेम-भक्ति की प्राप्ति करेंगे। (अपना शरीर दिखाकर) इस शरीर में माँ बडे-बडे खेल खेलेगी। ससार का बहुत कल्याण करेगी। इसीलिए तो इस देह को अभी तक बनाये रखा है।". . यह बहुत दिन पहले की बात है। इस बीच में मनुष्य-लीला समाप्त करने का समय भी उन्हे ज्ञात हो गया था। (इस सम्बन्ध में हम बाद में विचार करेंगे।) अस्तु, अपने अन्तरगो और सन्देशवाहको को जब उन्होंने न आते देखा तब उन्हे कुछ अस्थिरता होने लगी।

उस समय की अवस्था का वर्णन उन्होंने बाद मे बालकभक्तों से किया था--"तुम सबको देखने के लिए मन व्यग्र हो उठता। ऐसा मालूम पडने लगता मानो हृदय को कोई निचोड रहा है। यन्त्रणा से उस समय मैं विकल हो उठता। चिल्लाकर रोने की इच्छा होने लगती। 'लोग देखकर क्या सोचेंगे?' इसी विचार से रो नही पाता था। बडी मुश्किल से अपने आपको सम्भाल पाता था। जब दिन के बाद रात आती, माँ के मन्दिर मे एव विष्णु के मन्दिर में सान्ध्य नीराजन के बाजे बज उठते उस समय ख्याल आता कि एक दिन और बीत गया। तब भी तुम लोगों को न आया देखकर बहुत ही अवसन्न हो उठता। उस समय मैं कोठी की छत पर चढकर 'तुम सब कहाँ हो, आओ' इस प्रकार उच्च स्वर से पुकारते-पुकारते क्रन्दन करने लगता। ऐसा प्रतीत होता कि मैं विक्षिप्त हो जाऊँगा। इसके कुछ दिन पश्चात् जब तुम लोगो ने एक-एक कर आना प्रारम्भ कर दिया तब कुछ शान्ति प्राप्त हुई। पहले ही मैंने तुम लोगो को देखा था--इसलिए जब तुम लोगो ने एक-एक कर आना प्रारम्भ किया--तुम

सबको मैं पहचान गया।"

विचित्र था उनका दर्शन—और अद्भुत थी उनकी सफलता! इस दैवी-शक्ति-सम्पन्न ऐन्द्रजालिक ने कोठी की छत पर आध्यात्मिक वायुमण्डल में एक ऐसे आश्चर्यमय स्पन्दन की सृष्टि की थी कि एक सुर में बँधे कई आत्माएँ एक-साथ स्पन्दित होती रहीं। उन्होंने भी एक अव्यक्त आकर्षण का अनुभव तो किया किन्तु वे यह न समझ पाये कि कौन बुला रहा है—कहाँ से यह ध्वनि आ रही है?

ये सब सन् १८७५-७६ ई. की घटनाएँ हैं। अन्तरंगों को आह्वान करके ही विरत नहीं हुए थे। ब्राह्म समाज एवं अन्यान्य धर्मप्रतिष्ठानों में जाकर जगन्माता के इंगित से ठाकुर दिव्यभाव प्रकट करने लगे, जिससे कि निर्दिष्ट भक्तगण उनकी अवस्थिति से अवगत हो सकें।

उनके भीतर एक दिव्य प्रेरणा का प्रकाश हो रहा था—और आया था धर्मचेतना को जागृत करने के लिए एक अनिवारणीय आग्रह। जहाँ कहीं भी भगवान् के नाम का गुणगाण होने लगता, अयाचित भाव से वहाँ वे जा पहुँचते। जो कोई व्यक्ति ईश्वर का नाम लेता, ध्यान करता—अनायास वे उसके पास पहुँच जाते—इन सब क्रियाकलापों में एक ही उनका लक्ष्य था—सभी धर्मावलम्बी साधकों के जीवन में प्रौढ़ता लाना।

दैव इच्छा से युगावतार के भावप्रचार के अनुरूप वातावरण की भी सृष्टि हो गयी। ठाकुर ने एक समय बताया था—"यह जो कुछ तुम देख रहे हो, ये हरिसभा आदि सब (अपने शरीर को दिखाकर) इसी के लिए समझो। क्या पहले भी कुछ था? कैसे यह सब बन गये हैं? इस शरीर के आने के बाद

यह सब कुछ बना है। भीतर ही भीतर धर्म का एक स्रोत बह रहा है।..."

ठाकुर का दैव आह्वान व्यर्थ नहीं हुआ। सन् १८७५ ई. से उनके अन्तरग भक्तों ने एक-एक कर दक्षिणेश्वर में आना आरम्भ कर दिया*। एवं उनके दिव्य संग से अल्पकाल में ही अपने आध्यात्मिक जीवन में नवचेतना का अनुभव कर अपने आपको वे धन्य समझने लगे। ठाकुर ने भी प्रथम दिन से ही उनको चिरपरिचितों के समान ग्रहण किया और उन्होंने सबके

---

*दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरग पार्षदों और भक्तों के आगमन का सन और क्रम 'कथामृत' के प्रथम भाग में लिखा है जो इस प्रकार है — विश्वनाथ उपाध्याय १८७५ ई. में आये थे। इसके कुछ बाद सिंथि के गोपाल (अद्वैतानन्द) और महेन्द्र कविराज, कृष्णनगर के किशोरी और महिमाचरण ने क्रम से ठाकुर के दर्शन किये थे।... राम और मनोमोहन १८७९ ई. के उत्तरार्ध में आकर मिले थे। उसके बाद केदार और सुरेन्द्र आये। इसके अनन्तर चुनी, लाटू (अद्भुतानन्द), नृत्यगोपाल, तारक (शिवानन्द) भी आकर मिले। १८८१ का उत्तरार्ध और १८८२ का पूर्वार्ध—इस दौरान में नरेन्द्र (विवेकानन्द), राखाल (ब्रह्मानन्द), भवनाथ, बाबूराम (प्रेमानन्द), बलराम, निरञ्जन (निरञ्जनानन्द), मास्टर, योगीन (योगानन्द) ठाकुर के सम्पर्क में आये। १८८३–८४ ई. में किशोरी, अधर, निताई, छोटे गोपाल, बेलघरिया के तारक, शरत् (सारदानन्द) तथा शशी (रामकृष्णानन्द) आये। १८८४ साल के मध्य भाग में सान्याल, गंगाधर (अखण्डानन्द), काली (अभेदानन्द) गिरीश, सारदा (त्रिगुणातीतानन्द), कालीपद, उपेन्द्र, द्विज और हरि (तुरीयानन्द) का आगमन हुआ। १८८५ के मध्यभाग में सुबोध (सुबोधानन्द), छोटे

प्राणों में आध्यात्मिक नवचेतना का संचार करके उनके लिए परमानन्द प्राप्ति का द्वार खोल दिया। सभी विस्मित और विमुग्ध हो गये। इतना स्नेह और बिना माँगे इतनी दया! यह अपार्थिव प्रेम! यह अभय! और यह आनन्द! अकिंचन के प्रति इस प्रकार अकारण कृपा करने वाले ये कौन हैं? अवाक् विस्मय से वे लोग यही सोचते रहते। परिचित और अपरिचित सभी से वे 'चीनी के पहाड की खोज' बताने लगते। आत्मीय और परिजन वर्ग को धीरे-धीरे वे दक्षिणेश्वर में पंचवटी की स्निग्ध शीतल छाया में ले आने लगे।

* * *

शास्त्र में आधिकारिक पुरुषों को जातिस्मर कहते हैं अर्थात् उन्हें पूर्वजन्म की घटनाओं का स्मरण होता है। श्रीकृष्ण, बुद्ध आदि अवतारी पुरुषो के जीवन में इसका पर्याप्त प्रमाण पाया जाता है। श्रीरामकृष्णदेव भी जानते थे कि जो राम रूप में, कृष्णरूप में एवं अन्यान्य अवतारों के रूप में शरीर धारण करके आये थे, वही तो 'रामकृष्ण' के रूप में विराजमान हैं। जिस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में अतीत, वर्तमान और भविष्य की आध्यात्मिक भावराशि का सम्मिलन दिखायी पडता है उसी प्रकार उनके सन्देशवाहकों में भी पूर्व-पूर्व अवतारो के साथ रहने वाले

नरेन, पलटू, पूर्ण, नारायण, तेजचन्द्र और हरिपद आये। इसी प्रकार हरमोहन, नवाईचैतन्य. हरिप्रसन्न (विज्ञानानन्द) का भी आगमन हुआ।

"लीलाप्रसग", 'पोथी' और 'भक्तमालिका' आदि ग्रन्थो में उल्लिखित भक्तो के दक्षिणेश्वर आगमन के समय में और 'कथामृत' में दये गये समय में थोडा-बहुत व्यतिक्रम पाया जाता है।

स्पर्धा का समावेश दिखायी पड़ता है। उनमें कोई या अखण्ड-स्वरूप, किसी का जन्म राम वा विष्णु के अंश से, कोई व्रज का ग्वालबाल, किसी का जन्म कृष्णसखा अर्जुन वा श्रीराधिका के अंश से, कोई महात्मा ईसा का दूत, कोई बुद्ध का पार्षद, कोई चैतन्य का प्रतिनिधि और कोई अद्वैतज्ञानी थे। ब्रह्मशक्ति एवं अतीत के विभिन्न अवतार वर्तमान में लीला-सम्पादन के लिए जिस प्रकार भावज्योति रूप से श्रीरामकृष्ण की देह में प्रविष्ट हुए थे इसी प्रकार उन अवतारों ने अपने पार्षदों को भी मानवजाति के कल्याणार्थ—'जितने मत उतने पथ'—इस सत्य धर्म के प्रचार के लिए इस संसार में भेजा था।

ठाकुर ने एक दिन कहा था—"जो इसके (उनके शरीर के) भीतर है, पहले से ही वे जना देते थे कि किस स्तर का भक्त आयेगा। अगर गौरांग रूप सामने आता दिखाई पड़े तो मैं समझ लेता हूँ कि गौर-भक्त आ रहा है, यदि शक्तिरूप, कालीरूप, का ही दर्शन हो रहा है। तो मैं समझ लेता हूँ कि शाक्त भक्त आ रहा है।. ."

ठाकुर के सान्निध्य में जो भी पार्षद आये उनके आने के पूर्व ही ठाकुर भावावेश में उनके स्वरूप आदि के सम्बन्ध में सब कुछ जान जाते थे। बड़ी ही विचित्र बात थी यह! प्रत्येक पार्षद के स्वरूप आदि के बारे में ठाकुर ने जो कुछ बताया था, स्थानाभाव से उन सबको यहाँ लिख सकना सम्भव नहीं है। दो-एक पार्षदों के सम्बन्ध में ही थोड़ा-बहुत लिखकर हमें तृप्त रहना पड़ेगा।

राखाल के आगमन के पूर्व ठाकुर ने जो कुछ देखा था उसके सम्बन्ध में उन्होंने बताया था—"राखाल के आने के कुछ

दिन पहले दिखायी पड़ा कि माँ ने एक बालक को लाकर सहसा मेरी गोद में बिठा दिया और कहा—'यह तुम्हारा बच्चा है।' सुनकर आतंक से सिहरते हुए मैंने पूछा—'यह क्या? मेरा बच्चा कहाँ से आया?' तब उन्होंने हँसते-हँसते बताया—'यह साधारण सांसारिक भाव से उत्पन्न बच्चा नहीं, अपितु त्यागी मानसपुत्र है।' तब मुझे कुछ आश्वासन मिला। उस दर्शन के बाद ही राखाल आ उपस्थित हुआ। मैं समझ गया कि यही है वह बालक।"

राखाल के आगमन के ठीक पहले ठाकुर ने भाव-नेत्रों से देखा था—गंगा के वक्ष पर सहसा शतदल कमल विकसित हो उठा है, कमल के हर दल में अपूर्व शोभा! वंशीवादन राखालराज श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर अनुरूप एक दूसरा बालक नूपुर पहन कर उस शतदल पर नृत्य कर रहा है। ... देखते-देखते श्रीरामकृष्णदेव भावावेश में विभोर हो गये। ठीक उसी समय राखालचन्द्र आये। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर देखा—यही तो वह जगदम्बा-प्रदर्शित मानसपुत्र है—कमलदलों पर नृत्यशील श्रीकृष्ण-सखा। राखालचन्द्र के स्वरूप का पता भी वे उसी से पा गये।

वे कहते थे—"राखाल व्रज का ग्वाल-बालक है। अपने स्वरूप के सम्बन्ध में जिस समय वह जान जायेगा, उसी समय शरीर का परित्याग कर देगा।"

नरेन्द्रनाथ के दक्षिणेश्वर आने के पूर्व भी ठाकुर को एक अलौकिक दर्शन हुआ था।* उन्होंने देखा था—"ज्योति

---

* श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था—"एक दिन देखा—मेरा मन समाधि-पथ

मण्डल का एक महर्षि युगधर्म के प्रचार में सहायता देने के लिए देह धारण करके आ रहा है।" उन्होंने कहा था—"मैं नरेन्द्र को देखते ही समझ गया था कि यही है वह ऋषि।"

आश्चर्यजनक अवतार, अभिनव पार्षद, अचिन्तनीय मिलन और अपूर्व सफलता—सबका विचित्र समन्वय था।

से ज्योतिर्मय मार्ग में उठता जा रहा हूँ। चन्द्रसूर्यतारा मण्डित स्थूल जगत् को अतिक्रमण कर मन क्रमशः सूक्ष्मभाव-जगत् में प्रविष्ट हो गया। .. देव-देवियों की भावघन अनेक मूर्तियाँ मार्ग के दोनों ओर विराजमान दिखायी पड़ीं। मन क्रमशः अखण्ड राज्य में प्रवेश कर गया। सात प्राचीन ऋषि वहाँ समाधिस्थ बैठे थे। ज्ञान, पुण्य, त्याग और प्रेम में ये लोग मनुष्य ही क्यों, देव-देवियों के भी परे पहुँच थे। विस्मित होकर मैंने देखा—सामने अवस्थित अखण्ड घर के भेद-रहित समरस ज्योतिर्मण्डल का एकांश घनीभूत होकर एक दिव्य शिशु के रूप में परिणत हुआ। इस अद्भुत देवशिशु ने असीम आनन्द प्रकट करते हुए एक ऋषि से कहा—"मैं जा रहा हूँ, तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा।" —श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग।

१५

श्रीरामकृष्णदेव के जीवन के अन्तिम छ: वर्ष मानो पूरे छ: युग थे। जिस महाशक्ति के इशारे से अत्युग्र साधना करके वे भूमानन्द में प्रतिष्ठित हुए थे उसी शक्ति की इच्छा से अब वे अमृत का सरोवर बनकर समस्त तृषितो को उसी भूमानन्द का वितरण करने में लग गये। माधुर्य के पर्वत को चूर्ण-विचूर्ण कर छोटे से लेकर बड़े तक सब में बाँट दिया। आनन्द की लूट हो गयी। जिसको जितना मिला, लूट ले गया। किन्तु जो असमर्थ और अक्षम थे--नही आ सकते थे उनके द्वार पर जाकर कृपामूर्ति श्रीरामकृष्ण ने अमृत रस पहुँचा दिया।

जिस प्रकार माँ बच्चे को स्तन्यपान कराने के लिए व्याकुल हो उठती है उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण भी ब्रह्मकृपा रूप जल से सबको अभिषिक्त करने के लिए व्यग्र हो उठे। बिना कुछ सोच-विचार किये वे प्रत्येक प्राणी को अभिषिक्त करते चलते थे। वे कहते थे--"जिस प्रकार मलय समीर के बहने से सब लकड़ियाँ (घास और बास को छोडकर) चन्दन हो जाती है, उसी प्रकार (इस बार भी)।..."

ठाकुर ने एक दिन भावावेश में कहा--"अब माँ से कहता हूँ, और ज्यादा नही बक सकता। और कहता हूँ--माँ, जिसे एक बार छू दूँ, उसे चैतन्य हो जाये। ऐसी ही तो महिमा है--

योगमाया की, वह जादू कर सकती है । . . . योगमाया -- जो आद्या शक्ति है, उनके पास एक अद्भुत आकर्षणी शक्ति है। मैंने इसी आकर्षणी शक्ति का प्रयोग किया था ।"

क्या ही एक विचित्र आकर्षण से खिंचकर राजा-महाराजा, दु खी-कगाल, पण्डित-मूर्ख, भक्त-ज्ञानी, हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्म-ईसाई, साहित्यिक, कवि, शिल्पी, दुकानदार, ब्राह्मण-मेहतर, पतित-पतिता, वृद्ध-वनिता आदि सभी दक्षिणेश्वर मे आने लगे। कौन सी वस्तु उन्हें खीच रही थी ? किस लिए वे सब इस ब्राह्मण पुजारी के पास दौडे चले आ रहे थे ?

कोई भी क्यो न हो -- सबके लिए दरवाजा खुला था -- सबके लिए हाथ फैला हुआ था। श्रीरामकृष्ण के वीर भक्त गिरीश ने अपने अन्तिम जीवन में एक बार कहा था -- "पापो को रखने के लिए इतना बडा स्थान है जानता, तो मैं और भी अनेक पाप कर लेता ।" वह अद्भुत जादूगर प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के साथ जादू का ही खेल खेलते । निरक्षर गडरिये का निरक्षर पुत्र भी उनके स्पर्शमन्त्र से महाज्ञानी सर्ववेदज्ञ बन गया। सप्तर्षि-मण्डल के ऋषि को निर्विकल्प समाधि मे खीच लाकर ठाकुर ने नर-नारायण की सेवा मे -- विश्वधर्म के प्रचार में -- नियुक्त कर दिया । उन्होने धर्महीन को धर्म दिया, नास्तिक को आस्तिक बनाया और शुष्क प्राणो को उन्होंने प्रेमधारा से आप्लावित किया ।

भक्तो को साधन-मार्ग में प्रवृत्त करने के पहले ठाकुर उनके अन्तर में झाँककर देख लेते थे कि वे किस पथ पर जाने लायक हैं । उसके अनुसार उनके अनुरूप साधनमार्ग की ओर ही वे उन्हें चलाते थे । किसी के भाव को उन्होंने कभी नष्ट नही किया ।

किसी धर्म वा सम्प्रदाय का अनुयायी क्यों न हो, उनको उसी के मार्ग से वह आनन्दधाम की ओर ले चलते थे। वे कहते थे—"जिस प्रकार शीशे की आलमारी के भीतर रखी हुई वस्तुओं को बाहर से एकदम स्पष्टतया देखा जा सकता है, उसी प्रकार यहाँ आने वाले भक्तों का अन्तर भी मुझे साफ-साफ दिखायी पड़ने लगता है।"

अपने कृपाहस्त के स्पर्श द्वारा ठाकुर यत्न से प्रत्येक के हृदय के पाप-ताप, ग्लानि और मलिनता का चिह्न तक पोंछ डालते थे। बडे प्रेम से वे कहते थे—"जो अपने को हमेशा पापी समझता है, वह सचमुच पापी ही बन जाता है। अपने को पापी समझने की नही, अपितु ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है। हम निरन्तर भगवान का नाम लेते हैं—फिर हमारा पाप रहा कहाँ?" उनकी सत्यवाणी मन्त्रशक्ति के समान प्रभाव दिखलाती थी। उनका स्पर्श प्राप्तकर सभी अपने आपको सहज और सुन्दर अनुभव करने लगते थे।

ठाकुर थे करुणा के सागर। सबके प्रति उनके मन में समान ही करुणा वा दयाभाव रहता था। समर्थ-असमर्थ का उनके मन में कोई ख्याल नही था। वे सबके त्राणकर्ता थे, अशरण-शरण थे। किन्तु उस दल के व्यक्ति वे नही थे जो हमेशा ही "सब माया है, सब मिथ्या है" का रोना रोते हैं। जीव का दुःख देखकर वे स्वय भी रोने लगते, शोकातुर के लिए उनका मन वेदना से भर जाता।

त्याग के मार्ग पर चलकर जो भक्त-बालक ठाकुर के भावी सन्देशवाहक बनने वाले थे, उनकी शिक्षा, दीक्षा, साधना आदि सब भिन्न थी। उनका जीवन अनाघ्रात पुष्प के समान पवित्र था।

वे कहते थे--"कौए का जूठा फल देव-पूजा के उपयुक्त नही होता। तुम्हारा जीवन स्वतन्त्र है--यही देवपूजा के लिए कृष्णार्पित जीवन है।" उनको वह उपदेश देते थे--"नारी मात्र मे मातृभाव रखना ही शुद्ध भाव है। मातृभाव मानो निर्जला एकादशी है जिसम किसी भोग की गन्ध भी नही रहती। . सन्यासी के लिए तो यह वास्तव म निर्जला एकादशी है।"

श्रीरामकृष्ण के त्यागी पार्षदो न साधारण जीव के समान प्रारब्ध के वश होकर जन्म ग्रहण नही किया था। देवकार्य सम्पादन और जीवनमात्र का कल्याण करने के लिए ही व आये थ। उनके अन्तर म दृष्टि डालकर कभी कभी वे कहते थ--" ये सब लडके तो जन्म से ही सिद्ध है ईश्वर का ज्ञान लेकर जन्मे है। अवतार के साथ जो लोग आते हैं वे नित्य सिद्ध हैं किसी का तो यही अन्तिम जन्म है। नित्य सिद्ध की श्रेणी ही पृथक् है। अल्प साधन करने से ही नित्य सिद्ध भगवान् को प्राप्त कर लेते है फिर साधन किय विना भी (भगवान् को) पाते है।"

ठाकुर की शिक्षा-पद्धति पूर्णतया अभिनव थी। "मानव गुरु मन्त्र देते है कान में और जगद्गुरु मन्त्र देते है प्राण में।" वे भी भक्तो के प्राणो म अपनी आध्यात्मिक शक्ति का सचार कर उनकी कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर देते थ। जैसा अधिकारी समझते उसी के अनुसार वे भावावेश में आकर भक्तो के वक्ष, जिह्वा वा शरीर के किसी अन्य स्थान मे स्पर्श करते। इस शक्तिपूर्ण स्पर्श से उनका मन सहृत और अन्तर्मुख हो जाता एव सचित किन्तु सुप्त ईश्वरी भाव जागृत हो उठता। फलस्वरूप उन्हे किसी दिव्य ज्योति अथवा देव-देवियो के ज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन होने लगता। किसी को गभीर ध्यान और अभूतपूर्व

आनन्द की अनुभूति होने लगती। कोई ईश्वर-प्राप्ति के लिए बुरी तरह तडपने लगता। फिर किसी के जीवन में दिव्य भावावेश अथवा समाधि की तन्मयता का संचार हो जाता।

राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा और चैतन्य आदि देव-मानवों के जीवन-चरित्रों को देखने से स्पष्ट पता चल जाता है कि उन्होंने इच्छा और स्पर्श से ही बहुत से असमर्थों को समर्थ बना दिया था। चक्षुहीन को उन्होंने चक्षु दिये और जिसके पास ज्ञान की कमी थी, उसे उन्होने आत्मज्ञान दिया। भक्तिहीन को उन्होंने भगवद्भक्ति दी। जो पापी था उसे उन्होने पापमुक्त किया। वर्तमान युग में श्रीरामकृष्ण के जीवन-चरित्र में आध्यात्मिक शक्ति-सचार का जो उल्लेख मिलता है उसके सामने अतीत की सभी घटनाएँ फीकी मालूम पडने लगती हैं।

ठाकुर के शक्ति-सचार के फलस्वरूप भक्तों को अलौकिक दर्शन, भावावेश और गभीर ध्यान का लाभ होने लग गया। उनके पास जो भी आता था, वही दिव्य आनन्द से भरपूर होकर लौटता था। भक्तों की भावभक्ति मानो उफन पड़ती थी। कितने ही लोगों ने—भाव, हास्य, रोदन, नृत्य और गान के रूप से "ऊर्जिता भक्ति" का लाभ किया।

यह महाशक्ति का ही आकर्षण था कि केवल कलकत्ता वा आसपास के स्थानो से ही नही, अपितु बहुत दूर-दूर से भक्त, अनुरागी और मुक्ति-कामी सदल-बल दक्षिणेश्वर में आकर जुटने लगे। एक दिन ठाकुर ने भावावेश में कहा था—"जो आन्तरिक हृदय से ध्यान-जप करते है, उन्हे इस स्थान पर आना ही पड़ेगा।"

* * *

श्रीरामकृष्णदेव के समीप जितने भक्त समवेत हुए थे उन्हें

आम तौर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम तो वे अनेक जो मुक्तिकामी थे, दूसरे जिन्हें अन्तरग कहा जा सकता है। इनमें मुक्तिकामियों की सख्या अधिक थी। अन्तरग तो कुछ गिने-चुने ही थे।

इन मुक्तिकामियों में भी नाना भावों के साधक थे। इन सभी साधक-भक्तों को मुक्ति-द्वार तक पहुँचाने के लिए ठाकुर ने न जाने कितने कष्ट सहे। सैकडों जीवों का पाप-भार उन्हें लेना पडा था। किसी-किसी के स्पर्श करने पर वे वेदना से चिल्ला उठते थे। उस समय कहते कि "सर्वांग जल गया।" इतना कष्ट होने पर भी वे जीवों का उद्धार करते ही जा रहे थे। जीवकल्याण के लिए ही तो उन्होंने शरीरधारण किया था। किन्तु कभी-कभी वे अवसन्न से हो जाते थे। उस समय वे जगन्माता के ऊपर अभिमान करके कहते—"जलमिले हुए दूध को उबालने के लिए बहुत ईंधन देना पडता है। अब वह मुझसे नहीं हो पा रहा है माँ! एक सेर दूध में चार सेर जल! धुएँ के मारे आँखें जल रही हैं।"

और जो ठाकुर के अन्तरग पार्षद युगधर्म के प्रचार में उनकी सहायता करने के लिए आये थे उनको मुक्ति की कामना नहीं थी। उनके सम्बन्ध में ठाकुर ने भावावस्था में एक बार कहा था—"अन्तरग पार्षदों में दो बातें विशेषतया जानने लायक हैं। प्रथम तो मैं (अपनी ओर दिखाकर) कौन हूँ? उसके बाद वे कौन हैं? और मेरे साथ उनका सम्बन्ध क्या है?" और फिर कहते थे—'इन लडकों में बहुत से तो नित्यसिद्ध हैं। जन्म से ही उनका ईश्वर की ओर आकर्षण है।... उनकी स्थिति कैसी है जानते हो? पहले फल और बाद में फूल। पहले दर्शन, फिर

भगवान की गुण-महिमा श्रवण और उसके बाद मिलन। ये सभी नित्यसिद्ध बालक भगवान् की प्राप्ति करने के बाद ही साधन करते है। जो अन्तरग पार्षद है उन्हे मुक्ति नही होगी...।"

ठाकुर के भीतर ईश्वरीय शक्ति का कुछ ऐसा आधिक्य और ऐसा विकास दिखायी दे रहा था जिसे केन्द्र कर आनन्द की एक बाढ सी आ गयी थी। दक्षिणेश्वर में उनका छोटा घर ही मानो ईश्वरीय भाव का शक्तिकेन्द्र था। वही से वह दिनरात एकसमान आध्यात्मिक आलोक फैलाते रहते थे। जो एक बार आ जाता वही मुग्ध हो जाता था।

कभी ठाकुर तालियाँ बजाते हुए भगवान् का नामकीर्तन करने लगते और कभी भावावेश में माँ जगदम्बा के साथ बातचीत करने लगते। कभी मधुर कण्ठ से माँ का स्तुतिगान करने लगते-- फिर भक्तो के साथ मतवाले होकर सकीर्तन मे मग्न हो जाते। मृदंग-मजीरा बजने लगते तो कितना मनोहर होता था उनका भावमय नृत्य! कभी हुकार छोडते हुए उन्मत के समान नृत्य करते-करते गभीर समाधि मे लीन हो जाते। उसके बाद सब शान्त! उनके मुखमण्डल से मानो आनन्द की धारा चूने लगती। भक्तगण स्तब्ध होकर उस समाधिचित्र को देखते रहते। भक्तो को भी भावावेश होने लगता। कोई हँसना शुरु कर देता, किसी का रोना ही नही थमता और कोई जडवत् स्तब्ध और स्पन्दनहीन हो जाता। और फिर कोई आनन्द में विभोर हो नृत्य करने लगता। ठाकुर ने भावावेश में किसी को स्पर्श कर दिया। फलस्वरूप वह भी गभीर समाधि में मग्न हो गया। आनन्द-रूपी मलय के हिलोरो से सबके प्राण और मन मानो झूम रहे थे।

१६

श्रीरामकृष्ण किसी देश-विशेष, जाति-विशेष अथवा धर्म विशेष के लिए नहीं आये थे। वे आये थे — विश्वमानवों के लिए विश्वधर्म के लिए। "जितने मत, उतने पथ" — यही तो विश्वधर्म का नया रूप है।

सभी धर्म सत्य हैं। प्रत्येक धर्म ही जीवात्मा को अतीन्द्रिय सत्ता में पहुँचाने का एक-एक सत्पथ है। इस "जितने मत उतने पथ' रूपी धर्म की पताका के नीचे हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान एवं मानव-जाति और मानव-सभ्यता की प्रगति के साथ भविष्य में भी जितने धर्म पैदा होंगे — सभी धर्मधर्मी पास-पास खड़े हो सकेंगे। एवं उनका आदर्श होगा — श्रीरामकृष्ण का जीवन

श्रीरामकृष्णदेव का कहना था — "जो राम, जो कृष्ण, इस समय (अपनी ओर दिखाकर) इसी शरीर में आये हुए हैं।" जो शक्ति युग-युग में राम, कृष्ण आदि के रूप में आविर्भूत होती रही है वही तो अब ' रामकृष्ण" रूप में अवतीर्ण हुई है।

श्रीदुर्गासप्तशती में लिखा है कि असुर-वध की तैयारी के लिये देवताओं ने देवी को अपने-अपने आयुधों से सज्जित किया था। श्रीरामकृष्ण-अवतार में भी देखा गया कि ब्रह्मज्योति से आरम्भ करके शिव-काली, रामकृष्ण, ईसा, मोहम्मद, चैतन्य (महाप्रभु) एवं और भी कितने ही दिव्यदेहधारी उनके भीतर—

ज्योतिस्वरूप से लीन हो गये है।

सभी अवतार किसी न किसी विशेष शक्ति के आधार हैं। और सभी विभिन्न भावों के प्रतीक और सत्य के मूर्त विग्रह हैं। श्रीरामकृष्ण के भीतर सबके संगत होने का फल यह हुआ कि "श्रीरामकृष्ण" सभी भावों के मूर्तविग्रह रूप एवं आध्यात्मिक शक्तिकेन्द्र रूप में परिणत हो गये। सम्पूर्ण विश्व को एक अभिनव आध्यात्मिक आलोक से उद्भासित करने के लिए ही तो इन विभिन्न ज्योतिर्मय स्वरूपों का श्रीरामकृष्ण के भीतर सम्मिलन हुआ था। सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म, त्यागमूर्ति शिव, अभय और वरदानरूपा काली, सत्यमूर्ति रामचन्द्र, परम कल्याणस्वरूप कृष्ण, क्षमा-धृति-विग्रह ईसा, विश्वभ्रातृत्व के प्रतीक मुहम्मद एवं चण्डाल तक को प्रेम देने वाले श्रीचैतन्य — इन सभी की भावज्योति एकीभूत होकर एक महाशक्तिशाली आलोक-निकेतन-स्वरूप श्रीरामकृष्ण का विकास हुआ था। श्रीरामकृष्ण का स्वरूप महातेज-पूर्ण उस सन्धानात्मक ज्योति के समान था जहाँ से समस्त विश्व में आध्यात्मिक आलोक की किरणें फैल रही थी। पहले होने वाले सभी अवतारों और सिद्ध महापुरुषों की भावराशि को पुनरुद्दीपित करके नये साँचे में ढालने का प्रयोजन हुआ था। इसी कारण श्रीरामकृष्ण के जीवन की अभिनव साधना और अपूर्व सिद्धि थी। श्रीरामकृष्ण व्यक्ति-विशेष नही थे, बल्कि वे थे एक भावमय विग्रह।

* * *

ठाकुर ने एक दिन कहा था — "नवाबी शासन का सिक्का बादशाही शासन में नही चलता।" सिक्के का उपादान यद्यपि एक ही रहता है किन्तु उसकी आकृति और छाप तो बदलती ही

रहती है। इसी प्रकार ठाकुर भी सर्वधर्मस्वरूप "जितने मत उतने पथ" की नयी छाप बन गये थे। .. यही उनकी दिव्य वाणी थी—"जो यहाँ (श्रीरामकृष्ण का भाव ग्रहण करने के लिए) आयेगा, उसी को चैतन्य लाभ हो जायेगा।" ..

और भी वे कहते थे—"इस बार छद्म वेश में आना हुआ है, जैसे कोई जमींदार छिपकर जमींदारी देखने के लिए जाता है।" इसलिए इस बार पूर्ण सात्त्विक भाव का अविर्भाव था। रूप, विद्या, सर्वविध ऐश्वर्य या किसी अन्य विभूति का वहाँ कोई प्रकाश नही था। केवल परा विद्या, परमा भक्ति और परम ज्ञान ही वहाँ आलोकित हो रहे थे। अपूर्व त्याग, ज्वलन्त वैराग्य, विशुद्ध ईश्वर-परायणता, विश्वप्लावी प्रेम—ये ही थे श्रीरामकृष्ण अवतार के भावैश्वर्य। जो भाग्यवान् थे वे ही उन छद्मवेशी को पहचान सके थे। जिनका यह अन्तिम जन्म है वे ही इस सर्वभावमय को पकड़ सकेंगे।

* * *

ठाकुर का शरीर धीरे-धीरे क्षीण होने लग गया। अब दुर्भर होने लगा। दिनरात धर्मदान, शान्तिदान और मुक्तिदान चलता रहता। दूर-दूर से लोग दलो के दलो में आते थे। सभी ससार-दावानल में जलकर आते थे। कोई कितने ही पापाचरण करके और सासारिक यन्त्रणाएँ भोग कर ही आते थे। सब लोग मुक्ति चाहते थे। वे भी अकातर भाव से सबको मुक्ति का दान करते जा रहे थे।

श्रीरामकृष्णदेव ने एक बार भावावस्था में कहा था—". यहाँ और कोई नही है। तुम सब अपने ही आदमी हो, तुमसे ही कहता हूँ—अन्त में समझ गया हूँ—वे पूर्ण है, मैं

उनका अंश हूँ। वे प्रभु हैं और मैं उनका दास हूँ। फिर सोचता हूँ, वे ही मैं हूँ, मैं ही वे हैं।"

ठाकुर अन्य एक दिन जगन्माता के समीप भावावेश में प्रार्थना कर रहे थे—"माँ यहाँ जो लोग आन्तरिक आकर्षण से आवेंगे वे सिद्ध हो जायें।" वे जीवों के त्राण के लिए ही आये थे, उसी ओर संकेत कर वे कहते थे—"अवतार को देखना और ईश्वर को देखना दोनों एक ही बात है।"

नर-देह त्याग करने का समय भी वे जानते थे—एक बार उन्होंने श्रीमाँ सारदा देवी से कहा था—"जब देखो कि मैंने (रात्रि के समय) कलकत्ते में रहना प्रारम्भ कर दिया है, जिस किसी के हाथ से खाना शुरू कर दिया है, अथवा स्वयं खाने के पूर्व ही अपने भोजन में से कुछ हिस्सा किसी और को देने लग गया हूँ—तब समझ लेना कि यह शरीर अब ज्यादा दिन नहीं टिकेगा।"

भक्तों से भी ठाकुर ने कहा था—"जब बहुत अधिक लोग ईश्वर समझकर श्रद्धा और भक्ति करने लग जायेंगे तभी यह शरीर अन्तर्धान हो जायेगा।" शरीर-त्याग के समय के सम्बन्ध में उन्होंने और भी अनेक संकेत किये थे। इस बार छद्मवेश में आगमन था। अधिक लोगों के जान जाने पर ये चल देंगे।

* * *

सन् १८८५ ई. के अप्रैल माह के अन्त में ठाकुर के कण्ठ में कैंसर रोग का सूत्रपात हुआ।* किन्तु उन्होंने उसकी कोई

---

*"कथामृत" के द्वितीय भाग में लिखा है—२४ अप्रैल सन् १८८५ ई. को बलराम के बैठकखाने में ठाकुर ने कहा था—"...कौन

परवाह नहीं की। धर्मोपदेश, शक्तिसंचार और जीवोद्धार दिन पर दिन बढता ही गया। साथ ही साथ कैन्सर में भी वृद्धि होती गयी। गले के भीतर धीरे-धीरे सूजन आ गयी, घाव हो गया, जिससे बोलने में बहुत ही कष्ट होने लगा। तब भी वे निरन्तर ईश्वर-चर्चा करते रहते। धर्मपिपासुओं के आने पर वे गले की वेदना को एक तरफ रख देते। इसके ऊपर निरन्तर भाव और समाधि का दौर चल रहा था। ईश्वर-चर्चा शुरू होते ही उनमें उद्दीपन होता और एकदम समाधिस्थ हो जाते। सेवकों के मना करने का उन पर कोई असर नहीं पडता था।

पर्याप्त चिकित्सा करने पर भी मर्ज को बढते ही देखकर भक्तगण कुछ शंकित हो उठे। चिकित्सा और सेवा की सुविधा के ख्याल से डाक्टरों ने ठाकुर को कलकत्ते आने की राय दी। श्यामपुकुर में एक छोटा-सा मकान किराये पर ले लिया गया। एक सप्ताह बलराम बाबू के घर में रहकर १८८५ ई के अक्टूबर के प्रारम्भ में वे श्यामपुकुर चले आये। उस समय डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार उनकी चिकित्सा कर रहे थे। इसके कुछ दिन बाद उनकी सेवा के लिए श्रीमाताजी भी दक्षिणेश्वर से श्यामपुकुर वाले घर में आ गयी।

श्रीरामकृष्णदेव अस्वस्थ होकर कलकत्ते आये हैं—इसका पता चलते ही अनेक लोगों ने उनके दर्शन के लिए आना शुरू कर दिया। श्यामपुकुर का वह छोटा-सा मकान दर्शनार्थियों के समागम से जनबहुल तीर्थ के रूप में परिणत हो गया। अनेक

जानता हूँ भाई, मेरे गले में गिल्टी हो गयी है। रात्रि के अन्तिम भाग में बडा कष्ट होता है। कैसे ठीक होगा यह ? ..."

लोग मुक्ति की कामना लेकर आते थे। जिस विश्राम की उन्हें सबसे अधिक आवश्यकता थी, वह विश्राम उन्हे दे सकना सम्भव नही हो सका। उनके मुख से ईश्वरीय प्रसंग सुनकर लोग मुग्ध हो जाते। डाक्टर सरकार ने ठाकुर को बातचीत न करने के लिए सख्त ताकीद कर दी। किन्तु वे स्वयं छःसात घंटे तक उनके साथ धर्म-चर्चा करते रहते। तब भी मानो उन्हें तृप्ति नही होती थी। वे कहते थे--"किसी अन्य के साथ बात न करें। केवल मेरे साथ ही बात करे।"

जो लोग ठाकुर के पास आते थे, केवल उन्ही पर वे कृपा करते थे, ऐसा नही। सूक्ष्म देह से दूर दूरान्तर में जाकर उन्होंने अनेक लोगों पर कृपा करनी शुरू कर दी। ठाकुर जब श्यामपुकुर में रह रहे थे उसी समय की बात है, विजयकृष्ण गोस्वामी ने ढाका (पूर्व पाकिस्तान) से आकर बतलाया कि एक दिन वे ढाका-स्थित अपने घर में दरवाजा बन्द कर बैठे ईश्वर-चिन्तन कर रहे थे, उसी समय ठाकुर ने सशरीर वहाँ पहुँचकर उन्हे दर्शन दिया था। कही यह केवल दिमागी फितूर ही तो नही, इस बात का निर्णय करने के लिए विजय गोस्वामी ने अपने हाथ से श्रीराम-कृष्ण के अग-प्रत्यगो को दबा-दबाकर देखा था। विजय के मुख से यह बात सुन ठाकुर मन्द-मन्द हँसने लगे।...

नरेन्द्रनाथ के नेतृत्व में युवक भक्तगण बारी-बारी से ठाकुर की सेवा के लिए श्यामपुकुर वाले घर में रहने लगे। गृही भक्त दिन में आते थे और बडे आनन्द से चिकित्सा और सेवा आदि का व्यय वहन करते थे। अस्वस्थ ठाकुर और भक्त-जननी को केन्द्रित करके श्यामपुकुर में श्रीरामकृष्ण-भक्त-संघ की सूचना हुई।

ठाकुर का मन धीरे-धीरे अनन्त की ओर दौड़ चला।

थोड़ा भी ईश्वरीय प्रसंग चला कि वे गंभीर समाधि में डूब गये। ठाकुर की इस समाधि की अवस्था की एक दिन डाक्टर सरकार और उनके एक डाक्टर साथी ने बड़ी अच्छी तरह जाँच की और सब कुछ देख-सुनकर वे स्तब्ध रह गये। डाक्टर सरकार ने यन्त्र से श्रीरामकृष्ण के हृदय-स्पन्दन की परीक्षा की तो देखा कि उनका हृदय सर्वथा स्पन्दनहीन था। दूसरे डाक्टर ने ठाकुर की खुली आँख में अंगुली डालकर देखने में भी कोई त्रुटि नही की। सब कुछ देखभाल कर उन्हे स्वीकार करना पड़ा कि बाहर से मृतवत् प्रतीत होने वाले ठाकुर की इस समाधि की अवस्था के सम्बन्ध में आधुनिक भौतिक विज्ञान कुछ नही कह सकता।

समाधि की इस अवस्था को तर्कवादी मूर्छा और पाश्चात्य दर्शनानुयायी जड़त्व से अधिक कुछ नही समझ सके। किन्तु समाधि-काल म ठाकुर को जो भी दर्शन या उपलब्धि होती थी सब अक्षरश सत्य होता था। बहुतो ने इसकी परीक्षा की और सत्य घटना से अच्छी तरह मिला लिया। यह समाधि ही मनुष्य को परम ज्ञान और भूमानन्द में प्रतिष्ठित करती है।

* * *

इधर ठाकुर की बीमारी बहुत जोर पकड़ने लगी थी। किसी भी औषधि से कोई फल न होते देखकर डा. सरकार कुछ विचलित से हो गये। उनकी सलाह से ठाकुर को जलवायु परिवर्तन के लिए कलकत्ते से बाहर किसी उन्मुक्त स्थान में ले जाना तय हुआ। सामने था पौष मास। पौष मास में ठाकुर को स्थान-परिवर्तन मे आपत्ति होगी -- यह सोचकर भक्तो ने जल्दी-जल्दी कोई उपयुक्त घर ढूँढ़ना शुरू कर दिया। काशीपुर में

अस्सी रुपये प्रतिमास किराये पर गोपालचन्द्र घोष का उद्यान-गृह ठीक कर लिया गया। अगहन की संक्रान्ति के एक दिन पहले (११ दिसम्बर १८८५ ई. को) एक शुभ दिन के मध्याह्नोत्तर काल में वे काशीपुर पहुँच गये। यहीं पर श्रीरामकृष्णदेव ने मानव-लीला के अन्तिम आठ मास विताये।

प्राकृतिक शोभा से भरपूर इस उन्मुक्त स्थान में आकर श्रीरामकृष्ण बच्चों के समान आनन्द प्रकट करने लगे। कुछ ही दिनों मे श्रीरामकृष्ण के स्वास्थ्य में उन्नति देखकर भक्तों के हृदय आनन्द से मतवाले हो गये। ठाकुर के भावी संन्यासी शिष्यों ने उनकी शय्या के पास समवेत होकर पूर्ण रूप से अपने आपको उनकी सेवा मे लगा दिया। उन लोगों के मन मे उस समय तीव्र वैराग्य था, सभी शाश्वत शान्ति प्राप्त करने के लिए व्याकुल थे।

* * *

२३ दिसम्बर। एकाएक ठाकुर के भाव में परिवर्तन दिखायी पड़ने लगा। कृपा की लूट मची हुई थी। भावस्थ होकर उन्होंने कालीपद के वक्ष का स्पर्श करते हुए कहा --'चैतन्य हो जाओ" --और स्नेह से उनकी ठोड़ी पकड़कर प्यार दिखलाने लगे। बाद मे भावावेश मे उन्होंने कहा था --"जो आन्तरिक भाव से ईश्वर को बुलाता है या सन्ध्या पूजा आदि करता है, उसे यहाँ आना ही पड़ेगा।"

सुबह दो भक्तिनो को ठाकुर की कृपा प्राप्त हुई थी। समाधिस्थ होकर उन्होंने चरण से भक्तिनों को छू दिया था। ...आनन्द से उन दोनों की आँखों से आँसू बह चले। एक ने रोते-रोते कहा --"आपकी इतनी दया !"...उनकी तो

अयाचित कृपा थी। सिंथि के गोपाल पर कृपा करने के लिए उन्होंने कहा — 'जाओ, गोपाल को बुला लाओ।"

* * *

श्रीरामकृष्णदेव की मानसिक अवस्था में बड़ा तीव्र परिवर्तन होने लगा। उनका मन साकार से निराकार की ओर छूट चला। विद्या क "अहं" तक को उन्होंने पोछ डाला। वे कहते थे — ".. हाँ, लोकशिक्षा बन्द हो रही है।. अधिक नही बोल सकता। सब कुछ राममय ही दिखायी दे रहा है . । कभी-कभी मन में होता है — किससे कहूँ ? देख रहा हूँ — साकार से सब कुछ निराकार की ओर चला जा रहा है। बहुत कुछ कहने की इच्छा तो हो रही है किन्तु शक्ति नहीं रही। . अब भी देख रहा हूँ — निराकार अखण्ड सच्चिदानन्द — इसी प्रकार स्थित है। ." — (वचनामृत)।

श्रीरामकृष्णदेव ने अस्वस्थता का अवलम्बन कर अपने भक्तों का एक संघ बनाना शुरू कर दिया। विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों की उपेक्षा कर उनके अन्तरंग पार्षदों ने अपने आप को गुरु की सेवा में लगा दिया। एक दिन भावावस्था में उन्होंने कहा था — "इस रोग की हालत में पता चला कौन अन्तरंग है और कौन बहिरंग। जो लोग घर-बार छोडकर यहाँ आ गये है वे ही अन्तरंग है। और जो कभी कदाचित् आते और हालचाल पूछकर चले जाते है वे ही बहिरंग हैं।"

* * *

१ जनवरी १८८६ ई। शरीर कुछ स्वस्थ प्रतीत हो रहा था, इसलिए ठाकुर आज अपराह्न में कुछ टहलने के इरादे से नीचे उतर आये। बहुत से गृही भक्त भी उनके साथ-साथ

चलने लगे। बगीचे के फाटक की ओर बढ़ रहे थे। सामने गिरीश को देखकर उनका भाव परिवर्तित हो उठा। ठाकुर के चरणों में गिरकर गिरीश ने उनकी स्तुति प्रारम्भ कर दी। सहसा ठाकुर के अंग-प्रत्यंग रोमांचित हो गये। उस दण्डायमान अवस्था में ही वे समाधिस्थ हो गये।

भक्तगण उल्लसित हो रहे थे। कोई आनन्द-ध्वनि कर रहा था, कोई उनके चरणो की रज अपने माथे पर ले रहा था। कोई फूल लाकर उनकी पादपूजा कर रहा था। सभी उन्मत्त हो रहे थे। क्या ही एक स्वर्गीय दृश्य था वह! इसी बीच ठाकुर अर्धचेतन हो प्रसन्न मन से सबकी ओर देखते हुए बोले— "तुमसे मैं अब और क्या कहूँ, तुम सभी को चैतन्य लाभ हो।" इतना कहकर उन्होंने वक्षस्थल छूते हुए प्रत्येक को चेतन किया। उपस्थित भक्तों मे केवल दो को उन्होंने "अभी नही" कहकर स्पर्श नही किया। *

ठाकुर के इस शक्तिपूर्ण स्पर्श ने भक्तों के आध्यात्मिक जीवन मे एक महान् परिवर्तन कर धीरे-धीरे उनको ईश्वरीय आनन्द में दृढता से प्रतिष्ठित कर दिया था।

* * *

सम्भवत: १८८६ ई. की फरवरी की घटना है—ठाकुर के अन्यतम अन्तरंग पार्षद गोपाल (अपने से कई साल बड़े होने के कारण ठाकुर गोपाल को 'बूढ़ा गोपाल' कहकर पुकारते थे) तीर्थ-भ्रमण कर लौटे थे। साधुओं को काषाय वस्त्र आदि दान

---

* इन दोनो को भी बाद में एक दिन ठाकुर ने भावावेश में स्पर्श करके चेतन कर दिया था।

करने की उन्हे इच्छा हुई। उस समय गगा-सागर यात्रा के उपलक्ष्य मे बहुत से साधु कलकत्ते में आये हुए थे। उन साधुओ को वस्त्र आदि दान करने की इच्छा व्यक्त करने पर ठाकुर ने कहा--"यहा जो सब त्यागी भक्त हैं--इनमे बडे साधु और कहाँ तुम्हे मिलेगे। इनमें से प्रत्येक एक-एक हजार साधु के समान है। इनको दान देने से ही तुम्हारा काम चलेगा।" ठाकुर के निर्देशानुसार बूढे गोपाल १२ गेरुआ वस्त्र और समसस्यक रुद्राक्ष माला एव चन्दनादि उनके पास लाये। गेरुआ वस्त्र और मालादि अपने हाथ से उन्होने नरेन्द्र आदि ११ भक्तो को दे दिया† और बचा हुआ गेरुआ वस्त्र बाद में गिरीशचन्द्र को दे दिया गया था।

बिना किसी आडम्बर का यह अनुष्ठान जगत् के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। क्योकि इसी दिन "श्रीरामकृष्ण त्यागी-सघ" की स्थापना हुई। इस अनुष्ठान के भीतर भी 'त्यागी सघ' की अमोघ शक्ति का बीज निहित था। युगावतार ठाकुर ने अपने हाथो से इस सघ का अभिषेक-कार्य सम्पन्न किया और युगधर्म के प्रचार के लिए वे इसे सैकडो वर्षो का स्थायित्व प्रदान कर सुप्रतिष्ठित कर गये।

धीरे-धीरे मार्च मास आ पहुँचा। श्रीरामकृष्णदेव का शरीर पहले से भी क्षीण होने लगा। गले में इतनी अधिक व्यथा थी कि

---

† नरेन्द्र, राखाल, योगीन्द्र, बाबूराम, निरजन, तारक, शरत, शशी, बूढा गोपाल, काली और लाटू--इन व्यक्तियो को ठाकुर ने गेरुआ वस्त्र दिया था। देहत्याग के पूर्व ठाकुर ने अन्य भाव से भी इन ग्यारह शिष्यो को सन्यास दिया था और द्वार द्वार पर मधुकरी भिक्षा करने के लिए भेजा था।

खाना तो दूर रहा, सामान्य जलीय पदार्थ भी वे गले से नीचे नहीं उतार पाते थे। जगन्माता ने उनको दिखा दिया — "इन अगणित मुखों से तुम ही तो खा रहे हो।" — उनका कष्ट देखकर पत्थर भी पिघल रहे थे।

१४ मार्च १८८६ ई। गम्भीर रात्रि का समय। बड़े कष्ट के साथ धीरे-धीरे ठाकुर ने कहा — "मेरे लिए तुम लोग रोओगे, इस कारण इतना कष्ट सह रहा हूँ। सब यदि कहे कि इतना कष्ट — तो शरीर को छूट ही जाने दो।"... भक्तगण मौन हृदय से आँसू बहाने लगे।

रात के साथ-साथ उनका रोग बढ़ता गया। कलकत्ते में डाक्टर को बुलाने के लिए आदमी भेजा गया। धीरे-धीरे कुछ स्वास्थ्य का अनुभव कर ठाकुर ने अस्पष्ट स्वर में कहा — "मैं अनेक ईश्वरीय रूपों को देख रहा हूँ। उन सबमें इस रूप (अपनी मूर्ति) के भी दर्शन कर रहा हूँ।"

अगले दिन सुबह ही ठाकुर भक्तों के साथ सकेत में बहुत धीरे-धीरे कुछ बातचीत कर रहे थे — "अगर शरीर कुछ दिन और रहता तो बहुत से लोगों को चैतन्य लाभ हो जाता।"... कुछ क्षण चुप रहकर उन्होंने फिर कहा — "लेकिन वे रखेंगे नहीं।... नहीं रखेंगे वे। यह सरल मूर्ख शायद सब दे डाले! एक तो कलियुग में ध्यान-जप नहीं है।" राखाल ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा — "आप कहिये जिससे यह देह और कुछ दिन रह जाय।" ठाकुर ने केवल इतना ही कहा — "वह ईश्वरेच्छाधीन है।"

कुछ देर चुप रहकर उन्होंने फिर धीर-गम्भीर स्वर में कहा — "इसके भीतर दो व्यक्ति हैं। एक तो वे।... और एक भक्त रूप में है। उसी का हाथ टूट गया है और वही बीमार भी है।

समझ रहे हो न ? . . . किससे कहूँ, और कौन समझेगा ! वह मानव रूप धारण कर भक्तों के संग में आते हैं। भक्त लोग भी बाद में उन्हीं के साथ चले जाते हैं। . . ." उनकी देववाणी सुनकर सभी स्तम्भित और विस्मित हो गये।

अनन्तर श्रीरामकृष्ण ने मृदु स्वर में नरेन्द्र से कहा — "त्याग की आवश्यकता है।" पुन कहा — 'देख रहा हूँ इसके भीतर से ही सब कुछ है।"

इस समय एक दिन ठाकुर को अलौकिक दर्शन हुआ। उन्होंने देखा, उनका सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से बाहर निकल कर घूम रहा है। बाद में उन्होंने कहा — "मैंने देखा उसके पूरे पृष्ठ भाग में घाव हो गया है। सोचा कि ऐसा कैसे हो गया ? और माँ ने मुझे दिखा दिया कि, जैसे-तैसे काम करके लोग आकर छू देते थे और उनकी दुर्दशा देखकर मन मे दया का भाव आता था, उन्हीं के दुष्कर्मों के फल स्वीकार करने के प्रभाव से वह दशा हो गयी। उसी से तो (अपना गला दिखाकर) यह हुआ है। अन्यथा इस शरीर ने तो कोई अन्याय नहीं किया, फिर इतना रोग-भोग क्यों ?" जीवों के पाप-भार लेने से ही उनके शरीर में यह भयकर रोग हुआ था। उनके मुख से इस दर्शन की कथा सुनकर अनेकों को हृदय मे मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव हुआ।

* * *

एक ओर तो बारम्बार भाव-समाधि, गभीर तात्त्विक कथाएँ, असह्य कष्ट, किन्तु इसके साथ-साथ रग-रसिकता में भी कोई कमी नहीं थी। "स ईश अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप" — आनन्द ही उनका स्वरूप है, यही उनका रूप है। इसलिए तो ठाकुर सदानन्दमय हैं।

काशीपुर के बगीचे में एक दिन श्रीश्रीमाताजी अढ़ाई सेर दूध का भरा बर्तन लिये सीढ़ियों पर चढ़ रही थी कि सिर में चक्कर आने से गिर पड़ी। पैर की एड़ी की हड्डी सरक गयी। जल्दी से उन्हें उठाकर लाया गया। दारुण यंत्रणा थी। ठाकुर ने सुनकर-बालक भक्त बाबूराम से कहा—"बाबूराम, अब क्या होगा? खाने का क्या उपाय किया जायेगा? कौन मुझे खिलायेगा?" उस समय वे मण्ड खाया करते थे। श्रीमाँ ही मण्ड तैयार करके उन्हें खिलाती थी। श्रीमाँ की नाक में एक बड़ी-सी नथ थी। इस कारण नाक दिखाकर हाथ के इशारे से उन्होंने बाबूराम से कहा—"अरे बाबूराम, उन्हें टोकरी में डालकर सिर पर उठा ले आ सकेगा?" उनकी मजाक-भरी बात सुनकर बालक-भक्त लोग तो हँसते-हँसते लोटपोट हो गये।

१७

अन्तरग त्यागी पार्षदो को लेकर श्रीरामकृष्णदेव ने काशीपुर के उद्यान में भावी 'धर्मसघ' की स्थापना की। उसकी दीक्षा का प्रथम मन्त्र था — कामिनी-काचन त्याग। सब प्रकार की कामनाओ का, यहाँ तक कि मुक्ति की भी इच्छा का भी त्याग। ठाकुर उन त्यागी पार्षदो को नाना भावो से दीक्षा देते थे, विविध साधन उनसे करवाते थे और उन्हे सभी तत्त्व सिखलाते थे।

उन्होंने कहा था — "नरेन्द्र लोकशिक्षा देगा।" केवल नरेन्द्र ही क्यो ? नरेन्द्र के नेतृत्व में प्रत्येक जीवन को ही जीव-कल्याण-साधन के लिए उन्होंने आदर्श आचार्य रूप से तैयार कर लिया। भावी आचार्य शिष्यो के जीवन को वे विविध सात्त्विक ऐश्वर्य से मण्डित कर रहे थे। एकान्त स्थल में ही यह शिक्षा दी जाती थी — साधारण भक्तसभाओ में नही। ठाकुर ने त्यागियो को जो गुह्य शिक्षा और साधनोपदेश दिया था, वह 'वचनामृत' में प्रकाशित नही हुआ है। उनके जो उपदेश या वाणी 'वचनामृत' में प्रकाशित हुए हैं, वे तो सर्वसाधारण के लिए — समस्त जगत् के नरनारियो के लिए हैं। किन्तु त्यागियो को उन्होंने जिस गुह्य साधन तथा तत्त्व की शिक्षा दी थी एव उनके भीतर जिस प्रकार शक्ति-सचार किया था वह सभी तो "अलिखित वेद" है। केवल पार्षदो के 'जीवन' के अध्ययन से ही वह सब जाना जा सकता है।

सभी पार्षद स्वयं ही तृप्त और परिपूर्णता के उज्ज्वल प्रतीक थे। भाव, समाधि, देवदेवीदर्शन, ज्योतिदर्शन, शान्ति आदि में से जो जिस वस्तु के लिए प्रार्थना करता था ठाकुर उसे वही प्रदान करते थे। किन्तु एकमात्र नरेन्द्र को तृप्ति नहीं हो रही थी। वह चिरशान्तिमय, परमानन्दमय, निर्विकल्प समाधि में मग्न होकर रहना चाहते थे। उन्होंने कहा—"मैं शान्ति चाहता हूँ। इसके अतिरिक्त मुझे ईश्वर तक की चाहना नहीं है।" ठाकुर जानते थे कि नरेन्द्र का मन स्वरूप में लीन होकर आनन्द धाम में लौट जाने के लिए व्याकुल हो रहा है। परन्तु ऐसा तो वे नहीं होने देना चाहते थे। नरेन्द्र के द्वारा ही तो उन्हें युगधर्म का प्रचार करना था।

एक दिन चंचल मन से नरेन्द्र ठाकुर के कमरे में बैठे थे। "तू क्या चाहता है, बता तो?" ठाकुर ने स्मित मुख से जिज्ञासा की। छलकती आँखों से नरेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया—"मेरी इच्छा है, शुकदेव के समान एकदम समाधि में डूब जाने की। केवल देहरक्षा के लिए कुछ नीचे उतरकर फिर समाधि में लीन हो जाऊँ।" यह सुनकर ठाकुर गम्भीर हो गये। उन्होंने धिक्कार के स्वर में कहा—'छि छि! तू इतना बड़ा आधार—तेरे ही मुँह से इस प्रकार की बात! मैं तो सोच रहा था, कहीं तू एक विशाल वटवृक्ष के समान होगा और हजारों लोग तेरी छाया में आकर आश्रय प्राप्त करेंगे, ऐसा न होकर तुझे केवल अपनी मुक्ति की फिक्र पड़ी है?" सुनकर नीचे मुँह करके नरेन्द्र अश्रुविसर्जन करने लगे। सोचा—कितना विशाल है उनका हृदय!

इसके कुछ दिन बाद नरेन्द्र सन्ध्या समय ध्यानस्थ बैठे थे।

धीरे-धीरे उनका मन निर्विकल्प समाधि में लीन हो गया। शरीर स्थावर के समान स्थिर—बाहर से मृतवत्—हो गया। गोपाल दादा ने यह अवस्था देखी तो शंकित होकर भागे ठाकुर के पास और उनसे कहा—'नरेन्द्र मर गया है।" वे तो सब कुछ जानते थे, शान्त स्वर में उन्होंने कहा—अच्छा हुआ। रहने दो कुछ देर तक इसी अवस्था में इसी के लिए बहुत परेशान कर रहा था।'

काफी रात बीतने के बाद नरेन्द्र का बाह्य ज्ञान धीरे-धीरे लौट आया। किन्तु उस समय भी मन शरीर में नहीं था। वे चिल्ला उठे "मेरा शरीर कहाँ है ?" पास बैठे भक्तों ने उनके शरीर को थपथपाते हुए कहा—"यही तो है आपका शरीर।" सहजावस्था में पहुँचकर नरेन्द्रनाथ ठाकुर के समीप गये। समाधि की शान्ति में उनका मन नहाया हुआ था। उन्हें देखते ही ठाकुर ने कहा—"क्यों रे, इस बार तो माँ ने तुझे सब कुछ दिखा दिया। जो कुछ देखा है वह सब अब बन्द रहेगा। चाबी मेरे हाथ में रहेगी। अब तुझे माँ का कार्य पूर्ण करना है। माँ का कार्य पूर्ण होने पर फिर यह अवस्था लौट आयेगी।" नरेन्द्रनाथ का मन उस समय अक्षय शान्तिमय था। वे चुपचाप नीचे मुँह किये खड़े रहे।

* * *

क्रमशः श्रीरामकृष्ण महाप्रयाण के लिए प्रस्तुत हुए। अपने युगधर्म के प्रचार के लिए उन्होंने त्यागी अन्तरंगों के जीवन को उसी भाव से तैयार कर लिया। वे जानते थे कि नरेन्द्रनाथ ही उनका योग्य उत्तराधिकारी है और इसी विशेष कार्य के लिए उसका आगमन हुआ है। एक दिन उन्होंने नरेन्द्र को बुलाकर

कहा — "इन सब बच्चों को तेरे हाथों में सौंप रहा हूँ। तू ही इनकी देखभाल करना।" इसके बाद संघजीवन-यापन के सम्बन्ध में उन्होंने नरेन्द्र को अनेक उपदेश दिये।

महाप्रयाण के कुछ दिन पूर्व से ही ठाकुर प्रति दिन सुबह और शाम नरेन्द्र को अपने पास बुलाकर दरवाजा बन्द करके बहुत देर तक गुह्य उपदेश देते थे। लीला संवरण के आठ-नौ दिन पूर्व एक दिन उन्होंने योगीन को पंचाग लाने का संकेत किया, एवं सौर २५ श्रावण से आगे प्रतिदिन की तिथि, नक्षत्र आदि पढ़ जाने के लिए कहा। योगीन पढ़ता चला गया और ठाकुर आँख मूँदे सब सुनते रहे। जब योगीन ने श्रावण की सक्रांति तक पढ़ दिया तब उन्होंने इशारे से पंचांग बन्द कर देने के लिए कहा। उस समय कोई भी यह नही समझ सका था कि ठाकुर देहत्याग के लिए दिन स्थिर कर रहे थे।

देहत्याग के तीन-चार दिन पहले ठाकुर ने नरेन्द्र को अपनी शय्या के पास बुलवाया। घर निस्तब्धता के कारण भारी-भारी सा लग रहा था। घर में उस समय और कोई नही था। नरेन्द्र को सामने बैठने का संकेत कर ठाकुर स्नेहपूर्वक अपलक दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए धीरे-धीरे गभीर समाधि में लीन हो गये। उस समय नरेन्द्रनाथ ने अनुभव किया कि ठाकुर के शरीर से एक सूक्ष्म तेजोरश्मि निकलकर उनके भीतर प्रविष्ट हो रही है। धीरे-धीरे उनकी भी बाह्यचेतना लुप्त हो गयी और वे भी समाधिस्थ हो गये। बहुत देर बाद सहजावस्था में लौटकर उन्होंने देखा कि ठाकुर चुपचाप अश्रु विसर्जन कर रहे हैं। कारण पूछने पर ठाकुर ने कहा — "आज तुझे सर्वस्व देकर मैं फकीर हो गया। इसी शक्ति के बल से तू जगत् का बहुत कल्याण

करेगा। कार्य पूर्ण होने पर लौट आयेगा।"... इसी क्षण से श्रीरामकृष्ण की शक्ति नरेन्द्र मे प्रविष्ट हो गयी। मानो ठाकुर और नरेन्द्र एक ही स्वरूप हो गये।

देहत्याग में केवल दो दिन बाकी रह गये थे। ठाकुर असह्य रोगयन्त्रणा से कातर हो रहे थे। नरेन्द्र उनकी शय्या के पास अधोवदन होकर बैठे थे। इसी समय सहसा उनके मन में आया कि इस असह्य शारीरिक कष्ट के समय में भी यदि वे "मैं भगवान हूँ" कह सकें तभी मे विश्वास करूँगा। किन्तु आश्चर्य! नरेन्द्र के मन मे इस प्रकार का विचार उठने के साथ ही साथ ठाकुर ने उनकी ओर मुंह घुमाकर स्वस्थ कण्ठ से कहा —"जो राम, जो कृष्ण, वही इस समय (इस शरीर मे) रामकृष्ण रूप में है। तेरे वेदान्त की दृष्टि से नही।" नरेन्द्र अपराधी के समान मुंह नीचे किये बैठे रहे। हृदय को भयकर आँसुओं की धारा उनकी आंखो से बह निकली।

सौर ३१ श्रावण बगाब्द १२९३, रविवार* यही श्रीरामकृष्ण की नरलीला का अन्तिम दिन था। ज्योत्स्ना प्लावित वायु, विच्छेद की करुणा ध्वनि से मानो व्यथित हो रही थी। भक्त

---

* पचाग के अनुसार इस दिन १८८६ ई का १५ अगस्त था। श्रीरामकृष्णदेव ३१ श्रावण को रात्रि में १ बजे के बाद गम्भीर समाधि में मग्न हो गये। कुछ लोगो ने उसी को देहत्याग समझा। पाश्चात्य ज्योतिष-गणना के अनुसार वह समय १६ अगस्त सोमवार था। पूर्व प्रकाशित किसी किसी ग्रन्थ में ठाकुर के देहत्याग का समय १६ अगस्त, रविवार लिखा हुआ है। पाश्चात्य ज्योतिषगणना के अनुसार १६ अगस्त, को उनके देहत्याग की तारीख मानने पर सोमवार मानना ही समाचीन प्रतीत होता है।

के भाराक्रांत प्राणों में श्रीरामकृष्ण आज नवीन रूप में आये।... असहनीय यातना से वे छटपटा रहे थे। नाड़ी असम्बद्ध और क्षीण चल रही थी। इस समय भी भक्तों के साथ कितनी ही गभीर तत्त्व-चर्चा चल रही थी। किसी के मुंह पर स्नेह से हाथ फेरते हुए वे प्यार प्रदर्शन करने लगे।... सन्ध्या के पूर्व से ही उन्हें अतिशय श्वासकष्ट हो रहा था। भक्तगण अश्रुविसर्जन कर रहे थे। सभी ठाकुर की शय्या के चारो ओर चुपचाप खड़े थे।

सन्ध्या के बाद उन्हें कुछ भूख की प्रतीति हुई। सेवकों ने सामान्य पथ्य खिलाने की चेष्टा की। किन्तु गले से नीचे कुछ भी उतर नही सका। इसके बाद वे गभीर-समाधि में मग्न हो गये। शरीर स्पन्दन-शून्य और स्थिर हो गया।

मध्य रात्रि में उनकी सहजावस्था लौट आयी। उस समय फिर उन्होंने कुछ खाने की इच्छा प्रकट की। बहुत से तकियों के सहारे उन्हें बैठा दिया गया। उन्होंने मामूली सी पतली सूजी बिना किसी तकलीफ के खायी और कहा कि इस समय खूब

ठाकुर के देहत्याग के प्रसग में स्वामी रामकृष्णानन्द ने एक स्थान पर कहा है (भगिनी देवमाता कृत Ramkrishna and His Disciples पृष्ठ १६१-६२) :—"हम लोगों ने दूसरे दिन (अर्थात् सोमवार को) एक-दो बजे तक उनके समाधि से उठने की आशा की थी। उस समय भी ठाकुर के शरीर में, विशेषतः पृष्ठभाग में थोड़ा उत्ताप था...।" "श्रीरामकृष्ण पोथी" में पाया जाता है (६२२ पृष्ठ)—डाक्टर सरकार १६ अगस्त सोमवार को दिन के लगभग १ बजे आये और श्रीरामकृष्ण की अच्छी तरह परीक्षा कर उन्होंने दुःख प्रकट करते हुए कहा कि मुश्किल से आधा घण्टा पूर्व उनका देहत्याग हुआ है।

स्वच्छदता का अनुभव कर रहा हूँ। नरेन्द्रनाथ ने उनको थोडा सो जाने के लिए अनुरोध किया। इस समय ठाकुर ने अत्यन्त स्वाभाविक कण्ठ से उच्च स्वर में तीन बार "काली" नाम का उच्चारण किया और दूसरे ही क्षण लेट गये।

रात निस्तब्ध थी—कवल झींगुर की आवाज कहीं से सुनायी पड रही थी। रात्रि में एक बजकर दो मिनट (किसी-किसी के मत से एक बजकर छ. मिनट) पर सहसा उनके सर्वांग में बारम्बार पुलक और रोमाच होने लगा। उनकी दृष्टि नासाग्र पर जमी हुई थी। सम्पूर्ण मुखमण्डल दिव्यानन्द से दीप्त हो रहा था। वे समाधिस्थ हो गये। यही समाधि महासमाधि में परिणत हो गयी। श्रीरामकृष्णदेव स्वरूप में लीन हो गये। अश और पूर्ण दोनो मिलकर एक हो गये।

श्रीमाँ रो उठी—"माँ काली! मुझे छोडकर कहाँ चली गयी?"

— —

माँ सारदा

श्रीमाँ

१

श्रीरामकृष्ण नरदेह का त्याग कर चुके हैं। किन्तु उनकी भावराशि दिग् दिगन्त उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, देश-देशान्तर, दूर-दूरान्तर, सर्वत्र पक्ष विस्तार करती हुई फैल रही है। वह भावराशि विश्वमानव की शिरा-उपशिराओं में—नाना छन्दों में अनेक प्रकार से विचित्र प्राणशक्ति का संचार करती हुई एवं अभिनव चेतना उद्‌बुद्ध करती चल रही है।

श्रीरामकृष्ण की लीलासंगिनी श्रीसारदा देवी, जिन्हें उन्होंने अर्द्धांगिनी रूप में ग्रहण किया था, अभी नरदेह में ही थी। सहधर्मिणी के सम्बन्ध में ठाकुर कहा करते थे—"वह सारदा, सरस्वती है।...ज्ञान देने के लिए आयी है।"

ठाकुर के देहत्याग के बाद श्रीसारदा देवी ने भी देह छोड़ देने का निश्चय कर लिया था, किन्तु ठाकुर ने ऐसा होने नही दिया। उन्होंने कहा—"अभी तुम नही जा सकती। बहुत कार्य बाकी है।" युगावतार ने मानव-देह का त्याग कर दिया। किन्तु वे अपनी 'शक्ति' को युगधर्म के प्रचार के लिए छोड़ गये। सारदा देवी को नरदेह में रहना पडा।

यहाँ हम श्रीसारदा देवी के जीवन का संक्षेप में ही दिग्दर्शन करायेंगे। श्रीरामकृष्ण भक्त-संघ में वे "श्रीमां" के नाम से और इसी रूप में परिचित थी।

* * *

बाकुड़ा जिले के जयरामबाटी ग्राम में ८ पौष (कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि) बगाब्द १२६० (२२ दिसम्बर, १८५३ ई) बृहस्पतिवार को रामचन्द्र मुखोपाध्याय और श्यामासुन्दरी देवी के प्रथम सन्तान रूप में श्रीसारदा देवी ने जन्म-ग्रहण किया।* जयरामबाटी ग्राम तो छोटा ही था लेकिन उसमें ब्राह्मणों के घर ज्यादा थे। उसके उत्तर-पूर्व दिशा में सीमा-निर्देश करता हुआ स्वल्प-परिसर आमोदर नद लता के समान टेढ़ा-मेढ़ा होता हुआ बहता था जिससे वह गाँव खूब उर्वर और समृद्ध था।

अपने जन्म के सम्बन्ध में श्रीसारदा देवी ने बताया था—" .मेरा जन्म भी इसी (ठाकुर के ही) समान हुआ था। माँ शिहड़ में देव-दर्शन के लिए गयी थी। लौटते समय जयरामबाटी की पश्चिम सीमा के पास आने पर सहसा उन्हें शौच जाने की इच्छा होने से देवालय के समीप एक पेड़ के नीचे चली गयी। शौच-वौच कुछ हुआ नहीं। किन्तु उन्हें बोध हुआ कि एक प्रकार की वायु उनके उदर में प्रविष्ट हो गयी है, जिससे उन्हें अपना उदर बहुत भारी प्रतीत होने लगा। वह बैठी ही रही। उस समय माँ ने देखा कि लाल रंग के रेशमी वस्त्र पहने हुए एवं पाँच-छ साल की सुन्दरी लड़की पेड़ से उतरकर नीचे आयी और पास आकर पीछे से अपने दोनों कोमल हाथ उनके गले में डालकर बोली—"माँ, मैं तुम्हारे घर आऊँगी।"

---

*रामचन्द्र मुखोपाध्याय की दो कन्याएँ और पाँच पुत्र थे—सारदा, कादम्बिनी, प्रसन्नकुमार, उमेशचन्द्र, कालीकुमार, वरदाप्रसन्न और अभयचरण।

"उस समय माँ बेहोश हो गयी। सब लोग जाकर उन्हें उठा ले आये। वह लड़की ही माँ के उदर में प्रविष्ट हुई थी, उसी से मेरा जन्म हुआ। घर लौटकर माँ ने इस घटना का वर्णन किया था।"

रामभक्त रामचन्द्र मुखोपाध्याय ने कलकत्ते से लौटकर पत्नी के मुख से सब कुछ सुना और समझ गये कि स्वयं भगवती उनके घर में आ रही है। पति और पत्नी दोनों ही भक्तिपूत चित्त और संयत मन से देवी के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

गरीब के घर मे जन्म होने से सारदा देवी का बाल्यकाल कठोर गरीबी मे बीता था। उनके चरित्र का सेवाभाव प्रारम्भिक जीवन मे ही प्रकट हो गया था। अति शैशव मे ही वह गर्भधारिणी माँ के नाना कार्यों मे अनेक तरह से सहायता पहुँचाने लग गयी थी। छोटे भाइयो की देखभाल करना उनका अन्यतम प्रधान कार्य था। उन्होने बताया था—"मै भाइयों को लेकर गंगा नहाने जाती थी। आमोदर नद ही हमारी गगा थी। गंगा-स्नान करके वही पर फरुही खाने के बाद ही मै उन सबको लेकर घर लौटती थी। हमेशा ही मुझे गगा नहाने की आदत थी।"

कुछ बड़ी होने पर सारदा देवी ने पिता के भी कामकाज में हाथ बँटाना शुरू कर दिया। खेत में मजदूरों को खाना दे आना, गायों के लिए गले तक जल में उतरकर घास काटना आदि कितने ही काम वे करती थी।* किन्तु रामचन्द्र कन्या को देवी

---

* बाद में श्रीसारदा देवी ने बताया था कि घास काटते समय उनकी ही तरह की एक दूसरी लड़की भी जल में उतरकर घास काटा करती थी। दूसरों से इस विषय का वर्णन करते हुए उन्होने कहा था—"बचपन में

जानकर उसके प्रति श्रद्धा और सम्मान की ही भावना रखते थे। सारदा उन्हे प्राणो से भी ज्यादा प्यारी लगती थी।

इस गरीब ब्राह्मण-दम्पति के बडप्पन के सम्बन्ध में सारदा देवी ने ही एक बार बताया था — "मेरे माँ-बाप बडे अच्छे थे। पिता को राम के प्रति बडी भक्ति थी। साथ ही परोपकारी एव नैष्ठिक भी कम नही थे। माँ भी बडी दयालु थी। लोगों को खिलाती-पिलाती तथा आवभगत करती थी। बहुत ही सीधी थी। इसीलिए तो मैं इस घर में जन्मी हूँ।"

सारदा देवी के बचपन की किसी विशेष घटना का कोई विवरण इस समय उपलब्ध नही है। गाँव की अन्यान्य बालिकाओं के समान माता-पिता की स्नेहपूरित गोदी में उनका लालन-पालन हुआ था। माता-पिता प्यार से उसे 'सारु' कहकर पुकारते थे। बाल्यकाल मे सारदा देवी को लिखने-पढने का कोई सुयोग नही मिला, किन्तु बाद मे अपनी चेष्टा से वे कुछ पढ-लिख गयी थी। बचपन से ही वह खूब शान्त और सीधी-सादी थी, मानो सरलता की मूर्त रूप होकर आयी हो। खेल के साथियो के साथ कभी उनका झगडा नही होता था। अगर कभी किसी से झगडा हो भी जाता तो झटपट वे उससे मेल कर लेती। देव-देवियो की मूर्ति बनाकर फूल और बिल्वपत्र से उनकी पूजा करना उन्हे बहुत अच्छा लगता था।

मुझे दिखायी पड़ता कि मेरे ही समान एक लड़की सदा साथ-साथ रहकर मेरे हरेक काम में सहायता करती, साथ ही मेरे साथ खेल-कूद करती थी। किसी और के आने पर वह लड़की मुझे दिखायी न पड़ती। दस-ग्यारह साल की अवस्था तक यही हाल रहा।"

छठे साल में पदार्पण करते ही उनका श्रीरामकृष्ण के साथ विवाह हो गया। इस विवाह का भी एक इतिहास है जिसका मर्म बहुत ही गुरुत्वपूर्ण है। सुना गया है कि हृदय के गांव शिहड़ में गीत और "कथकता" (पुराण-प्रवचन) का आयोजन हुआ था। इस उपलक्ष्य में श्रीरामकृष्णदेव भी शिहड़ गये थे। आसपास के गाँव से बहुत से स्त्री-पुरुष गान सुनने के लिए शिहड़ आये थे। श्यामसुन्दरी भी सारदा को साथ लेकर आयी थीं। शिहड़ में ही उनका मायका था। गीत आदि के बाद सभा विसर्जित होने पर एक पड़ोसिन ने सारदा को गोदी में लेकर मजाक के स्वर में पूछा — "इनमें से तू किसके साथ विवाह करेगी ?" उस समय बालिका सारदा ने ठहाका मारकर दोनों हाथों से पास में बैठे ठाकुर की ओर इशारा कर दिया। इतनी-सी बालिका द्वारा भावी पति को दिखा देना और दूसरी ओर श्रीरामकृष्ण द्वारा भी भावी पत्नी के सम्बन्ध में 'पहले से निर्धारित' कहना — ये दोनों घटनाएँ परस्पर परिपोषक और अतीव विस्मयकारी हैं।

सारदा देवी का पितृ-गृह का जीवन जागतिक दृष्टि से बहुत ही कष्टपूर्ण रहा है। बालिका होने पर भी बहुत से काम उन्हें स्वयं करने पड़ते थे। इतनी कम अवस्था में उन्हें चूल्हा-चौका करना पड़ता था कि भात की हांड़ी भी उनसे नहीं उतर पाती थी, तब उनके पिता उस हांड़ी को चूल्हे पर से उतार देते थे। लेकिन ये सब काम करने में भी उन्हें आनन्द ही आता था।

जयरामवाटी गाँव और उसके आसपास एक बार बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। इस समय धर्मप्राण रामचन्द्र के परम उदार हृदय का परिचय पाया गया था। श्रीसारदा देवी ने बाद में एक बार

भक्तों से चर्चा की थी—एक बार (१२७१ बंगाब्द में) उस प्रदेश में भयानक अकाल पड़ा। कितने ही लोग अन्न न मिलने के कारण हमारे घर आते थे। हम लोगों ने पहले साल का कुछ धान खेतों में सुरक्षित रखा था। पिताजी उसी धान का चावल बनाकर उसमें उड़द की दाल डाल हांडियों में खिचड़ी पकाकर रखते थे। कहते थे—'घर के सब लोग यही खायेंगे, और जो भी यहाँ आयें उन्हें भी खिलाना। हमारी सारदा के लिए अच्छे चावल का थोड़ा भात बनाना। वह यही खायगी।' कुछ दिन तो ऐसे ही चलता रहा मगर फिर इतने ज्यादा लोग आने लगे कि खिचड़ी पूरी ही न पड़ती। तब और खिचड़ी बनाने के लिए चूल्हे पर फिर चढ़ा दी जाती थी। और वही गर्म गर्म खिचड़ी डालकर, उसे ठंडा करने के लिए मैं पत्ता लेकर हवा करती। आह! भूख की ज्वाला से तड़पते हुए लोग खाने के लिए बैठे जो थे।..

सारदा देवी के बचपन की ओट में जो दया, विगलित करुणा और परदु:खकातरता मुकुलित पायी जाती थी, वही बाद में चलकर उनके मातृत्व के भीतर से पूर्ण विकसित हुई और उनके दिव्य सौरभ से सहस्रों प्राणों को शान्ति मिली। निकट भविष्य में भी अगणित प्राणों को उससे दिव्य प्रेरणा मिलेगी।

* * *

सन् १८६७ ई. में ठाकुर प्राय सात वर्ष के बाद कामारपुकुर आये। जयरामबाटी से सारदा भी कामारपुकुर लायी गयी।*

---

*इससे पूर्व १२७३ साल में भी श्रीसारदा देवी दो बार कामारपुकुर आयी थी। उस समय वह नयी बहू थीं, उनके लिए नया वातावरण

उस समय उनकी अवस्था चौदह वर्ष की थी। इस समय चार-पाँच माह तक ठाकुर के समीप रहकर उन्होंने ठाकुर से बहुत सी लौकिक और आध्यात्मिक बातों की शिक्षा प्राप्त की थी।

बहुत रात ठाकुर भावावेश में गाँव के स्त्री-पुरुषों के पास बैठे ईश्वर-चर्चा करते रहते जिसे सुनते-सुनते सारदा देवी बेसुध होकर सो जाती। यह देखकर दूसरी लड़कियाँ उन्हें जगाते हुए कहती—'इतनी सुन्दर-सुन्दर कथाएँ नहीं सुनी—सो गयी?' ठाकुर जगाने की मनाही करते हुए कहते—'नहीं, उसे जगाओ मत। वह क्या अपनी इच्छा से सोयी है? ये सब कथाएँ सुनने से वह यहाँ रहेगी नहीं, एकदम चली जायगी।"—अपना स्वरूप-वर्णन सुनकर श्रीसारदा देवी एकदम स्वरूप में ही लीन हो जायगी।

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में लौट आये। सारदा देवी भी जयरामबाटी चली गयी। उसके बाद के लम्बे चार वर्ष—

था, नयी ही जगह थी। हालदार के तालाब में अकेले स्नान करने के लिए जाने में उन्हें डर लगता था। पर कोई चारा नहीं था। डरते-डरते घर से निकलकर देखती—उन्हीं की अवस्था की आठ लड़कियाँ मार्ग में खड़ी थी। वे भी नहाने जा रही थीं। सभी एक साथ बातचीत करते-करते चलने लगी। चार लड़कियाँ उनके आगे थी और चार पीछे। स्नान करके सारदा देवी के घर के पास पहुँचने तक सभी उनके साथ रहती। प्रतिदिन ही वे आठ लड़कियाँ स्नान के समय उन्हें प्रतीक्षा करती हुई मिलती।... बाद में सारदा देवी को पता लगा कि वे इस गाँव की लड़कियाँ नहीं थीं। . वे तो देवी की आठ सखियाँ—अष्ट नायिकाएँ थी जो सदा ही अदृश्य रूप से देवी को घेरे रहती थीं।

दीर्घ विस्मृति के अवगुण्ठन में विलुप्त है। पति ने उनकी कोई खबर नही ली, आते नही थे, उन्हे बुलाते भी नही थे। तो क्या वे भूल गये ? उनकी चरणों की छाया मे ही तो मेरी एकमात्र विश्रान्ति है, वे सोचती थी। श्रीसारदा देवी के विरह-क्लान्त प्राणो में यही क्रन्दन-ध्वनि होती रहती थी। क्रमश गाँव में श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में बडी अफवाहे उडने लगी — वे एकदम नग्न हो कन्धे पर लम्बी लाठी लिये घूमते रहते हैं, भिखमगों का जूठा खाते हैं — मेहतरो के समान पाखाना साफ करते हैं — आदि और भी कितनी ही बाते। सारदा देवी के अन्तर की अव्यक्त वेदना को कौन जानता ? आकाश की ओर देखती हुई वह गर्म साँसे लेती रहती।

— यदि लोगो का कहना कही सच हो ? तब तो मेरा इतनी दूर रहना ठीक नही है। — सारदा देवी ने सोचा। स्नान-योग के उपलक्ष्य मे कुछ पडोसिनें गगा-स्नान के लिए कलकत्ते जा रही थी। उसे सुनकर उनके साथ उन्होंने दक्षिणेश्वर जाने का निश्चय कर लिया। सारदा के मन के भाव को समझ स्वय पिता ही उनको दक्षिणेश्वर ले चले।

रात में लगभग नौ बजे दक्षिणेश्वर पहुँचकर श्रीसारदा सीधे ठाकुर के कमरे में चली गयी। घूँघट वाली पत्नी को देखकर ठाकुर ने कहा — ' तुम आ गयी ? अच्छा किया। चटाई बिछा लो। " . इन दो वाक्यो से ही श्रीसारदा देवी का मन आनन्द से भर गया। आनन्द के आवेग से आँखें धुंधली हो गयी।

यह जानकर कि पत्नी ज्वर लेकर आयी है ठाकुर बहुत घबराये। उन्होंने पत्नी को अपने ही कमरे में रखा और अजस्र प्रेमधाराओ से उन्हे सिक्त कर दिया। ठाकुर की सेवा और

चिकित्सा आदि से श्रीसारदा देवी तीन-चार दिन में ही ठीक हो गयीं। आह! कितना स्नेह और कितनी ममता है उनके हृदय में! कितना आकर्षण और कितनी गभीर आन्तरिकता! एकबारगी ही सारदा देवी के प्राण पिघल-से गये, अपने आप पर बहुत क्रोध आने लगा कि इतने दिनों तक क्यों नहीं आयी। वह समझ गयी कि गाँव में जो अफवाहें सुनने में आयी थीं वे सब एकदम मिथ्या हैं। आह! वह तो इतने प्रेममय हैं मानो प्रेमरूप स्वयं भगवान् ही हों—श्रीसारदा देवी सोच रही थीं। ठाकुर भी ममता-पाश से सारदा देवी को दिन पर दिन और समीप खींचने लगे। और उन्होंने अपने आपको सर्वतोभावेन सारदा देवी के हाथों में सौंप दिया।

श्रीसारदा देवी के लगभग दो मास तक दक्षिणेश्वर में रहने पर ही ठाकुर ने उनकी षोडशी रूप से पूजा की थी।* श्रीरामकृष्णदेव की सत्य दृष्टि के सामने मानो सारदा देवी का वास्तविक स्वरूप

---

* षोडशी पूजा के सम्बन्ध में "श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग" में लिखा है कि १२८० साल के ज्येष्ठ मास में ठाकुर ने षोडशी पूजा की थी। अर्थात् श्रीमाँ के दक्षिणेश्वर में आने के चौदह-पन्द्रह मास बाद। "श्री श्री मायेर कथा" द्वितीय भाग के पृष्ठ १२८ में लिखा है... "दक्षिणेश्वर में डेढ़ मास रहने के बाद ही षोडशी पूजा की थी।...इसके बाद लगभग एक साल मैं दक्षिणेश्वर में रही।...अन्त में बीमार पड़कर अपने गाँव चली गई इत्यादि।" ठाकुर और श्रीमाँ के जीवन की अनेक घटनाओं के पौर्वापर्य और सामंजस्य को अगर गौर से देखा जाय तो श्रीमाँ द्वारा कही गयी घटनाएँ ही अधिक समीचीन प्रतीत होती हैं। और षोडशीरूप में पूजा करने के बाद ही ठाकुर ने आठ मास तक पत्नी के

प्रकट हो गया था। पूजाकाल में देवी के आसन पर बैठते ही श्रीसारदा देवी भावस्थ हो गयी थी। ठाकुर ने उनके पैरो मे अलता और माथे मे सिन्दूर लगाया। उन्हे वस्त्र आदि पहनाकर मिष्टान्न और ताम्बूल खिलाया। श्रीसारदा देवी ने बाद मे ठाकुर की भतीजी लक्ष्मीमणि के पास इस पूजा के बारे में चर्चा की थी। तब लक्ष्मीमणि ने हँसते हँसते पूछा था—"आप तो बडी शरमाती थी फिर कपडे कैसे पहनाये?" उन्होंने उत्तर दिया—"मै तो मानो आविष्ट सी होकर बैठी थी। ." बाद में सारदा देवी और ठाकुर दोनो ही गभीर समाधि में मग्न हो गये थे। पुजारी और देवी दोनो आत्म-रूप में एक हो गये थे। उनके दाम्पत्य जीवन का यही परिपूर्ण रूप है—यही सम्पूर्ण परिचय है। तभी तो लीलामयी की नारी-रूप में लीला इतनी माधुर्यमय है। कितना आनन्द है स्वामी की सेवा और उनके साहचर्य में! सेवा-रूप से, क्षमा, लज्जा, तुष्टि और शान्ति-रूप से वह सदा त्याग-मूर्ति शिवस्वरूप स्वामी की सेवा में तत्पर रहती।

श्रीरामकृष्ण ने श्रीसारदा देवी की पूजा की थी। ठाकुर तो पार्थिव शिवलिंग बनाकर भी पूजा करते थे। मृन्मय मूर्ति में चिन्मय के प्रकाश का दर्शन करते थे। नारी मात्र उनके लिए पूज्य थी। क्या उनकी यह षोडशीपूजा एक स्वतन्त्र पद्धति की नही थी?

इस पूजा के माध्यम से उन्होंने केवल सारदा देवी को ही देवीत्व में प्रतिष्ठित किया, ऐसा नही, विश्व की नारी मात्र को

सोने का अपने ही कमरे में प्रबन्ध किया था, यही अधिक सम्भव प्रतीत होता है।

बृहत्तम मर्यादा — महत्तम गरिमा भी दी। — 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः''— इस मन्त्र का सार्थक उच्चारण किया और मानव-जाति को जीवभूमि से ब्रह्मभूमि में उठाया।

२

श्रीसारदा देवी जब दक्षिणेश्वर में आयी थीं तब केवल उन्नीसवें साल में पहुँची थीं। उसी समय से उनका दाम्पत्य जीवन और साधन-भजन — दोनों एक साथ प्रारम्भ हुए थे। संसार की दृष्टि में ठाकुर और श्रीमाँ — पति-पत्नी ही थे। किन्तु इतना ही तो उनके सम्बन्ध का पूर्ण परिचय नहीं है। यह तो मानो एकदम बाहरी सम्बन्ध था। ठाकुर के प्रति माँ की भक्ति और आकर्षण देखकर एक बार परिहास करने के उद्देश्य से हृदयराम ने मामी से कहा था — "सब लोग मामा को बाबा कहते हैं। क्या आप भी बाबा कहकर पुकार सकती हैं?" बड़े स्वाभाविक कण्ठ से सारदा देवी ने उत्तर दिया — "उन्हें बाबा ही क्या कहते हो हृदय? वह तो मेरे बाबा-माँ सब कुछ हैं।" बाद में किसी समय भक्तों के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था — "मैं उनको सन्तान भाव से देखती हूँ।" ठाकुर ने एक बार कहा था — "हम दोनों ही माँ की सखियाँ हैं।" माँ ठाकुर को समस्त सम्बन्धों का घनीभूत रूप मानती थीं। उपरोक्त वर्णन से उनके परस्पर के रहस्यमय गोप्य सम्बन्ध का थोड़ा-बहुत आभास तो मिल जाता है, किन्तु इतने से ही उनके अलौकिक सम्बन्ध का मर्मोद्घाटन नहीं हो पाता, अपितु उनका यह पारस्परिक दिव्य सम्बन्ध और भी जटिल हो जाता है।

ठाकुर के साधन-काल के जीवन का क्रमिक इतिहास तब भी कुछ न कुछ ज्ञात है। किन्तु श्रीमाँ के जीवन की बहुत सी घटनाओं के समान उनकी साधना का इतिहास भी अश्रुत और अज्ञात ही पड़ा है। उनके अधिकांश साधन लोगों की नजर की ओट में ही अनुष्ठित हुए थे।

मुमुक्षु या साधारण साधक अपनी मुक्ति के लिए साधन करता है। किन्तु आधिकारिक पुरुषों की साधना आदर्श स्थापित करने एवं समष्टि-मुक्ति के लिए होती है। बाह्य दृष्टि से दोनों श्रेणी के व्यक्तियों की साधनाएँ एक सी ही है किन्तु उद्देश्य और प्रयोजन दोनों के सर्वथा भिन्न हैं।

बाल्यजीवन मे सारदा देवी की किसी आध्यात्मिक अनुभूति या भाव-समाधि के सम्बन्ध में कुछ नही सुना गया। दक्षिणेश्वर मे षोड़शीपूजा के दिन हम उन्हें प्रथम बार समाधिस्थ हुई देखते हैं। इसी रात्रि से मानो उनके आध्यात्मिक जीवन का श्रीगणेश हुआ। उसके बाद तो वह अति निष्ठा के साथ भजन-साधन करने लगी। बहुत दिनों तक तो उनका यह नियम रहा कि एक लाख जप पूरा किये बिना वह जल ग्रहण नही करती थी। निस्तब्ध भाव से रात-रात भर ध्यान में बैठी रहती। माँ के वर्णन से इसका थोड़ा-सा आभास मिल जाता है--"वे सब दिन कैसे अपूर्व थे! चादनी रात में चाद की ओर हाथ जोडकर मै कहती थी—'तुम्हारी इस चादनी के समान मेरे मन को निर्मल कर दो।' रात्रि मे चाद उदित होता तो वह रोते-रोते प्रार्थना करती--'चाद मे भी कलंक है, हे भगवान्! मेरे मन में कोई कालिमा न रहे... मैं अपनी बात क्या कहूँ माँ, तब मै दक्षिणेश्वर मे रात के तीन बजे ही उठ बैठती थी। होश-हवास तो

रहते नही थे। एक बार चादनी रात में नहबत की सीढी के पास बैठी जप कर रही थी। वातावरण एकदम निस्तब्ध था। ठाकुर उस दिन कब झाऊ के जगल में शौच गये थे मुझे पता नही था, और दिन तो जूते की आवाज से पता चलता था। खूब ध्यान जम गया था। उस समय मेरा चेहरा दूसरी ही तरह का था—गहनो से सजा हुआ और मैंने लाल साडी पहनर खो थी। हवा के कारण बदन से बार-बार आँचल खसक रहा था। पर मुझे कोई होश नही था। बालक भक्त योगेन जब उस दिन ठाकुर को झारी देने जा रहा था तब उसने मुझे उस अवस्था में देखा था। दक्षिणेश्वर में रात को बासुरी बजती थी जिसे सुनते-सुनते मन व्याकुल हो उठता था। मालूम पडता कि साक्षात् भगवान् बासुरी बजा रहे है—मन समाधिस्थ हो जाता।."

इस प्रकार की समाधि अवस्था उनके जीवन मे अति सहज भाव से होती थी। पर उस समाधि अवस्था का बाह्य प्रकाश बहुत ही कम दिखायी पडता था। ठाकुर के अन्यतम ईश्वर-कोटि के पार्षद स्वामी प्रेमानन्द ने एक बार बताया था—"वे (श्रीमाँ) तो स्वय शक्तिरूपिणी है, उनमें छिपाने की क्षमता बहुत थी। किन्तु ठाकुर चेष्टा करके भी नही छिपा सकते थे। उनके तेज का प्रकाश बाहर प्रकट हो ही जाता था। माँ को भी तो भाव-समाधि होती है—किसी को पता भी चल पाता है?" बहुत सहज ही वे स्वरूप में स्थित रहती थी। फिर नित्य और लीला में सहज ही आना-जाना रहता।

रात-रात भर जगकर माँ माला जपती थी—व आश्रित सन्तानो की मुक्ति के लिए ही तो करती थी। वे कहती थी—"बाबा, बच्चे कही कुछ कर या नही, उनके लिए कुछ कर

रखूं ?" अनेक भक्त सन्तानों के प्रश्न के उत्तर में माँ कहती थी — "तुम्हें कुछ साधन-भजन नहीं करना है, जो कुछ करना है मैं कर ही रही हूँ ?" सन्तानों का प्रश्न होता — "क्या कुछ नहीं करना है ?"

"नहीं, कुछ नहीं।"

"कुछ भी नहीं करना है ?"

"नहीं, कुछ नहीं।" — तीन बार माँ दुहराती। फिर कृपामयी माँ कहती — "जहाँ जितनी सन्तानें हैं, सभी के लिए तो मुझे करना पड़ता है।" मातृरूप से वह सबके लिए मुक्ति की सहज व्यवस्था करती थी।

श्रीमाँ मार्च १८७२ ई. में पहली बार दक्षिणेश्वर में ठाकुर के पास आयी थी। इस समय से १६ अगस्त, १८८६ ई.— ठाकुर के देहत्याग के समय पर्यन्त लम्बे पन्द्रह वर्ष श्रीमाँ का साधन-काल कहा जा सकता है। इस अवधि में ठाकुर की सेवा करना ही उनकी सर्वापेक्षा तीव्र साधना थी। इस साधना ने बाद में श्रीवृन्दावन और बेलुड़ के पचाग्नि तप आदि साधनों को भी मात कर दिया था। इस साधना-काल में श्रीमाँ को — जो विश्व-मातृत्व के विकास के लिए ही जगत् में आयी थी * हम आदर्श पत्नी रूप में देखते हैं तथा श्रीरामकृष्ण को आदर्श पति रूप में।

ठाकुर की साधना पहाड़ी नदी के वेग के समान तीव्र धारा वाली थी। किन्तु श्रीमाँ की साधना अन्तःस्रोता फल्गु के समान शान्त थी। ठाकुर ने अनेकानेक साधनाओं के भीतर से एकत्व

---

* श्रीसारदा देवी का ही कहना था — "जगत् में मातृभाव के विकास के लिए ही ठाकुर अब की मुझे छोड़ गये हैं।"

की प्रतिष्ठा की थी। किन्तु श्रीमाँ एकत्व में प्रतिष्ठित होकर लता के समान अनेक साधनाओं के भीतर पैठ गयी थीं। उनका इष्ट सर्वदेवदेवीमय और सर्वभावमय था।

श्रीसारदा देवी का जन्म गाँव के उन्मुक्त वातावरण में हुआ था किन्तु दक्षिणेश्वर में उनको आकर रहना पड़ा मन्दिर के नहबतखाने के एक छोटे से कमरे में। उसी में भोजन बनाना, खाना, रहना—ठाकुर के लिए भोजन बनाना, फिर भक्तों के लिए भोजन बनाना, उसी में बर्तन, अगीठी, छीके पर छीके आदि सब कुछ रखना पड़ता था। इस छोटे से कमरे में ही माँ ने ठाकुर की सेवा में सलग्न रहकर साल के बाद साल बिता दिये। रात के तीन बजे ही शौचादि से निवृत्त होकर गगा-स्नान करके जब वे कमरे में घुसती तब से दिन में कभी शौच का वेग होनेपर भी वे शौच के लिए नही जाती थी। *

दक्षिणेश्वर म देवी के मन्दिर क एक ही बन्द कमरे मे उनको रहना होता था। सारा दिन वहाँ यात्रियों का समागम लगा रहता, तमाम बँगले-साधु इकट्ठे हुए वही खो खो करते रहते। हर समय भीड सी लगी रहती। तिस पर भी 'लज्जा-रूपिणी' श्रीसारदा देवी अपने आपको इतना बचाकर चलती थी कि कोई उनकी छाया को भी नही देख पाता था। कई साल बाद मन्दिर के खजाची ने बताया था—"वे यहाँ हैं सुना है किन्तु कभी देखा तो नही।"

नित्यसिद्धा श्रीमाँ लोगो की नजरा की ओट में—ठाकुर

---

* श्रीमाँ को कहते सुना गया है—"कभी-कभी तो ऐसा भी करना पड़ा था कि आज पाखाने की हाजत होने पर अगले दिन ही जा पायी थी।"

की अकुण्ठ भाव से सेवा करती रहती। बाद में भक्तों की भी वह आनन्दपूर्वक सेवा करने लगी। तीन साढे तीन सेर आटे की उन्हें रोज रोटी बनानी पडती। तब भी वे सदानन्दमयी रहती। अपने सम्बन्ध में उन्होंने एक बार कहा था।... "तो क्या मेरे सभी कुछ अलौकिक हैं। अशान्ति नाम से तो मैंने कही कुछ देखा नही। और इष्टदर्शन —वह तो हाथ की मुट्ठी में है। एक बार बैठते ही दर्शन कर सकती हूँ। दक्षिणेश्वर में नहबतखाने की छोटी कोठरी को देखा है ? वही में रही। पहले-पहले तो घर में घुसते समय सिर टकरा जाता। एक दिन तो कुछ कट भी गया। बाद में फिर अभ्यास हो गया। दरवाजे के पास पहुँचते ही माथा झुक जाता। कलकत्ते से खूब हृष्ट-पुष्ट स्त्रियाँ वहाँ दर्शन के लिए आती और दरवाजे के दोनो तरफ हाथ लगा खड़ी होकर कहती —'अहा ! कैसे घर मे हमारी सीता-लक्ष्मी रहती हैं। मानो वनवास है।' ..." उस बन्द स्थान मे रहते-रहते उनके पैर मे वात रोग हो गया था, जिसने जिन्दगी भर उन्हें बड़ी तकलीफ दी।

शरीर तो अवश्य मन्दिर के एक कमरे में पड़ा रहता, किन्तु उनका मन-प्राण सभी मानो ठाकुर के ही आसपास चक्कर काटते रहते। उस कमरे में बैठकर ही अपलक दर्शन और अबाध श्रवण चलता था। बालक भक्त सारदाप्रसन्न को अपने घर मे बैठे ठाकुर ने कहा —'गाड़ी भाड़े के लिए नहबत से चार पैसे माँग ले आ।' सारदा ने आकर देखा —पहले ही चार पैसे सीढी के पास रखे हुए है। श्रीमाँ ने बाद में बताया था — "नहबत में हजार काम करते रहने पर भी मेरा मन ठाकुर के ही पास पडा रहता। उतनी दूर से धीरे-धीरे-वार्तालाप करते होते

तब भी मुझे सब सुनायी पडता था।" दिनरात ठाकुर के प्रति उनकी सतर्क दृष्टि रहती—तथा उनमे और अपने मे अभेद समझकर वह आत्मवत् उनकी सेवा करती थीं। इस सेवा के भीतर से ही दोनो का अन्तर्मिलन होता था एव इसी साधना के भीतर था दोनो का अभेदज्ञान। भक्त नीलकण्ठ के गीत का एक चरण वह गुनगुनाकर प्राय गाया करती थी—'ओ प्रेमरत्नधन राखते हय मन अति गोपने' अर्थात् हे मन, वह प्रेमरूप रत्नधन बहुत ही गुप्त रूप से रखना होता है। ठाकुर ही उनके 'प्रेमरूप रत्नधन' थे। इसी से उन्होंने उन्हे अपने अन्तर के एकान्त स्थान में छिपा रखा था। श्रीमाँ परवर्ती काल में अपना शरीर दिखाकर कहती थी—"इसके भीतर वे सूक्ष्म देह में है। ठाकुर ने स्वयं अपने मुख से कहा था—'मैं तुम्हारे भीतर सूक्ष्म देह में निवास करूँगा।'"

धीरे-धीरे भक्तसमागम बढने लगा। आनन्दमयी श्रीमाँ सेवा द्वारा जिस प्रकार ठाकुर को तृप्ति और आनन्द प्रदान करती थीं उसी प्रकार अन्तःपुर मे अवगुण्ठन के भीतर से उनकी सस्नेह दृष्टि भक्तो को भी सुख पहुँचाती थी। धीरे-धीरे वे 'भक्त-जननी' बन गयी। भक्त ठाकुर के ही आकर्षण से आते थे, उनके पास रहकर आध्यात्मिक चेतना लाभ करने के लिए। किन्तु इसके साथ-साथ नहबत (मन्दिर का वह भाग जिसमें श्रीमाँ रहती थी) से उनको ऐसा कुछ मिलने लगा जिससे उन्होंने नहबतवासिनी (श्रीमाँ) को देवी माँ के रूप में वरण कर लिया और तभी से देखा जाता श्रीसारदा देवी धीरे-धीरे अपने आपको मानो देवी-रूप में प्रकट कर रही थी। वे भी मानो श्रीभगवान् के पास भगवती रूप में आ खड़ी हुई।

दक्षिणेश्वर में ही श्रीमाँ की ऐशी शक्ति के विकास की प्रथम सूचना होने लगी थी। कोई स्त्री किसी महान् पारिवारिक संकट की निवृत्ति के लिए किसी मन्त्र वा औषध प्राप्ति की कामना से ठाकुर को घेरे बैठी। ठाकुर ने स्वयं कुछ न देकर उस स्त्री को नहबत घर दिखाते हुए कहा —
'पूरिबे वासना गिया आनाओ ताँहारे,
आमि किवा जानि, तिनि आमार उपरे।।'* (श्रीरामकृष्ण पोथी)।

श्रीमाँ कुछ करने को राजी नहीं हुई, उस स्त्री को उन्होंने ठाकुर के पास ही लौटा दिया। ठाकुर भी छोड़ने वाले नहीं थे। उनका प्रतिकरण विवश होकर माँ को ही करना पड़ा।
विल्वपत्र दियर माता वलिलेन तारे।
वासना पूरिवे, एइ लये जाओ घरे। † (श्रीरामकृष्ण पोथी)
इसी से ही उन स्त्रियो की पारिवारिक संकट-निवृत्ति हो गयी थी।

* * *

धीरे-धीरे त्यागी भक्तों में कोई-कोई नियमित रूप से दक्षिणेश्वर में निवास करने लगे। ठाकुर बहुत सावधानी से उनको त्याग के पथ पर ले चल रहे थे। उनके आहार-विहार, साधन-भजन की ओर उनकी सतर्क दृष्टि थी। कृच्छ् साधन के भीतर से वे उन्हें आदर्श की ओर, भूमानन्द की ओर ले चल रहे थे। बच्चों में कौन कितनी रोटी खायगा, यहाँ तक वे नहबत में

---

* वहाँ चली जाओ, तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायेगी। मैं तो जो कुछ जानता हूँ सो जानता ही हूँ वे मुझसे भी ऊपर हैं।

† माँ ने विल्वपत्र देकर उनसे कहा — 'इसे घर ले जाओ। इससे तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हो जायेंगे।'

जाकर वह आते थे। ज्यादा खाने से भजन-साधन में व्याघात पड़ेगा, इसीलिए तो इतनी सतर्कता थी।

बाबूराम के लिए चार रोटियाँ निर्धारित थी, और राखाल के लिए छ। दूसरे लोगो के लिए भी इसी प्रकार के निर्देश थे। नहबत से भोजन कर आने के बाद ठाकुर पूछ बैठते—'किसने कितनी रोटियाँ खायी है?' एक दिन राखाल से पूछने पर उन्होंने बताया कि सात रोटियाँ खायी है। सुनकर ठाकुर चुप हो गये। क्योंकि राखाल के लिए छ रोटियाँ खाने का ही आदेश था। अन्य दिन खाने के बाद उन्होंने बाबूराम से पूछा—'हाँ रे, तूने कितनी रोटियाँ खायी?' बाबूराम—'छ।' ठाकुर ने गम्भीर भाव से कहा—'इतना ज्यादा क्या खा लिया?' बाबूराम—'मा ने जो दे दी।' सुनकर ठाकुर विचलित हो गये। खड़ाऊँ पहनकर झटपट वे नहबत मे पहुँचे और अभियोग के स्वर मे बोले—'तुम बच्चो को मनुष्य नही बनने दोगी। वे जो साधु होगें, इस उमर मे ही इतना अधिक खाने से कैसे काम चलेगा?'

बच्चो के खाने के सम्बन्ध में इस प्रकार की बात सुनकर माँ के मन म कुछ चोट सी लगी। वेदना-भरे कण्ठ से श्रीमाँ ने कहा—"एक दिन दो रोटियाँ ज्यादा दे देने पर इतनी बातें! तो मैं ही उनकी देखभाल करूँगी। बच्चा के खाने-पीने के सम्बन्ध में आप कुछ न बोले।' ठाकुर चुपचाप सुनकर धीरे-धीरे हँसते हुए अपने स्थान पर लौट आये। अन्य दिन की बात है। श्रीमाँ ने कहा था—बाबूराम को एक बार मिसरी का शरबत दिया था। बाबूराम को उस समय पेट की बीमारी थी। ठाकुर ने वह देखा तो मुझसे कहा—'तुमने बाबूराम को पीने के लिए क्या दिया है?' मैंने कहा—'मिसरी का शरबत।' यह सुनकर

ठाकुर ने कहा — 'उन्हें जो साधु होना होगा । यह कैसा अभ्यास करा रही हो।'

इस प्रकार से चल रही थी त्यागी शिष्यों की शिक्षा-दीक्षा । एक ओर ठाकुर की कठोर व्यवस्था, दूसरी ओर माँ का स्नेह-पूरित कोमल व्यवहार । मानो दो शक्तिशाली चुम्बकों से दो दिशाओं में खिंचता हुआ उनका आध्यात्मिक जीवन अपने स्थान पर संहृत रहकर तीव्र गति से आगे बढ़ रहा था ।

श्रीरामकृष्णदेव के सान्निध्य से उनके अन्तरंग शिष्यों ने बहुत कुछ प्राप्त किया था । भाव, समाधि, निर्विकल्प स्थिति — तथा और भी बहुत कुछ । जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता थी ठाकुर उदार हाथों से उसे वही वस्तु देते थे । किन्तु माँ के पास से उन्हें ऐसी क्या वस्तु मिलती थी जिससे उनके पास भी उन्होंने इस प्रकार आत्मसमर्पण कर रखा था ? माँ के भीतर ऐसा कौन आकर्षण था ? वह तो इस बार अपने स्वरूप को छिपाकर आयी थी । लिखना-पढ़ना वह बहुत ही साधारण जानती थीं । दो-एक त्यागी भक्तों को छोड़कर और किसी के साथ वे आमने-सामने बात नहीं करती थी । तब भी उन लोगों ने माँ में ऐसा क्या देखा जिससे सब लोगों ने उन्हें जगन्माता का ही जीवन्त रूप समझा ? माँ जिसके माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद देती वह अपने आपको बड़ा धन्य समझता ।

त्यागी शिष्यों ने ठाकुर को तो खूब ठोंक-बजाकर स्वीकार किया था किन्तु माँ के चरणों में क्या बिना विचार किये ही उनका माथा झुक जाता था ?

राखाल ठाकुर के मानस-पुत्र थे । वही राखाल महाराज परवर्ती काल में माँ के सामने जाते ही इतने भावाविष्ट हो जाते

कि उनका सर्वांग रोमांच से पुलकित हो जाता, भाव से सारा शरीर काँपने लगता, और आँखों से दोनों कपोलों को प्लावित करती हुई आनन्दाश्रुधारा बह निकलती थी। विश्वविजयी स्वामी विवेकानन्द जब माँ के पास जाते, मालूम पड़ता कि कोई शिशु है। पाश्चात्य देशों की विजय-यात्रा के पूर्व माँ के आशीर्वाद से बलवान् होकर वे समुद्र को भी लाँघ गये थे। माँ ने आशीर्वाद देते हुए कहा था—"बेटा, तुम विश्वविजयी होकर लौटोगे। तुम्हारे मुख में सरस्वती विराजेगी।" *

* * *

नरेन्द्रनाथ आदि शिष्यों के समान श्रीसारदा देवी ने भी कोई साधना या आध्यात्मिक अनुभूति के लिए ठाकुर से विशेष अनुरोध किया था—इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता। प्रारम्भिक दिनों में एक दिन उन्होंने योगेन्द्रमोहिनी से कहा था—"उनसे कहना, जिससे मुझे भी कुछ आध्यात्मिक अनुभूति हो जाय। लोगों के कारण उनसे यह बात कहने का मुझे अवसर नहीं मिलता।"

अगले दिन सुबह ही योगेन्द्रमोहिनी ने प्रणामपूर्वक ठाकुर से माँ की बात निवेदन कर दी। उन्होंने सुना मगर बिना कोई

---

* १८९४ ई. में स्वामीजी ने अमेरिका से एक गुरुभाई को लिखा था—"भैया बुरा मत मानना, तुम लोगों में से कोई अब तक माँ को नहीं समझ सका। माँ की कृपा मुझ पर बाप की कृपा से भी लाखगुण अधिक है। . माँ के प्रति मेरा बड़ा पक्षपात है। . भैया, माँ की बात याद आने पर कभी-कभी कहता हूँ—को राम! भैया, वैसा जो कहता हूँ उसी ओर तो मेरा पक्षपात है। . ." इत्यादि।

जवाब दिये गम्भीर होकर बैठे रहे। यह देख उस स्त्री-भक्त ने नहबत में लौटकर देखा कि माँ पूजा कर रही है। भावावेश में कभी तो खूब हँसती, फिर थोड़ी ही देर में रोना शुरू कर देती और उनकी दोनों आँखों से अश्रुधारा बह निकलती। धीरे-धीरे माँ गंभीर समाधि में डूब गयी।... काफी देर बाद जब समाधि टूटी तब उस स्त्री-भक्त ने जिज्ञासा की—"अच्छा माँ, तुमने तो कहा था तुम्हें भाव नहीं होता, पर यह क्या था?" माँ के लज्जावनत मुख पर कोमल हँसी का भाव छलक आया। ठाकुर के दिव्य संग और दिव्य शक्ति ने माँ को अनायास ही देवी पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

श्रीरामकृष्ण का जीवन ज्वलन्त अग्निपरीक्षा से शुद्ध था। उनके जीवन का मुख्य उपदेश था—"त्याग"। त्याग की कसौटी पर धर्मजीवन की परीक्षा होती है। सन्देशवाहकों को उन्होंने त्यागमंत्र की ही दीक्षा दी थी और उन्हें त्यागधर्म में ही अभिषिक्त भी किया था। इस शिक्षा से उनकी लीलासंगिनी नहीं छूटी थी। मारवाड़ी भक्त लक्ष्मीनारायण ठाकुर की सेवा के लिए दस हजार रुपये देना चाहते थे। ठाकुर ने बड़े दृढ़ भाव से उन रुपयों को लेना अस्वीकृत कर दिया। तब लक्ष्मीनारायण माँ के नाम पर ये रुपये देने की अभिलाषा व्यक्त करने लगे। ठाकुर ने नहबत से श्रीसारदा देवी को बुलाकर इस बारे में उनकी राय लेने के लिए कहा—"क्यों जी, ये रुपये देना चाहते हैं, तुम ये रुपये क्यों नहीं ले लेती? बताओ।" यह सुनकर माँ बोली—"ऐसा कैसे हो सकता है। रुपया नहीं लिया जा सकता। मैं अगर ये रुपये ले लूँगी तो आप ही का लेना होगा। क्योंकि अगर मैं लेती हूँ तो आपकी सेवा तथा अन्यान्य आवश्यकताओं के लिए व्यय किये

बिना रहा नही जायेगा, अत. फल यह होगा कि आप ही का ग्रहण करना होगा। आपके त्याग के लिए ही तो लोग आपके प्रति श्रद्धा और भक्ति रखते है। इसलिए किसी प्रकार भी इन रुपयो को लेना ठीक नही है।" उनकी बात सुनकर ठाकुर निश्चिन्त हो गये।

सारदा देवी का जन्म अति गरीब ब्राह्मण परिवार म हुआ था। बहुत बार उन लोगो का दूसरो का धान कूटकर और सूत कात कर जीविका अर्जित करनी पडी थी। इस प्रकार की गरीबी के वातावरण मे लालित-पालित नारी द्वारा दस हजार रुपय लेने से इन्कार कर देना नि सन्देह असाधारण बात है। ठाकुर त्याग की साधना में सिद्ध होकर सुवर्ण और मिट्टी को बराबर समझने लग थ। और श्रीसारदा देवी इस देवमानव के सग के प्रभाव से ही इस ज्ञान में प्रतिष्ठित हो गयी थी।

माँ का दक्षिणेश्वर का जीवन बडा आनन्दमय था। दिनरात ठाकुर का सेवा-सग, भजन-साधन आदि सब अविच्छिन्न धारा से चलता रहता था। उधर भक्त-समागम, उद्दीपनामय ईश्वरीय प्रसग, नृत्यगीत, भावसमाधि आदि से ठाकुर के कमरे म हर समय आनन्दकोलाहल होता रहता। कभी उच्च ध्वनि मे सकीर्तन होने लगता—हरिनाम की गुजार हो उठती, हुकार भरते वह नृत्य करने लगते, उस समय वे एकदम उन्मत्त से हो जाते थे। कोई हँसता, कोई रोता, कोई नाचता-गाता—मानो वैकुण्ठधाम हो। माँ नहबत के बरामदे में खडी परदे के छेदो के भीतर से अतृप्त नयनो से इस प्रेमलीला को देखती। उस समय वह आनन्द में मग्न हो उठती, उल्लसित हो उठती। दिनरात दिव्य तन्मयता में बीत रहे थे, मानो सर्वक्षण देहातीत सत्ता में ही विराजमान

रहती हो।

ठाकुर को प्रायः उदर रोग हो जाता था। खाने की सब चीजें पचती नही थी। जो कुछ उन्हे पच सकता था, श्रीसारदा देवी वही उनके लिए पकाती और खुद सामने बैठकर तरह-तरह की बातों से उनका मन बहलाते हुए उन्हे खिलाती। ठाकुर के मन की सहज गति भी ऊपर की ओर थी। कोई ईश्वरीय प्रसंग चल पड़ता तो एकदम ही वे भावस्थ हो जाते। उस समय भोजन की ओर उनका कुछ भी ख्याल नही रहता। तब उन्हें खिलाने-पिलाने के लिए माँ को बैठे ही रह जाना पड़ता। माँ मानो बलपूर्वक उनके मन को साधारण भूमि पर खीच रखती थी।

नहबतखाने मे रहने से पत्नी को कष्ट होता है, यह देखकर ठाकुर श्रीमाँ को बीच-बीच मे कामारपुकुर और जयरामवाटी भेज देते थे। दक्षिणेश्वर में रहते समय माँ छ-सात बार पित्रालय और श्वशुरालय मे गयी थी। इधर उनके चले जाने से ठाकुर को खाने-पीने में कष्ट होने लगता। ठाकुर भी तब परेशान होकर सन्देश भेज देते — "तुम शीघ्र चली आओ।"

नहबतखाने के उस बन्द स्थान में रहते-रहते माँ का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। यह देखकर श्रीरामकृष्णदेव के अन्यतम रसददार शम्भू बाबू ने मन्दिर के बाहर गाँव की ओर कुछ जमीन लेकर माँ के लिए एक अन्य घर का निर्माण करवा दिया। इस घर के लिए लकड़ी एक अन्य भक्त विश्वनाथ उपाध्याय ने दी थी। एक मोटी लकड़ी जल के प्रवाह में बह गयी। उस समय हृदयराम "आपका भाग्य ही खराब है" इत्यादि कहकर माँ को कठोर वचन बोलने लगा। ठाकुर ने सब सुनकर हृदय को सावधान कर दिया — "देख हृदय, यहाँ मेरे लिए तू जो अपराध करता

है वह तो माफ है। किन्तु उसके (श्रीमाँ के) भीतर जो है वह यदि फुफकारे तो ब्रह्मा या विष्णु भी तेरी रक्षा नही कर सकेंगे।"

माँ का हाथ बहुत ही उदार था। उन्हे सदा ही लोगो को देना, खिलाना और उनका सम्मान करना बड़ा अच्छा लगता था। एक दिन दक्षिणेश्वर में बहुत से फल और मिठाइयाँ आयी थी। उन्होने सब बाँट दिया। यह सुनकर ठाकुर ने कुछ असन्तोष व्यक्त करते हुए कहा — "इस प्रकार लुटा देने से कैसे काम चलेगा ?" यह सुनकर माँ ने कहा तो कुछ नही, किन्तु गर्वपूर्वक उनके सामने से हट गयी। माँ को मुँह घुमाकर चले जाते देखकर ठाकुर बहुत विचलित हो गये और उन्होने रामलाल को बुलाकर कहा — "अरे रामलाल, जल्दी अपनी चाची को जाकर शान्त कर। कही वह अप्रसन्न हो गयी तो फिर खैर नही।"

माँ और ठाकुर का सम्बन्ध बहुत ही रहस्यमय था। उन दोनो के प्राणो में मानो एक ही सुर था। एक का स्पर्श करते ही उसकी झंकार दूसरे में बज उठती थी। प्राणो की गहराई में जाकर वे दो नही, मानो एक ही हो गये थे। स्वरूपत अभिन्न होने के कारण ही दोनो एक दूसरे के लिए प्रियतम थे। किसी भाग्यवान् से सारदा देवी ने एक बार कहा था — "बेटा, ठाकुर को और मुझे अभेद भाव से ही देखना। हम एक हैं।' करुणा-मयी ने किसी अन्य समय भक्त सन्तानो के समक्ष अपने सम्बन्ध में कहा था — ' देखो, इस शरीर को (अपना शरीर दिखाकर) देव-शरीर जानो। . मेरे रहते मुझे कोई जान नही सकेगा, बाद में ही सब समझेंगे।"

श्रीरामकृष्ण छद्मवेश में आये थे। श्रीसारदा देवी आयी थी गुप्त रूप से — अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाकर। ठाकुर

के जीवित रहते, यहाँ तक कि उनके खास भक्तों में से अनेक ही श्रीसारदा देवी को "देवी रूप" में नही ग्रहण कर सके थे। ठाकुर के त्यागी भक्तों की बात जरूर भिन्न है। माँ उनकी गुरुपत्नी थीं, यही उनका सर्वश्रेष्ठ परिचय था। (स्थानाभाव से उन सभी घटनाओं को यहाँ लिख सकना असम्भव है)। ठाकुर के देहावसान के बाद जब तक श्रीसारदा देवी ने अपने स्वरूप को छिपाये रखा तब तक अनेक भक्त उन्हें साधारण नारी ही समझते रहे।

स्त्रियों मे ठाकुर की अन्तरग भक्तिन थी — योगेन्द्रमोहिनी। उन्हे माँ के साथ अत्यन्त घनिष्ठ भाव से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उनकी भावसमाधि देखने का अवसर मिला था, अजस्र स्नेह-ममता भी माँ से उन्हे प्राप्त हुई थी। वह उन्हे आदर से "योगेन्द्र बेटी" कहकर बुलाती थीं। तब भी भक्तिन के मन में कुछ सशय हो ही गया था। वह सोचती कि ठाकुर तो इतने त्यागी है, मगर माँ परम ससारी दिखायी पडती हैं। भाई-भतीजों के लिए ही तो यह परेशान रहती हैं। योगेन्द्रमोहिनी एक दिन गंगा के घाट पर बैठी ध्यान कर रही थी। ठाकुर ने आविर्भूत होकर कहा (यह घटना श्रीरामकृष्णदेव के देह-त्याग के अनन्तर कुछ साल के बाद घटी थी) — "देख, गगा मे क्या बहता जा रहा है?" भक्तिन ने देखा कि सद्योजात शिशु गगा मे बहता जा रहा है जिसके पेट की नाल भी अभी काटी नही गयी है। ठाकुर ने उसे दिखाते हुए कहा — 'क्या गगा इससे अपवित्र हो गयी? इसके स्पर्श से गंगा पर कोई असर नही पड़ता। उन्हे (माँ को) भी इसी प्रकार समझो। उनके ऊपर तुम्हे किसी प्रकार का सन्देह नही होना चाहिए। उन्हे और इसको (अपना शरीर दिखाकर) अभिन्न समझो।" गंगा से लौट आकर भक्तिन ने माँ को प्रणाम

करके कहा—"माँ, मुझे क्षमा करो।" श्रीमाँ ने स्नेहपूर्वक पूछा—"क्यों, क्या हुआ बेटी योगेन ?" तब योगेन्द्रमोहिनी ने ब्यौरेवार पूरी घटना सुनाकर कहा—"तुम्हारे ऊपर मुझे सन्देह हो गया था। आज मेरे उस सन्देह को ठाकुर ने दूर कर दिया।" माँ के मुँह पर बच्चों की सी हँसी फैल गयी। स्नेहपूर्वक उन्होंने कहा—"इससे क्या हुआ ? सन्देह तो होगा ही ? संशय होगा, फिर विश्वास होगा। इसी प्रकार तो पूर्ण विश्वास होता है। अन्त में यही विश्वास पक्का हो जाता है।" ठाकुर न जना देते तो माँ के सम्बन्ध में संसार कुछ भी समझ नहीं सकता, न जान पाता।

* * *

धीरे-धीरे ठाकुर के गले में कैन्सर रोग का सूत्रपात हुआ। साथ ही साथ दक्षिणेश्वर का आनन्दमय निवासकाल भी पूरा हो गया। देवायतन देवी-देवताओं के विग्रह, यात्री-समागम, बारह महीनों में तेरह त्यौहार—सभी कुछ जैसे के तैसे ही थे। तब भी मानो सब कुछ प्राणहीन सा लग रहा था। सब जगह शून्यता की ही *मर्मर ध्वनि सुनायी पड़ रही थी।*

श्यामपुकुर मुहल्ले में एक मामूली-सा दुमंजिला मकान किराये पर लेकर भक्तगण अस्वस्थ ठाकुर को वहाँ ले आये। सुचिकित्सा चलने लगी। किन्तु उचित पथ्य के अभाव में चिकित्सा का कोई आशानुरूप फल नहीं दिखायी दिया। भक्तगण दक्षिणेश्वर से माँ को श्यामपुकुर लाने की बात सोचने लगे। किन्तु इस घर में जनानखाना तो था नहीं—और वह थीं चिरलज्जाशील। कितने ही अपरिचित लोगों का आना-जाना वहाँ लगा रहता। सदा यात्री-समागम होता। इनके बीच में वह रहेंगी कैसे ? किन्तु माँ के सामने प्रस्ताव रखते ही सब असुविधाओं को ताक में रखकर

वे झट श्यामपुकुर के मकान में चली आयी।

माँ की इस अवधि की कठोर साधना का विचार कर विस्मित हो जाना पड़ता है। बिना जनानखाने के उस मामूली से घर में सर्वसाधारण के स्नान के लिए एक ही स्थान था। रात्रि में तीन बजे के पूर्व ही शय्यात्याग करके स्नानादि से निवृत्त होकर कब वह एकदम तिमजली की छत पर चली जाती — इसे कोई जान भी न पाता। दिन भर वह उस खुले बरामदे में रहती — वहीं ठाकुर के लिए पथ्य आदि तैयार करती और यथासमय लोगों को वहाँ से हटा देने पर ठाकुर को पथ्य आदि खिला जाती। गहरी रात में सब लोगों के सो जाने पर माँ नीचे दुतल्ले पर के अपने लिए निर्दिष्ट कमरे में आती। बडी मुश्किल से तीन घण्टे उन्हे विश्राम के लिए मिलते थे। इसी प्रकार मालूम नहीं कितने दिन उन्होंने ठाकुर की सेवा और भजन-साधन में चुपचाप बिता दिये।

इसके बाद काशीपुर के बगीचे में अन्त के कुछ महीने माँ ने बड़ी ही चिन्ता से काटे थे। ठाकुर को दु:साध्य रोग से असह्य कष्ट था। उनकी वेदना को देखकर पाषाण हृदय भी विदीर्ण हो जाता। जल की घूंट भी निगल नहीं सकते थे। माँ कहती थी — "कभी-कभी नाक से, गले से सूजी निकल आती, उस समय बड़ी भयंकर वेदना होती।...." सब तरह से हारकर अन्त में माँ तारकेश्वर शिव के मन्दिर में धरना देने चली गयी। दो दिन तक वह बिना अन्न और पानी ग्रहण किये 'बाबा' के मन्दिर में पड़ी रही। किन्तु कुछ भी फल नहीं हुआ। लौट कर आयी तो ठाकुर ने पूछा — "क्या, कुछ हुआ? कुछ नहीं न?"

इस दारुण रोग के समय भी ठाकुर को कितनी ही भाव-

समाधि या महाभाव हो जाता था। एक ओर भक्तों की तीव्र साधन-भजन-तपस्या भी चल ही रही थी। ठाकुर ने अपने रोग का अवलम्बन कर काशीपुर में अनेक लोगों पर कृपा की। एक दिन उन्होंने कल्पतरु होकर बहुत से भक्तों का चैतन्य सम्पादन किया था। काशीपुर में ठाकुर की रोग-शय्या के पास जगत् में उनके उदार-धर्म-भाव के प्रचार के लिए "श्रीरामकृष्ण त्यागी-संघ" का संघटन भी हुआ था। माँ ने बाद में एक दिन कहा था—"काशीपुर का बगीचा उनकी अन्तिम लीला का स्थान है। कितनी तपस्या और गंभीर ध्यान-समाधि हो रही थी। वह उनकी महासमाधि का स्थान है। वहाँ पर ध्यान करने से मनुष्य सिद्ध हो जाता है।"

३

ठाकुर महासमाधि में लीन हो गये। शोकातुर श्रीमाँ ने दूसरे ही दिन विधवा-वेश धारण कर लिया। अपने अंगो से उन्होंने एक-एक करके सभी आभूषण खोलकर फेंक दिये। जब वह हाथ का कगन खोलने लगी तब ठाकुर ने आविर्भूत होकर उनके दोनो हाथ पकड लिये और उन्हे कगन नही खोलने दिया। हाथ के कगन नही खोले जा सके। माँ ने अपने हाथ से साडी का चौड़ा किनारा फाडकर छोटा बना लिया। उसके बाद हमेशा वे छोटे लाल किनारे की ही साडी पहनती थी।

ठाकुर के देहावसान के बाद माँ ने भी शरीर छोड़ देने का सकल्प कर लिया था। उस समय ठाकुर ने उनको दर्शन देकर कहा "नही, तुम अभी ससार में ही रहो। बहुत से काम अभी बाकी है।" किन्तु ठाकुर जो एक प्रकार की शून्यता पैदा कर गये थे, क्रमश. वह माँ के लिए असह्य हो उठी। किन्तु ठाकुर का आदेश था—उन्हे रहना ही पडा।

ठाकुर के देहत्याग के सात दिन बाद माँ काशीपुर छोड़कर बागबाजार में भक्त बलराम बसु के घर मे चली आयी। मानो वह अपना सब धैर्य खो चुकी हों। उनके मन की अस्थिरता क्रमश: बढती ही गयी। इसलिए ठाकुर के विशिष्ट भक्तों ने परामर्श करके माँ को वृन्दावन-दर्शन के लिए ले चलने का निश्चय

किया। वलराम वाबू के मकान मे सात दिन रहने के बाद सौर १५ भादो को माँ ने वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया। साथ में त्यागी सन्तान योगेन, काली और लाटू थे। और भी कई भक्तिनें माथ चलीं। माँ ने मार्ग मे वैद्यनाथ, वाराणसी और अयोध्या के भी दर्शन किये। वाराणसी में बाबा विश्वनाथ के आरती-दर्शन के समय वे भावाविष्ट हो गयी थी। वृन्दावन-यात्राप्रसग मे माँ कहती थी—"वृन्दावन जाते समय मैंने देखा कि ठाकुर रेल गाडी के जगले में मुँह डालकर कह रहे है—'जो कवच तुम्हारे साथ है, देखना कही वह खो न जाये।' उनका इष्ट-कवच मेरे हाथ मे था। मै उसकी पूजा विभोर हुई करती थी। बाद म वह कवच मैंने मठ मे दिया।"

वृन्दावन मे पहुँचकर वे सब वशीवट मे काला बाबू के कुज मे रहे। वृन्दावन भगवान् की लीला-भूमि है। प्रत्येक वस्तु मे उन्ही की लीला का स्पर्श है। भावमय पुण्यभूमि कृष्णमय वृन्दावन में आकर माँ के शोकदग्ध हृदय को धीरे-धीरे कुछ शान्ति मिलने लगी। वे साधन-भजन की अतल गभीरता मे डूब गयी, सर्वक्षण वे भावसमाधि में विभोर हुई रहती। विरह के आँसू धीरे-धीरे आनन्द-प्लावन में रूपान्तरित होने लगे।

ठाकुर ने एक दिन माँ को दर्शन देकर कहा—"मैंने योगेन को दीक्षा नही दी है, तुम उसे मन्त्र दो।" तथा कौन-सा मन्त्र देना है यह भी बता दिया। पहले तो माँ ने उस पर उतना ख्याल नहीं किया। मन ही मन उन्हे लज्जा भी मालूम हो रही थी, कुछ भय सा भी लग रहा था। दूसरे दिन ठाकुर ने पुन उन्हे दर्शन देकर दीक्षा देने की बात कही। इस पर भी उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया। तीसरे दिन ठाकुर के पुनः दर्शन देने पर माँ

ने उनसे कहा —"मैं तो उसके साथ बात तक नही करती, कैसे मन्त्र दूं ?" ठाकुर ने उत्तर दिया —"तुम योगेन बेटी से कहो —वह रहेगी।" दूसरी ओर ठाकुर ने योगेन को स्वप्न मे दर्शन देकर माँ से दीक्षा लेने के लिए कह दिया। किन्तु योगेन को माँ से कहने का साहस नही हुआ।

माँ ने उस भक्तिन के द्वारा योगेन (योगानन्द) के बारे में जब यह पता कर लिया कि ठाकुर ने उसको कोई इष्टमन्त्र नही दिया था तब उन्होने योगेन को दीक्षा देने का निश्चय कर लिया। माँ ने एक पिटारी मे ठाकुर की छवि और देहावशेष सुरक्षित रखे थे। एक दिन जब वह उसकी पूजा कर रही थी उन्होने योगेन को बुलाकर अपने पास बैठने को कहा। पूजा करते-करते माँ गभीर भावावेश मे मग्न हो गयी। उस भावावेश की अवस्था में ही उन्होने योगेन को मन्त्र दे दिया। माँ इतने ऊँचे स्वर में मन्त्रोच्चारण कर रही थी कि पास के घर से भी वह सुनाई पड़ता था।

स्वर्गवाहिनी अमृतगगा की पवित्र धारा के समान माँ की कृपातरगो ने कितने ही सैकड़ो प्राणों को सजीवित किया —यह हम क्रमश: देखेंगे। तारिणी, तापहारिणी रूप मे उन्होने बहुत से सन्तप्त स्त्री-पुरुषों के पाप-तापो को ले लिया।

* * *

ठाकुर की विरहव्यथा से दु:खी होकर माँ प्राय: रोती रहती। एक दिन ठाकुर ने उन्हे दर्शन देकर कहा —"तुम इतना रो क्यों रही हो ? मै कही चला तो नही गया हूँ ? इस घर मे नही तो उस घर में हूँ।"

माँ एक दिन सुबह ही कुंज मे बैठी ध्यान करते-करते

धीरे-धीरे इतनी गहरी समाधि मे मग्न हो गयी कि वह समाधि किसी प्रकार टूट ही नहीं रही थी। भक्तिनो ने बहुत देर तक उनके पास बैठकर नाम-कीर्तन किया, तब भी वह समाधि नहीं टूटी। अन्त मे (त्यागी-सन्तान) योगेन ने जब नामोच्चारण शुरू किया तब समाधि थोडी भग हुई। समाधि भग होने पर ठाकुर जिस प्रकार बोलते थे, उसी प्रकार से माँ ने भी कहा—"खाऊँगा"। खाने की वस्तु और पानीय सामने रखने पर ठाकुर भावावेश मे जिस प्रकार खाते थे, ठीक उसी प्रकार श्रीमाँ ने भी थोडा-थोडा खाया। . बाद में बोली—"मै ठाकुर के भावावेश मे थी।"

उस समय माँ भक्तो के साथ प्राय एक साल तक वृन्दावन में रही। अक्सर वह भावानन्द मे तन्मय हो जाती। कभी-कभी भावावेश में चचल भगी से अकेली ही यमुना के तट पर इधर-उधर घूमती-फिरती रहती। कुज में साथ रहने वाली उनकी सहेलियाँ खोज-खोजकर उन्हे कुज में ले आती और कभी-कभी आनन्दोल्लास से भरी हुई छोटी बालिका के समान सखियो को साथ लेकर मन्दिरो में देव-दर्शन करती हुई घूमती रहती। सदा ही वे आनन्द मे भरी रहती। नित्य नये-नय भावानन्द से छलकती रहती।

एक दिन की बात है। कुछ लोग फूलो मे सजाकर कीर्तन करते हुए किसी शव को ले जा रहे थे। उसे देख माँ ने कहा—"देखो, देखो, लोग किस प्रकार वृन्दावन धाम को प्राप्त कर लेते हैं। हम लोग यहाँ मरने के लिए आये, मगर कभी ज्वर तक नहीं हुआ। कितनी उमर हो गयी जरा बताओ तो। अपने पिता को देखा, अपने जेठ को भी देखा।" सुनकर साथ की स्त्रियाँ

हँसते-हँसते लोटपोट हो जाती। उन्होंने कहा —"माँ, क्या कहा ? बाप को देखा ? बाप को कौन नहीं देखता ।" इस प्रकार बच्चों के समान हो गयी थीं माँ। ठाकुर तो उनके प्राणेश्वर ही थे। देह त्याग करने के बाद वे सर्वेश्वर थे उनके। नाना रूपों से, अनेक तरीकों से उन्होंने माँ के हृदय की शून्यता मिटा दी थी।

माँ ने सेविकाओं और संगिनियों को साथ लेकर वृन्दावन की परिक्रमा की। उस समय अक्सर ही उन्हें भावविह्वल देखा जाता था। ८४ कोस की परिक्रमा में पन्द्रह से भी ज्यादा दिन लगे। वृन्दावन से माँ योगेन (योगानन्द) को एवं अन्य भक्तिगों को साथ लेकर हरिद्वार गयी थी एवं हर की पैंडी के पवित्र जल में उन्होंने ठाकुर के कुछ केश और नख विसर्जित कर दिये।

हरिद्वार से माँ जयपुर होती हुई कुछ दिनों के लिए फिर वृन्दावन लौट आयी। वहाँ से वे कलकत्ता आकर कुछ दिन बलराम बाबू के घर में रहीं और उसके बाद कामारपुकुर में चली गयीं इस बार माँ आठ-नौ माह कामारपुकुर में रहीं। ठाकुर ने एक समय उनसे कहा था—"तुम कामारपुकुर में रहोगी।" साग बोओगी, साग-भात खाओगी और हरिनाम लोगी।" आदर्श सात्विक जीवनयापन का कितना सुन्दर चित्र है।

माँ का इस समय का कामारपुकुर का जीवन बहुत क्लेशमय था, किन्तु उनका अन्तर उसी प्रकार माधुर्य और महिमा से युक्त था। साग-भात तो वे बना लेती, मगर किसी-किसी दिन उसमें डालने के लिए वे नमक नहीं जुटा पाती थी। ठाकुर की विशेष शिक्षा थी—"किसी के आगे हाथ न फैलाना, हो सके तो हाथ उलट कर कुछ देने की चेष्टा करना।" माँ ने अन्तिम दिनों तक इस आदेश का अक्षरशः पालन किया था।

स्वामी सारदानन्द ने परवर्ती काल में दुख प्रकट करते हुए कहा था — "हम उस समय यह समझ भी नही पाये थे कि माँ नमक भी नही जुटा पा रही है।"

माँ ने एक दिन कहा — "वृन्दावन से लौटकर जब मैं कामारपुकुर मे गई तो जनअपवाद के डर से — यह कुछ कहे, वह कुछ कहे — मैंने हाथ का कगन भी खोल डाला। और सोचा कि गगाहीन स्थान मे कैसे रहूँ? गगास्नान के लिए जाने को मन करने लगा। मुझे हमेशा बराबर ही गगास्नान का आग्रह था। एक दिन देखा कि सामने के रास्ते से ठाकुर चले आ रहे हैं आगे-आगे (भूति की नहर की ओर से), उनके पीछे नरेन्द्र, बाबूराम, राखाल आदि भक्त तथा और भी कितने ही लोग थे। देखा कि ठाकुर के पैर से निकलकर जल की लहर आगे-आगे चल रही है (जल की धारा)। मैंने सोचा कि ये ही तो सब कुछ है — इन्ही के चरणकमलो से गगा निकली है। जल्दी-जल्दी मैंने रघुवीर के मन्दिर के समीपस्थ जवाफूल के पेड से बहुत से फूल तोडकर गगा को चढाना शुरू कर दिया। उसके बाद ठाकुर ने मुझसे कहा — "तुम हाथ का कगन मत उतारो। . " उसके बाद (लोकभय से भी) माँ ने हाथ का कगन नही खोला।

कामारपुकुर में अन्य समय भी माँ को ठाकुर के दर्शन हुए थे जिसके सम्बन्ध में उन्होने बताया था — "एक दिन ठाकुर ने आकर कहा — 'मुझे खिचडी खिलाओ।' खिचडी बनाकर रघुवीर को भोग लगाया। उसके बाद मैं बैठकर भावावेश में ठाकुर को खिलाने लगी।"

* * *

इधर त्यागीभक्तो को माँ की कामारपुकुर में होने वाली

असुविधाओं का पता चला तो उन्होने उन्हे कलकत्ता चले आने के लिए अनुरोध-पत्र लिखने शुरू कर दिये। माँ कामारपुकुर अपने श्वशुर-गृह मे थी। वहाँ और भी पाँच आदमी थे—समाज था। वह बड़ी बुद्धिमानी से सबकी सम्मति लेकर कलकत्ता चली आयी।

माँ कलकत्ते आ गई। उनकी गगा-भक्ति अपूर्व थी। इसलिए भक्तो ने गगा के पश्चिम तट पर स्थित वेलूड ग्राम में ठीक गगा के किनारे पर वर्तमान वेलूड़ मठ के निकटवर्ती नीलाम्बर मुखर्जी का बगीचे वाला मकान किराये पर लेकर माँ को वहाँ ठहराया। उनके साथ कई भक्तिनें भी थी एव उनकी देखभाल का जिम्मा स्वामी योगानन्द ने अपने ऊपर ले लिया। एक दिन सन्ध्योत्तर काल में माँ छत पर वैठी ध्यान कर रही थीं। पास में "वेटी योगेन" और गोलापसुन्दरी वैठी थी। माँ का मन धीरे-धीरे निर्विकल्प अवस्था मे चला गया। स्पन्दनहीन होकर वे गभीर समाधि में डूब गयी। काफी देर बाद होश आने पर उन्होने कहा—"ओ योगेन, मेरे हाथ कहाँ, पैर कहाँ?" तब तक उनका देहज्ञान नही लौटा था। भक्तिनें माँ के हाथ और पैर को थपथपाकर कहने लगी—"ये हैं हाथ और ये हैं पैर।" उस दिन देह में मन को आने में बहुत अधिक समय लगा। इस प्रकार आत्मानन्द मे लीन रहकर लगभग छ: माह तक माँ वेलूड मे रही। इस स्थान को युग-युगान्तर तक के लिए महातीर्थ में परिणत करने के उद्देश्य से ही माँ ने वहाँ तपस्या की थी, नही तो उस स्थान को कौन जानता। *

---

* माँ ने बेलूड़ ग्राम में कई स्थानो पर अलग-अलग समय में

बेलूड म निरवच्छिन्न दिव्यानन्द में यह समय बिताने के बाद माँ अपने अन्तर मे जगन्नाथ-दर्शन का तीव्र आकर्षण अनुभव करने लगी। भक्तो के प्रयत्न से उनके पुरी जाने की सुव्यवस्था हो गयी। पुरी में माँ संगिनियो के साथ बलराम बाबू के "क्षेत्रवासी" के मकान में रही। वे प्राय नित्य ही पैदल चलकर जगन्नाथ-दर्शन के लिए जाती। बलराम बाबू के पडा गोविन्द शृंगारी ने जब माँ से पालकी में बैठकर जाने का प्रस्ताव किया तब उन्होने कहा —'नही, गोविन्द, तुम आगे-आग रास्ता दिखाते चलो, और मै दीनहीन कगालिनी की तरह तुम्हार पीछे-पीछे जगन्नाथजी के दर्शन करने जाऊँगी।" . मन्दिर में जाकर उन्होने भावावेश में देखा कि जगन्नाथ मानो नृसिह रूप में विराजमान है और वे स्वय उनकी पद-सेवा कर रही है।

ठाकुर स्थूल शरीर से कभी जगन्नाथ-दर्शन को नही गये थे। इसलिए एक दिन माँ ठाकुर की एक छबि को अपने वस्त्राचल में छिपाकर ले गयी और उसी को उन्होने जगन्नाथजी के दर्शन कराये। पुरी में भी माँ अनेक समय भावतन्मय रहती थी। वहाँ उनको एक महागुरुत्वपूर्ण दर्शन भी हुआ था। जगन्नाथ-मूर्ति के सम्बन्ध में एक भक्त के द्वारा पूछे जाने पर उन्होने बताया था —'परन्तु मैंने स्वप्न में शिव-मूर्ति देखी थी। केवल शिवमूर्ति — शिवलिंग। एक लाख शालिग्रामो की वेदी बनी थी और उसके ऊपर जगन्नाथ शिव विराजमान

१८८८, ९०, ९३,९५ ई में कुल मिलाकर डेढ साल से भी ज्यादा निवास किया था। वर्तमान बेलूड मठ की भूमि १८९८ ई० में खरीदी गयी थी। उसके बाद मठभवन-निर्माण, ठाकुर-प्रतिष्ठा और मठ-स्थापना हुई।

थे।... विमला देवी थी। महाष्टमी की रात्रि में उनको बलि दी जाती है। वि दुर्गा ही तो है। अतः शिव तो रहेंगे ही।"

नाना भावों में नाना प्रकार के दर्शन करते हुए माँ ने लगभग चार मास तक श्रीक्षेत्र में निवास किया। ठाकुर के साथ इस समय उनका नित्य सम्बन्ध —नित्य मिलन था। श्रीसारदा देवी ने उनके अन्तर इस प्रकार के प्रेम को खोज लिया था जिसमें कोई विच्छेद वा अवसाद नहीं था, थी केवल पूर्णता —पूर्ण तन्मयता। 'मन्नाथ" जगन्नाथ हो गये थे। समस्त चेतना में और समस्त व्याप्ति में थे ठाकुर। इस समय उन दोनों का चिर मिलन था। विच्छेद का व्यवधान आत्मानन्द की असीमता में जा मिला था।

माँ के भीतर ठाकुर का यह प्रकाश बहुत ही सुन्दर था। वे नाना रूपों में, शाश्वत भगिमा में, प्रेम-पवित्रता और धृति रूप में, एवं शक्ति और भक्ति-मुक्ति रूप में प्रकाशित हो रहे थे। इसलिए तो माँ के भीतर निर्विचार ही उतनी दया और दाक्षिण्य प्रकट रहा था। माँ ने स्वयं कहा था —"मैं दया की दीक्षा देती हूँ। न देने पर रोना शुरू करते है —देखकर दया आ जाती है। इसलिए कृपा की दीक्षा दे देती हूँ। नहीं तो उससे मेरा क्या लाभ? मन्त्र देने पर उसका पाप ग्रहण करना पड़ता है। सोचती हूँ, शरीर को तो जाना ही है —तो इन लोगों का कुछ भला हो जाय।" एक आश्रित जन के कष्ट को देखकर अभय एवं वरदान रूपा माँ ने कहा था —"भय किस बात का है बेटा, सदा ही समझो कि ठाकुर तुम्हारे पीछे हैं। मैं भी सदा तुम्हारे साथ हूँ, मेरे —माँ के —तुम्हारे साथ रहने से तुम्हे किस बात का डर है? ठाकुर कह गये हैं —'जो तुम्हारे पास आयेंगे,

कर कहा था -- जा जा जाकर पूजा कर उसी से तेरा भला हो जायगा। इस पूजा के सम्बन्ध में श्री मार कथा पुस्तक से जाना जाता है— जगद्धात्री की पूजा हुई। गाव भर का निमन्त्रण दिया गया था। प्रतिमाविसर्जन के समय माँ ने जगद्धात्री की मूर्ति के कान में कहा था --- 'मा जगद्धात्रि अगले साल फिर आना। मै पूरा साल तुम्हारे लिए सामान जुटा रखूँगी।

अगले साल माँ ने हम लोगो से कहा --- देखो तुम भी कुछ देना मेरी जगद्धात्री की पूजा होगी। मैने कहा -- हुआ एक बार पूजा हो गयी। फिर इतनी झझट किसलिए ? हम पूजा वूजा की कोई जरूरत नही है -- रहने दो। रात में स्वप्न मे देखा कि तीन स्त्रियाँ आकर उपस्थित हुई है। अरे बाप रे बाप। अब याद आया -- जगद्धात्री और उनकी दो सखियाँ जया एव विजया। उन्होने कहा -- तो हम जायें ? मैने पूछा -- कौन हो तुम ? उन्होने कहा -- मै जगद्धात्री हू। मैने कहा -- नही तुम कहाँ जाओगी ? तुम रहो मैने तुम्हे जाने के लिए तो नही कहा। उसी साल से जयरामबाटी मे प्रति वर्ष जगद्धात्री पूजा होती आ रही है।

* * *

उस समय माँ बहुत दिनो तक जयरामबाटी मे रही और पश्चात बगाब्द १३०० के आषाढ मास के लगभग वे फिर कलकत्ता लौट आयी। इस बार भी भक्तो ने उन्हे बराह ग्राम मे नीलाम्बर बाबू के किराये के मकान मे रखा। उस समय बेलूड मे उन्होने पचतपा की।

ठाकुर के देहत्याग के कुछ समय बाद से ही गाढा धारण एक संन्यासी सूक्ष्म शरीर मे दर्शन देकर श्रीमाँ से बार बार

पंचतपा करने के लिए कह रहा था। उस संन्यासी के विशेष आग्रह से ही उन्होंने पंचतपा की थी। उस सम्बन्ध में माँ के ही वर्णन से जाना जाता है. . ."पंचतपा का आयोजन हुआ। उस समय में बेलूड़ में नीलाम्बर बाबू के मकान में थी। चारों ओर गोहरे की आग और ऊपर सूर्य की प्रखर ताप। प्रातः स्नान करके पास में जाकर देखा—आग भभक-भभक कर जल रही थी। बड़ा डर हुआ मन में—कैसे उसके भीतर जाकर सूर्यास्त तक बैठ सकूँगी? बाद में ठाकुर का नाम ले अन्दर प्रवेश किया, देखा—अग्नि में कोई ताप ही नहीं है। सात दिन इसी प्रकार पंचाग्नि तप किया। किन्तु बेटा, शरीर का रंग स्याही की तरह काला हो गया था। इसके बाद फिर उस सन्यासी को नहीं देखा।"

उस समय माँ को एक अलौकिक दर्शन हुआ था। बगीचे के सामने ही गंगा बहती है। माँ ने एक दिन देखा कि ठाकुर गंगा में जा उतरे और साथ ही साथ उनका शरीर गंगा में लीन हो गया। ठाकुर और गंगा एक हो गये। इधर स्वामी विवेकानन्द 'जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण' बोलते हुए अनेक लोगों के मस्तक पर दोनों हाथों से गंगा-जल छिड़कने लगे। और उस ब्रह्मवारि के स्पर्श से सभी मुक्त होते जा रहे हैं। मुक्तिवारिरूपी श्रीरामकृष्णदेव! उस दर्शन ने माँ के मन पर इतनी गहरी छाप डाली कि कई दिनों तक वे गंगा में उतर नहीं सकी। वे कहती थी—"यह तो ठाकुर की देह है, इसमें पैर कैसे डालूं?"

चार-पांच माह तक बेलूड़ में कठोर तपस्या करने के बाद माँ कुछ समय के लिए जयरामबाटी चली गयी। किन्तु अनेक विशिष्ट भक्तों के आन्तरिक अनुरोध से माँ को पुनः कलकत्ते आकर उनके साथ कैलवार (जिला शाहाबाद, बिहार) में

जाकर दो महीने बिताने पड़े। वहाँ दल के दल वन्य हरिणों को तीर के वेग से भागते देखकर माँ बालिका के समान आनन्द से उच्छ्वसित हो उठती। कैलवार से लौट आकर वे पुनः कुछ मास बेलूड में रही।

स्वामी प्रेमानन्द की भक्तिमती माता ने अपने घर आटपुर मे 'दश भुजा' दुर्गा देवी की प्रतिमा में आराधना का आयोजन किया था। उनके विशेष आग्रह से माँ को भी उस पूजा के उपलक्ष्य में आटपुर जाना पड़ा। उस घटना का उल्लेख करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका से अपने एक गुरुभाई को लिखा था—"बाबूराम की माँ की बुद्धि बुढापे के कारण नष्ट हो गयी है। तभी तो जीवित दुर्गा (श्री माँ) को छोडकर मिट्टी की दुर्गा की पूजा करने बैठी है। . "पूजा के बाद माँ आंटपुर से जयरामबाटी चली आयी।

इस समय माँ के मन मे अपनी माता को तीर्थ-दर्शन के लिए ले जाने की इच्छा बलवती हुई। वे अपनी माता और कुछ अन्य सम्बन्धियों के साथ कलकत्ता होती हुई वाराणसी, वृन्दावन आदि तीर्थों के दर्शन के लिए चल पडी। प्राय. तीन माह तक तीर्थों में वास करने के अनन्तर वे कलकत्ते लौट आयी। अपनी माता आदि * को जयरामबाटी भेजकर लगभग एक माह मा मास्टर महाशय के कलूटोला वाले मकान में रही। बाद मे अपनी माता और भाई के बुलाने से माँ को शीघ्र ही जयरामबाटी चले

* बंगाब्द १३१२ (सन् १९०६ ई.) में श्यामासुन्दरी ने देवीलोक में प्रस्थान किया। वृद्धा के मन में एकमात्र यही कामना थी कि सारदा को जन्म-जन्म कन्यारूप में पाती रहूँ।

जाना पड़ा। प्रायः एक वर्ष वहाँ रहकर वे पुनः कलकत्ते लौट आयीं। भक्तों ने उस समय उनको पाँच-छः माह तक बागबाजार के गंगा-किनारे के गोदाम वाले मकान में रखा। धीरे-धीरे भक्तों की संख्या के साथ-साथ दर्शनार्थियों और कृपाप्रार्थियों की भीड़ भी बढ़ती गयी।

पुनः जयरामबाटी में जाकर माँ प्रायः डेढ़ वर्ष वहाँ रहीं। इसके पश्चात् जब वे कलकत्ते में आयीं (बंगाब्द १३०५ के वैशाख में), तब उन्हें बागबाजार की बोसपाड़ा लेन में एक किराये के मकान में ठहराया गया।

उन्हीं दिनों स्वामी विवेकानन्द भी भारत में लौटे थे। आते ही उन्होंने बेलूड़ में एक स्थायी मठ का निर्माण करने के लिए भूमि खरीद ली। सामयिक रूप से नीलाम्बर बाबू के भाड़े के मकान में ही बेलूड़ का मठ उठ आया। बड़ी तेजी से मठ का निर्माण-कार्य चलने लगा।

सन् १८९८ के दिवाली (कालीपूजा) के दिन स्वामीजी संघ-जननी माँ को बागबाजार से नवीन मठ के प्रांगण में ले आये। वहाँ आकर माँ ने अपने सदा के पूजनीय ठाकुर के चित्र की पूजा की।* मठ में श्रीरामकृष्णदेव अधिष्ठित हो गये। बेलूड़

* अपने नित्य के उपासनीय ठाकुर के चित्र के सम्बन्ध में माँ कहती थीं—" . यह बहुत ठीक है। . . मैं इसकी अन्यान्य देवताओं के चित्रों के साथ रखकर पूजा करती थी। उस समय मैं नहबत के नीचे के कमरे में थी। एक दिन ठाकुर पहुँच गये। चित्र देखकर बोले—'अरे, तुमने यह सब क्या कर रखा है?' . . बाद में देखा बिल्व-पत्र तथा और भी जो कुछ पूजन-सामग्री थी—एक बार या दो बार चित्र पर चढ़ाया, पूजा की,

मठ महातीर्थ के रूप में परिणत हो गया ।

बेलूड मठ के स्थान के सम्बन्ध में माँ कहती थी—"मैं हमेशा ही देखती थी मानो ठाकुर गगा के ऊपर उस पार—जहाँ यह मठ है—केले के बाग के घर में निवास कर रहे हैं। उस समय मठ नही बना था। " माँ के इस कथन से तो यही समझ में आता है कि ठाकुर ने ही बेलूड मठ के स्थान को पसन्द किया था। और उनके विशेष इगित से ही इस स्थान म मठ स्थापित हुआ है ।

इसके बाद ९ दिसम्बर (१८९८ ई) के पुण्य मुहूर्त में स्वामीजी बेलूड के किराये के मठ से 'आत्माराम-रूपी' (श्रीरामकृष्णदेव का भस्मास्थि-पात्र) श्रीरामकृष्णदेव को अपन कन्धे पर उठाकर इस स्थायी मठ मे ले आये और सहस्रो युगों के लिए इस स्थान में उनकी स्थापना कर दी। जगत् के इतिहास में यह एक महास्मरणीय दिन है। अनन्तर २ जनवरी (१८९९) को मठ पूर्ण रूप से इस नूतन मन्दिर में चला आया। इसके बाद तीन चार वर्षों तक मा कभी जयरामबाटी, कभी कलकत्ते म रही। कलकत्ते आकर वे बागबाजार मुहल्ले में किसी किराये के मकान में रहती थी।

सन् १९०१ ई में स्वामीजी ने खूब ठाठ-बाट से बेलूड मठ म दुर्गा-पूजा की। 'जीवित दुर्गा' श्रीसारदा देवी को उन्होंने मठ के पार्श्व में स्थित नीलाम्बर मुखर्जी क बगीचे में रखा। यथासमय माँ मठ में आयी — दवी का बोधन हुआ। आनन्दमयी के आगमन से पूजा के चार दिन मठ में बडा आनन्दोत्सव रहा। बहुत लोग

वही विश्व है यह ।"

माँ का दर्शन पाकर धन्य हो गये। एक ओर 'दीयताम्,भुज्यताम्' और 'जय दुर्गा माई की जय' ध्वनि से गंगा का वक्ष प्रतिध्वनित हो रहा था। . . .

श्रीरामकृष्णदेव के देहत्याग के बाद श्रीसारदा देवी के अपार्थिव मन को साधारण धरातल पर रखना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो रहा था। उनका मन स्वरूप में लीन होने के लिए असीम की ओर दौड पडा।* एक ओर ठाकुर भी वारम्बार उन्हे रोकते हुए युग कार्य की परिपूर्ति के लिए श्रीसारदा देवी को नरदेह म रखने की चेष्टा कर रहे थ। श्रीसारदा देवी को मत्यधाम म रखने के लिए किसी मायिक अवलम्बन का विशेष प्रयोजन था। श्रीरामकृष्ण न उसकी पूर्ण व्यवस्था कर दी थी। उसका आभास मा के कथन से मिलता है—'ठाकुर के देहत्याग के बाद ससार में और कुछ अच्छा ही नही लगता था,

---

* इसके पूर्व भी यथास्थान हमने माँ के स्वरूप में लीन होने की चेष्टा का उल्लेख किया है। बलूड म रहते समय उनको निर्विकल्प समाधि हुई थी—उनकी सगिनियो ने इसे देखा था और उन्होंने बताया भी था। किन्तु इस समाधि का माँ के जीवन के साथ क्या सम्बन्ध था वह बहुत बाद में माँ के ही मुख से जाना गया था। माँ ने परवर्ती काल में एक सन्यासी शिष्य से बात ही बात म कहा था—"उस समय (बलूड मठ के निवासकाल में) लाल ज्योति नील ज्योति आदि विभिन्न ज्योतियों में मन लीन रहता था। और दो चार दिन इस प्रकार रहने से देह नहीं टिकती।"

मन में अवसाद सा भरा रहता और मैं प्रार्थना करती—'अब मेरे इस संसार में रहने से लाभ ही क्या है?' उसी समय सहसा देखा कि लाल कपड़े पहने हुए दस-बारह साल की एक लड़की सामने घूम रही है। ठाकुर ने उसे दिखाते हुए कहा—"इसका आश्रय लेकर रहो। तुम्हारे पास यहाँ पर और भी कितने ही लोग आयेंगे।" दूसरे ही क्षण वह अन्तर्धान हो गये। उस लड़की को मैं फिर नहीं देख सकी। उसके बाद एक दिन ठीक इसी स्थान पर (जयरामबाटी में) मैं बैठी थी। छोटी बहू (राधू की माँ) उस समय एकदम पागल थी। बहुत सी कथरियां बगल में दबाये और बकैयां करती उन्हे खींचते हुए वह उस ओर चली जा रही थी और उसके पीछे-पीछे रोती हुई राधू भी चली जा रही थी। उसे देखकर हृदय में बहुत कष्ट हुआ। दौडकर मैंने राधू को गोदी मे उठा लिया। मन में हुआ सच ही तो, इसको अगर मैं नहीं देखूंगी तो और कौन देखेगा? पिता हैं नहीं, माँ पागल है। मन में इस प्रकार सोचते हुए मैंने उसे गोदी में उठा ही रखा था कि सामने ठाकुर दिखायी पड़े। उन्होंने कहा—"यही वह लड़की है, इसका आश्रय लेकर रहो, यह 'योगमाया' है।" (२६ जनवरी १९०० ई को राधू का जन्म हुआ था।)

उसके बाद से माँ के नरदेह त्याग के पूर्व तक यह 'योग-माया-आश्रित' जीवन बड़ा ही रहस्यमय रहा है। इस 'योगमाया' के अवलम्बन से उनका असंसारी मन भी मानो संसारी हो गया और उस समय का माँ का घोर माया में बद्ध होकर संसारी के रूप मे अभिनय करना वस्तुत. बड़ा अद्भुत था। उनका यह अभिनय इतना परिपूर्ण और सर्वांगसुन्दर था कि उसने माँ की त्यागी सन्तानो को भी—जो उनकी जीवित जगदम्बा के रूप में

पूजा करते थे––चकाचौंध कर दिया था।

मायाबद्ध जीव के समान माँ का आचरण देखकर एक सन्यासी के मन में सन्देह का उदय हुआ। उन्होंने दो-एक बार श्रीमाँ से कहा भी––"आप इतना 'राधू राधू' क्यों करती है? राधू के ऊपर आपकी बहुत आसक्ति हो गयी है।" माँ ने कहा––"क्या करूँ बेटा, हम स्त्री-जाति है, हम ऐसे ही हैं।" उक्त सन्यासी ने और भी एक दिन यह प्रश्न किया था। उस दिन सहसा माँ का स्वर बदल गया। उन्होंने कुछ उत्तेजित होकर ही कहा––"तुम यह सब क्या समझोगे? . मेरे समान किसी को ढूंढकर निकालो तो!" यह सुनकर सन्यासी सतान का संशय जाता रहा। प्रकृति के लीला-मंच पर अकस्मात् पट-परिवर्तन के समान श्रीसारदा देवी के जीवन में साथ-साथ रहते हुए अन्धकार और आलोक एक बड़ी मनोरम छवि प्रस्तुत करते थे। नित्य और लीला का कितना सहज आना-जाना! एक पैर वे सदा नित्य पर रखती थी और दूसरे पैर से लीला-नृत्याभिनय दिखाती थीं।

मा की राधू अब बड़ी हो गयी है। उसका विवाह किया, और उसकी एक सन्तान भी हो गयी है। योगमाया ने नाना प्रकार की माया का विस्तार कर श्रीसारदा देवी के मन को आच्छन्न कर रखा था। पागल की लड़की राधू भी अर्द्धविक्षिप्त सी हो गयी थी। इससे माँ के मन में बड़ी अशान्ति और चिन्ता फैली हुई थी। मानो मायापाश में और भी अधिक बँध गयी हों। बिना अफीम के राधू का काम नही चल सकता था। वह सिर्फ बैठी ही रहती थी, खाने-पीने के सिवाय कुछ काम न था। किन्तु यदि किसी से कुछ त्रुटि हो जाती तो उसे कितना मान-अभिमान होता था। माँ के ऊपर वह बराबर गाली बरसाती रहती,

अत्याचार करती । राधू अपनी माँ को 'मुडी माँ' कहती थी और श्रीमाँ को 'माँ' कहकर बुलाती थी । 'माँ' की पुकार सुनते ही उनका मन आन्दोलित हो उठता । एक बार राधू अफीम के लिए जिद्द कर रही थी । माँ ने चिढकर कहा--"राधू, अब और नहीं, उठकर खड़ी हो जा । अब मुझसे नहीं सहा जाता । तेरे कारण मेरा धर्म-कर्म सब गया ।" इन मृदु रोषवाक्यों से नाराज होकर राधू ने सामने की टोकरी से एक बडा भंटा उठाकर जोर के साथ माँ की पीठ पर दे मारा । 'गुम' सा शब्द हुआ । वेदना से माँ की पीठ में बल पड गये । देखते-देखते पीठ सूज उठी । तब माँ ने ठाकुर के चित्र की ओर देखते हुए हाथ जोडकर कहा--"ठाकुर, उसका अपराध न लेना, वह अबोध है ।"

साथ ही साथ अपने पैर की धूल राधू के माथे पर डालते हुए माँ ने कहा--"राधू, इस शरीर से ठाकुर ने कभी एक कठोर वाक्य भी नहीं कहा था---और तू इतना कष्ट देती है? तुझे क्या मालूम मेरा स्थान कहाँ है? तुम लोग क्या समझते हो कि मैं क्यों तुम्हारे लिए यहाँ पड़ी हूँ?" राधू उस समय रोने लगी । माँ का मन भी पिघल उठा । लीलाभिनय जो चल रहा था !

और भी कभी-कभी माँ अपने स्वरूप के सम्बन्ध में आभास देती थीं । क्यों राधू के निमित्त से उनका मन मायाच्छन्न हुआ पड़ा था -- इसका भी इन्होंने सकेत दिया । इस घटना के वाद एक दिन माँ ने कहा--"देखो, सब लोग कहते हैं न कि मैं 'राधू राधू' करके अस्थिर हूँ, उसके ऊपर मेरी बडी आसक्ति है । यह आसक्ति अगर मुझमें न रहती तो ठाकुर के शरीरत्याग के बाद यह शरीर भी न रहता । उन्हीं के काम के लिए ही उन्होंने 'राधू राधू' करके इस शरीर को रखा है । जिस दिन मन उसके

ऊपर से चला जायगा, उस दिन फिर यह शरीर भी तो नही रहेगा।'

यह एक ही माया नाना भावो म, दया और स्नेह आदि विभिन्न रूपो में और अपार करुणा तथा विगलित कृपा रूप से प्रकाशित हो रही थी। इस माया के अवलम्बन के बिना उनका जीवदया रूप महत्कार्य अपूर्ण ही रह जाता। इसी माया के कारण ही तो उन्हे शत-शत नर-नारियो ने कन्या, भगिनी, भ्रातृ-जाया, पडोसिन, माता, गुरु, और फिर दया, करुणा, सेवा और सान्त्वना रूप में, स्नेह-ममता और भुक्तिमुक्ति रूप म प्राप्त किया—बिना इस मायासक्ति के वे सभी वचित ही न रह जाते ?

श्रीरामकृष्ण का जीवन इतने ऊँचे सुर म बँधा था कि उसके साथ सुर मिला सकना साधारण मनुष्य के लिए सवथा असम्भव था। त्याग म, पवित्रता में, उच्च आध्यात्मिक अनुभूति में—सभी कुछ म वे सर्वोच्च स्तर में पहुँचे हुए थे जो साधारण मनुष्य की पहुँच क सर्वथा परे था। और निरन्तर भगवान् में ही वे अवस्थित रहते थे—उससे जरा भी नीचे नही उतर सकते थे। उनके जीवन में एक तीव्र प्रकाश था जो साधारण मानव की आँखो मे चकाचौंध पैदा कर देता था। इसलिए हम देखते हैं कि श्रीरामकृष्णदेव अपने साथ इस प्रकार का एक जीवन (श्रीमाँ) लेकर आये थे जिसमें मनुष्यों को—जहाँ तक उनकी पहुँच थी वहाँ तक—पूर्णता ही दिखायी देती थी। सन्यासी, गृही, बालक बालिका, उच्च वर्ण, निम्न वर्ण, पवित्र-अपवित्र अन्ध-खञ्ज, सबल-दुर्बल सभी उनको परम आत्मीय रूप में—ठीक अन्तरग के समान पा सकते थे।

ठाकुर विषयासक्तो की हवा भी नही सह सकते थे—उनकी छाया भी अपने ऊपर पडने से उन्हें कष्ट होता था।

देवालय में देव-देवियों के सान्निध्य में वे सारा जीवन बिताते थे। परन्तु एक ओर श्रीसारदा देवी श्रीरामकृष्ण रूप देवता को लेकर जैसी रहती थीं, दूसरी ओर वे निर्विकल्प समाधि में मग्न हो जाती थी—भावावेश में कभी हँसने लगती, और कभी रोने लगती—और अपने बन्धु-बान्धव, पागल-पगली, मुहल्ले के लोग—सबकी वे प्रयत्नपूर्वक सानन्द सेवा करती थीं। वे तरह-तरह के लोगों के आवेष्टन में निर्विकार होकर रह रही थी। फिर गंगा माई के समान सभी को पवित्र और धन्य कर रही थी। कल्याण-रूपिणी के स्पर्श से सभी इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण प्राप्त कर रहे थे। स्वामी प्रेमानन्द कहते थे—"तुम लोग देख तो आये, राजराजेश्वरी होने पर भी आप अपनी इच्छा से कंगालिनी के समान घर लीपती, बर्तन मांजती, सूप से चावल साफ करती, यहाँ तक कि भक्तों का जूठा भी साफ करती हैं। माँ जयरामबाटी मे भी गृहस्थियों को गृहस्थ-धर्म सिखाने के लिए इतना ही कष्ट करती थी। उसमें असीम धैर्य था, अपरिसीम करुणा थी और सर्वोपरि था—सम्पूर्ण अभिमान-राहित्य। . . ."

ठाकुर आदर्श संन्यासी थे। श्रीसारदा देवी के जीवन मे सन्यास और सासारिक जीवन का अपूर्व सम्मिश्रण था। ठाकुर रुपये-पैसे छू तक नही सकते थे—हाथ टेढा हो जाता था। माँ रुपये को 'माँ लक्ष्मी' समझकर माथे से लगाती थीं। अर्थ ही सब अनर्थों की जड़ है—यह वे भी जानती थी—ठाकुर की तरह बहुत अच्छी तरह समझती थी। ठाकुर के निकट सब मिथ्या थे—जगत् भी मिथ्या था। वे कहते थे—"अरे रामलाल, यदि मैं जानता कि जगत् सत्य है तो उसी समय तेरे कामारपुकुर गांव को सोने से मढ़ देता। मैं जानता हूँ कि यह सब मिथ्या है—

केवल एक भगवान् ही सत्य है।" किन्तु माँ के समीप मानो सब कुछ सत्य थे---ऐसा ही था उनका व्यवहार। दोनों जीवन मानो एक दूसरे के आपात-विरोधी थे---किन्तु थे दोनों ही एक दूसरे के परिपूरक। एक अगर वेद था तो दूसरा उसका भाष्य। और दोनों ही मानो असीम के घर में पास-पास बैठे हुए थे।

'अद्वैत ज्ञान को आँचल में बाँधकर संसार में किस भाव से रहा जा सकता है, उसका आदर्श श्रीसारदा देवी ने अपने जीवन में दिखा दिया।

* * *

जयरामबाटी में भक्त समागम बराबर बढ़ता जा रहा था। जयरामबाटी महातीर्थ की महिमा यात्रियों की 'जय माँ' ध्वनि से घोषित हो रही है। महाशक्ति के तीव्र आकर्षण से खिंचकर सन्यासी-गृही पुरुष-स्त्री, सभी दूर-दूर से चले आ रहे थे। बहुत दिन पहले सारदा को कोई सन्तान न होते देखकर श्यामासुन्दरी बड़े दुःख के साथ प्रायः कहा करती---"ऐसे पागल दामाद के साथ हमने अपनी सारदा का विवाह किया है, ओह! कोई घर गृहस्थी नहीं चली, माँ कहकर पुकारने के लिए सन्तान भी नहीं हुआ।" एक दिन ठाकुर के कान में यह बात पड़ी तो उन्होंने कहा---'माताजी, इसके लिए आप दुःखी न होवें। आपकी लड़की के इतने सन्तान होंगे कि बाद में देखियेगा चारों ओर से 'माँ माँ' की पुकार सुनते-सुनते ही वह परेशान हो जायेगी।" श्रीरामकृष्ण की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य होती चल रही थी। जितने भी आते थे सभी सारदा देवी को मातृरूप में पाते और उन्हें तारिणी मूर्ति के रूप में देखते थे। वे गुरु रूप में अपने दीक्षित पंगु बच्चों को दुस्तर भवसागर से पार लगाती चल रही थीं।

उनके भीतर मातृत्व और देवीत्व का अपूर्व सम्मिश्रण था।

जागतिक मातृत्व के भीतर प्रतिदान की गुप्त आकांक्षा रहती है--और इस लेन-देन के भीतर से ही इस प्रेम की अभिव्यक्ति और पूर्णता होती है। किन्तु ऐसे मातृत्व में है केवल देना--देने में ही तृप्ति--'मानो वही है दिव्य प्रेम' का पूर्ण विकास। श्रीसारदा देवी के इस सीमाहीन ईश्वरी मातृत्व की प्रचण्ड शक्ति को प्लावन आश्रित सन्तानों के प्राणो की अपूर्णता, क्षुद्रत्व और दैन्य को मानो बहा ले जाता है। 'माँ हैं'--यह ज्ञानरूपी महामन्त्र ही सन्तानो के प्राणो मे एक दिव्य चेतना दे रहा था, उच्छलित परिपूर्णता भर रहा था एव अमोघ शक्ति और शिशु-सुलभ निर्भरता मे उन्हे युक्त कर रहा था।

जयरामवाटी बडा दुर्गम स्थान था। वहाँ आना-जाना बहुकष्टसाध्य तो था ही, व्यय और समयसापेक्ष भी था। प्रबल इच्छा होने पर भी बहुत से लोग जयरामवाटी में नही आ सकते थे। इसलिए श्रीमाँ को अनेक सुविधाओं के होते हुए भी बहुत बार कलकत्ते में रहना पडता था। सन् १८९८ से १९०८ तक जब माँ बीच-बीच में कलकत्ते आतीं तब वह बागबाजार में किसी न किसी किराये के मकान मे अथवा कभी-कभी किसी भक्त के गृह मे अवस्थान करतीं। माँ का जीव-त्राणरूपी महाकार्य धीरे-धीरे व्यापक होता जा रहा था। युगावतार की महिमा और उनके महदुदार भाव के देश मे प्रसार होने के साथ-साथ माँ के समीप भक्त-सन्तानो का आना-जाना भी बढ़ने लगा। इस समय तक केवल बगाली ही नही अपितु पूरे भारतवर्ष के लोग श्रीमाँ के चरण-दर्शन और उनकी कृपा-प्राप्ति के लिए आने लग गये थे।

माँ की कलकत्ता-निवास की इस असुविधा को दूर करने

के लिए स्वामी सारदानन्द के अक्लान्त परिश्रम और चेष्टा के फलस्वरूप बागबाजार में 'श्रीमाँ' के लिए एक भवन का निर्माण हुआ (वर्तमान 'उद्बोधन' आफिस)। २३ मई १९०९ (९ ज्येष्ठ १३१६) को श्रीमाँ बागबाजार के नवीन भवन में चली आयीं एवं वहाँ उन्होंने अपने हाथों से श्रीठाकुर को प्रतिष्ठित किया। इस भवन में आकर वे अपने को बहुत स्वच्छन्द समझने लगीं। स्वामी सारदानन्द का एकनिष्ठ मातृसेवायज्ञ मानो पूर्ण हो गया। उनकी सेवा अनागतों के लिए महान् उज्ज्वल आदर्श बन गयी। सारदानन्द की सेवा से परिपुष्ट होकर श्रीमाँ ने उनका नाम रखा था—'मेरा भारिक', मेरा वासुकि।'

बागबाजार स्थित श्रीमाँ के निवास-स्थान में कितना ध्यान-जप, भाव-समाधि आदि हुए। कितने ही लोग माँ से मुक्तिमन्त्र प्राप्त कर धन्य हुए। माँ की अन्तिम लीला का स्थान महातीर्थ—श्रीमाँ का मकान ही था। उस समय बागबाजार के नवीन भवन में माँ प्रायः छः मास तक रहकर शीतकाल के प्रारम्भ में जयरामबाटी चली गयीं।

माँ एक बार आश्रित सन्तानों के समक्ष कह रही थीं—"ठाकुर इस बार धनी-निर्धन, पण्डित-मूर्ख सबका ही उद्धार करने के लिए आये थे। मलय की हवा खूब बह रही थी। जो कोई भी पाल उठा देता और आग्रह-पूर्वक शरणागत हो जाता, वही धन्य हो जाता था। अब की बाँस और घास छोड़कर जिसके भीतर जो कुछ भी सार है वही चन्दन बन जायगा। तुम लोगों को चिन्ता क्या है?' ठाकुर के इस जीवोद्धार-रूप कार्य का भार अब माँ को अर्पित था। इसीलिए तो वे बिना विचार किये ही जीवोद्धार में जुट गयीं। जो भी 'माँ' कहता हुआ आ खड़ा होता

उसी पर कृपा कर वे उसे ठाकुर के अभय चरणों में अर्पित कर देती।

बहुत से दीक्षित सन्तान ध्यान, जप आदि करने में अपने आपको असमर्थ कहते हुए दु:ख प्रकट करते थे। विगलित स्नेह से माँ उन्हें अभयदान देती हुई कहती थी—"चिन्ता किस बात की? जो भी हो, अन्त में ठाकुर को आना ही है—तुम्हें लेने के लिए। वे खुद ऐसा कह गये हैं, उनकी बात क्या झूठ हो सकती है? सदा तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि वे सदैव तुम्हारे पीछे हैं।"

५

माँ का दैनिक जीवन बहुत ही अनुपम था। हर समय वे कुछ न कुछ करती ही रहती। आलस में या बेकार गप में समय काटते हुए कभी उन्हें नहीं देखा गया। रात प्राय तीन बजे जागने का उन्हें दक्षिणेश्वर से ही अभ्यास था। शरीर अस्वस्थ होने पर भी शायद ही कभी इस नियम में व्यतिक्रम दिखायी पड़ता था। उठते ही वे पहले ठाकुर का दर्शन करती तथा देवताओं को प्रणाम करती। उसके बाद प्रात कृत्यादि से निवृत्त होकर ठाकुर को शयन से जगा स्वयं जप करने बैठ जाती। सुबह होने पर अपने हाथ से पूजा की सब सामग्री जुटाकर आठ बजे वे पूजा में बैठ जाती। पूजा समाप्ति के अनन्तर अपने हाथों से पत्तों पर साधुओं और भक्त सन्तानों के लिए प्रसाद भेज देती। इसी के भीतर फिर चल पड़ता था — भक्त समागम, दर्शनदान, दीक्षादान धर्मोपदेश और शोकातुरों को सान्त्वना दान।

माँ की पूजा को देखकर सब लोग यही सोचते कि माँ मानो ठाकुर की मूर्ति की नहीं, बल्कि जीवित ठाकुर की ही सेवा-पूजा करती हैं — ठीक वैसे ही जैसे दक्षिणेश्वर में करती थी। भोग-गृह में भोग सजा देने के बाद जिस समय माँ ठाकुर को बुलाकर लाती उस समय एक स्वर्गीय दृश्य होता था। सलज्ज नववधू के समान माँ ठाकुर के पास जाकर कहती— 'आइये, खाने के लिए

आइये ।' फिर बालगोपाल की मूर्ति के पास जाकर कहती — "आओ, गोपाल, खाने के लिए आओ।" इसी प्रकार सभी को खाने के लिए बुलाने आकर जब वे भी भोगगृह की ओर जाती तब उनका भाव देखकर ऐसा मालूम पड़ता मानो सचमुच सभी देवता भोजन के लिए उनके पीछे-पीछे चल रहे हों। . . . कभी प्रसादी मिठाई खतम हो जाती, पर भक्तों को मिठाई देनी है। माँ झटपट एक दोना मिठाई हाथों में लेकर ठाकुर के सामने पहुँच कहतीं — "ठाकुर, खाइये।" इस दृश्य को जो देखता उसके मन में एक अभिनव भाव का हिन्दोला सा आ जाता। 'छाया — काया' माँ कहती। उनके समक्ष सदा ही छाया दिव्य काया रूप में प्रतिभासित होती रहती। . . .

एक बार माँ कलकत्ते से जयरामबाटी जा रही थी। विष्णुपुर मे दो दिन तक विश्राम करने के अनन्तर वे सुबह ही सबको साथ लिये छः बैलगाड़ियों से रवाना हुईं। आठ मील दूर जयपुर चट्टी में दोपहर के भोजन की व्यवस्था की गयी। चूल्हे पर मिट्टी की हांड़ी में भात पकाया जा रहा था। चूल्हे से उतारते समय एकाएक हांड़ी फूट गयी और भात एव मांड नीचे जमीन पर फैल गयी। किन्तु माँ उससे जरा भी विचलित नहीं हुईं। उन्होंने पुआल का एक गुच्छा लेकर धीरे-धीरे मांड को साफ करना शुरू कर दिया। इसके बाद हाथ धोकर ठाकुर के चित्र को पेटी में से निकालकर उन्होंने एक तरफ बैठाया। एक लकड़ी से उसमें से थोडा-सा भात पत्ते पर रखकर दाल-तरकारी के साथ ठाकुर के सामने रख हाथ जोड़कर माँ ने कहा — "आज आपकी इच्छा से ऐसी ही व्यवस्था हुई तो यही कुछ थोड़ा-सा गर्म-गर्म जल्दी-जल्दी खा लीजिये।" माँ की यह लीला देखकर साथ वाले हँसने लगे। कितनी सहज और सुन्दर

देव-सेवा ! बिलकुल आत्मवत । और कैसी अद्भुत समयोपयोगी व्यवस्था ! श्रीरामकृष्ण कहते थे—'जब जैसा, तब वैसा।"

माँ का जयरामबाटी का जीवन बहुत ही कर्ममय था। वहाँ सब काम उन्हें ही अपने हाथों से करने पड़ते थे। बहुत बार तो उन्हें पकाना, परोसना और लालटेन तक साफ करना पड़ता था। भक्त-सेवा उनके जयरामबाटी जीवन का प्रधान अंग थी। प्रत्येक भक्त ही माँ को जयरामबाटी में अपनी जन्मदात्री माँ की अपेक्षा और भी अधिक गंभीर भाव से पाता था।

वह जो भी काम करती, सदा एक नूतन प्रीति के साथ ही करती। माँ का यह निरवच्छिन्न सेवामय जीवन सन्यासी, गृही सभी के लिए आदर्श था। वह कहती थी—"सदा कुछ न कुछ काम करते रहना चाहिए। काम करते रहने से शरीर और मन स्वस्थ रहते हैं।" श्रीसारदा देवी के जीवन का एक प्रधान अवदान था—"सेवा"। एक ओर ब्राह्मी स्थिति और दूसरी ओर निरन्तर कर्म—इस प्रकार का सामंजस्यपूर्ण जीवन बहुत कम देखने में आता है। साधन भजन और सेवा में उनके मन में समज्ञान और समभाव ही रहता था।

* * *

कुछ महीने जयरामबाटी में रहकर माँ कलकत्ते लौट आयीं। इस समय अनेक भक्त माँ की कृपा-दीक्षा पाकर धन्य हुए। प्रायः एक साल तक बागबाजार में अपने घर में रहकर माँ बलराम बाबू की पत्नी के विशेष आग्रह से उनकी जमींदारी की कोठार में चली गयीं (१९ अगहन सं० १३१७)। माँ के साथ मठ के कुछ सन्यासी सेवक और उनके आत्मीय थे। कोठार में रहते समय माँ के मन में रामेश्वर जाने की बहुत दिनों की

अभिलाषा बलवती हो उठी।

मां का अभिप्राय जानकर मद्रास से स्वामी रामकृष्णानन्द ने उनके दक्षिण भ्रमण की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हुए उन्हें आमन्त्रित किया। तदनुसार १९११ ई. के फरवरी मास में श्रीमां सेवक और सगिनियों के साथ कोठार से दक्षिण भारत के प्रधान तीर्थ रामेश्वर के दर्शनार्थ मद्रास के लिए रवाना हुईं। माँ के मद्रास पहुँचने पर स्वामी रामकृष्णानन्द ने देवी-भाव से स्वागत करते हुए उन्हे मयलापुर मठ के अति सन्निकट एक किराये के मकान मे बहुत आग्रह से कुछ दिन ठहराया। वहाँ अनेक स्त्री-पुरुषों ने माँ से मन्त्रदीक्षा ली। बहुत से लोग उनके पवित्र दर्शन से धन्य हुए।

मद्रास से स्वामी रामकृष्णानन्द साथियों के साथ माँ को रामेश्वरदर्शन के लिए ले गये। रास्ते में एक दिन उन्होंने मदुरा में विश्राम किया। रामेश्वर पहुँचकर वे तीन दिन वहाँ रहे। वहाँ गर्भमन्दिर मे प्रवेशकर माँ ने अपने हाथ से पूजाअर्चना आदि का यथारीति सम्पादन किया। इस सम्बन्ध मे माँ ने बताया था--"अहा! शशी (स्वामी रामकृष्णानन्द) ने मुझे सोने के १०८ बिल्पत्र देकर रामेश्वर की पूजा करवायी।"

रामेश्वर से माँ मद्रास लौट आयी। उसके बाद बंगलोर के श्रीरामकृष्ण मठ के अध्यक्ष के विशेष आग्रह से तीन दिन वे बगलोर में जाकर रही। बगलोर जाने के सम्बन्ध में माँ ने बताया था---'ओह! कितने लोगों की भीड़ थी बगलोर मे। ट्रेन से उतरते ही सब लोग फूल बरसाने लगे। रास्ते में फूलों की ढेरी लग गयी थी। ठाकुर का भाव सर्वत्र फैल गया है। इसी से उतने लोग आये थे।"

बंगलोर के मठ के प्रांगण में चन्दन वृक्ष और एक छोटा सा

पहाड देखकर माँ बहुत प्रसन्न हुई थी। एक दिन सन्ध्या समय उन्होंने उस पहाड पर बैठकर कुछ समय जप ध्यान में बिताया था।

बंगलोर से माँ फिर मद्रास लौट आयी जहाँ दो-एक दिन रहकर वह कलकत्ते चली आयी। मार्ग में गोदावरी में स्नान करने के लिए एक दिन वे राजमहेन्द्री में उतरी थी और दो-तीन दिन पुरी में भी रही थी।

रामेश्वर से लौट आकर माँ एक महीने से कुछ ज्यादा ही बागबाजार में रही। ३ ज्येष्ठ १३१८ (तदनुसार १७ मई सन् १९११) को वह जयरामबाटी के लिए चली गयी और बाद के २७ ज्येष्ठ को उन्होंने बडे समारोह के साथ अपनी राधू का विवाह कर दिया। राधू को आपादमस्तक अलकारो से सुसज्जित करने के साथ-साथ उन्होंने दहेज भी काफी दिया। बारातियो घरातियो, पार्श्ववर्ती ग्राम के सवसाधारण व्यक्तियो और कगाल-दुखियो को उन्होंने भरपेट भोजन करवाया। नृत्य, गीत और क्रीडा-कौतुको से जयरामबटी मुखरित हो उठी। माँ के आनन्द का मानो कोई आरपार नही था।

इसके छ-सात मास बाद माँ का कलकत्ते आने का प्रबन्ध हुआ। रास्ते में—जयरामबाटी से पाँच मील दूर कोयालपाडा है। वहाँ कुछ भक्तो ने ठाकुर के नाम पर एक आश्रम बना रखा था। उस समय स्वदेशी युग था। आश्रम मे तात और चरखे का ही अधिक प्राधान्य था। कलकत्ते जाने के कुछ दिन पूर्व जयरामबाटी में कोयालपाडा आश्रम के अध्यक्ष से माँ ने कहा—"देखो बेटा, तुमने ठाकुर के लिए जब एक घर और मार्ग में हमारे विश्राम के लिए एक स्थान बना दिया है, तब मैं इस बार जाते समय वहाँ ठाकुर को प्रतिष्ठित कर जाऊँगी। सब आयोजन पूर्ण रखना।

पूजा, नैवेद्यार्पण और आरती आदि सब नियमित कर किया करना। केवल स्वदेशी करने से क्या होगा ? हमारे जो कुछ है, सबके मूल में ठाकुर ही हैं, वही आदर्श हैं। जो भी करना हो, उनका नाम लेकर करो — सब ठीक होगा।"

यथासमय श्रीमाँ कोयालपाड़ा आश्रम में आयी। ठाकुर की विशेष पूजादि का आयोजन किया गया था। माँ ने अपने हाथों से ठाकुर का और अपना चित्र स्थापित कर पूजादि की और कुछ संन्यासियों को साथ लेकर होमादि सम्पन्न करवाया।

८ अगहन बंगाब्द १३१८ (तदनुसार २४ नवम्बर १९११ ई.) को माँ कलकत्ते पहुँच गयी। उनके कलकत्ता-आगमन से भक्तों के बीच में हलचल मच गयी। चारों ओर से कृपाप्रार्थी भक्त कलकत्ते आने लगे। माँ ने कृपा का द्वार उन्मुक्त कर रखा था। कोई भी कृपा से वंचित नहीं रहता था। सैकड़ों जीवन पारस-पत्थर के स्पर्श से सुवर्ण बन रहे थे।

जगत् को मातृभाव की शिक्षा देने के लिए ही तो श्रीसारदा देवी ने शरीर धारण किया था। वह 'माँ' पहले थी — 'गुरु' बाद में। उनके मातृभाव ने गुरुभाव को दबा दिया था। जो 'माँ' कहकर पुकारता था श्रीसारदा देवी उसी को अपनी स्नेहमयी गोद प्रदान करती थी। वहाँ सुश्री, कुश्री, पुरुष-स्त्री, बालक-बालिका, सबल-दुर्बल का कोई भेद नहीं था। 'माँ' की पुकार उनके मन में एक तीव्र प्रेम की सृष्टि कर देती। गोद में लिये बिना वे स्थिर नहीं हो सकती थीं — केवल यही नहीं, सन्तानों को गोद में लेकर भवसागर से पार भी ले जायेंगी। श्रीसारदा देवी के भीतर जो गुरुभाव का विकास था, वह मानो मातृभाव की ही परिणति थी। जिनको एक बार उन्होंने गोद में उठा

लिया उन्हे फिर वे उतार नही सकती थी। यही उनका गुरुरूप था। गुरुरूप में वह सन्तानो को भवसागर से पार ले जा रही थी। वहाँ भी माँ और शिशु! वहाँ भी चिर-मिलन! उनका मातृस्नेह दिव्य था।

आश्रित सन्तानो के लिए उनके मन मे कितनी भावना थी — कितनी उत्कण्ठा थी! समस्त आपदो को वे अपनी छाती पर ले लेती थी। पक्षी-माता के समान स्नेहमय पखो से सन्तानो को वे घेर कर रखती और 'श्री रक्षा-काली' के समान हर विपत्ति से उनकी रक्षा करती। एक आश्रित सन्तान को निराश देखकर माँ ने कहा था 'अगर ठाकुर इस शरीर को न भी रखें फिर भी मैंने जिन लोगो का भार लिया है उनमें से एक की भी मुक्ति बाकी रहते मुझे छुट्टी नही मिल सकती। उनके ही साथ मुझे रहना होगा। उनकी भलाई-बुराई का भार जो लिया है! .. जिनको अपना कहकर अपना लिया है, उनका परित्याग तो अब मैं नही कर सकती।"

• • •

इसी वर्ष (सन १९१२ ई) बेलूड मठ में दशभुजा दुर्गा की आराधना का आयोजन हुआ। स्वामी प्रेमानन्द श्रीमाँ से अनुमति एव आशीर्वाद प्राप्तकर पूजा का आयोजन करने में जुट गये। प्रेमानन्द की विशेष प्रार्थना से श्रीमाँ ने पूजा के चार-पाँच दिन बेलूड में रहना स्वीकार कर लिया। आनन्दमयी आयेंगी। साधु-भक्तो के मन में आनन्द का सुर बज उठा।

बोधन के दिन मध्याह्नोत्तर बागबाजार से माँ मठ में आयेंगी। उत्तर की ओर के बगीचे वाले मकान में उनके रहने की व्यवस्था हुई है। सन्ध्या हो आयी। माँ के आने में विलम्ब

होता हुआ देखकर बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) बड़े अस्थिर से हो उठे। मठ के प्रवेश द्वार पर केले के पौधे और मंगलघाट अभी तक स्थापित नहीं किया गया है — देखकर उन्होंने कहा — "अभी मंगलघट की स्थापना तो हुई ही नहीं — माँ आयेंगी कैसे ?"

देवी का बोधन समाप्त होने के साथ ही साथ माँ की गाड़ी ने मठ के प्रांगण में प्रवेश किया। कुछ संगिनियों ने माँ का हाथ पकड़कर उन्हें गाड़ी से उतारा। सब कुछ देखने के बाद माँ ने प्रसन्न होकर कहा — "सब ठीक-ठाक है। मैं मानो दुर्गा की ही तरह सजधज कर आयी हूँ।" . . .

माँ के शुभागमन से सबने देवी के चिन्मय अविर्भाव का अनुभव कर अपने आपको धन्य समझा। पूजा के तीन दिनों तक सैकड़ों भक्तों ने जीवित दुर्गा के चरणों में प्रणाम करके जीवन सफल किया। कुछ भाग्यवान् भक्तों ने मन्त्रदीक्षा भी प्राप्त की। पूजा के तीन दिन मठ में आनन्द का प्लावन रहा।

विजयादशमी के दिन नौका द्वारा गंगा में प्रतिमा-विसर्जन हुआ। माँ भी बगीचे में खड़ी-खड़ी सब कुछ देख रही थीं। एक भक्त विभिन्न प्रकार से अंग-संचालन करके और मुखभंगियाँ बनाता हुआ प्रतिमा के सामने नृत्य कर रहा था। उसे देखकर माँ ने खूब आनन्द प्रकट किया। किसी मार्जितरुचि ब्रह्मचारी को वह नृत्यादि पसन्द नहीं आया। यह सुनकर माँ ने कहा — "नहीं-नहीं, यह सब ठीक है। गाना-बजाना, राग-रंग आदि सब तरह से देवी को सन्तुष्ट करना चाहिए।" मठ में सबको आशीर्वाद देकर विजयादशमी के दूसरे दिन श्रीमाँ कलकत्ते लौट आयीं।

इसके कुछ ही दिन बाद माँ वाराणसी यात्रा की ओर

लिया उन्हे फिर वे उतार नही सकती थी। यही उनका गुरुरूप था। गुरुरूप में वह सन्तानों को भवसागर से पार ले जा रही थी। वहाँ भी मा और शिशु! वहाँ भी चिर-मिलन! उनका मातृस्नेह दिव्य था।

आश्रित सन्तानो के लिए उनके मन में कितनी भावना थी —कितनी उत्कण्ठा थी! समस्त आपदो को वे अपनी छाती पर ले लेती थी। पक्षी-माता के समान स्नेहमय पखो से सन्तानों को वे घेर कर रखती और 'श्री रक्षा-काली' के समान हर विपत्ति से उनकी रक्षा करती। एक आश्रित सन्तान को निराश देखकर माँ ने कहा था "अगर ठाकुर इस शरीर को न भी रखें फिर भी मैंने जिन लोगों का भार लिया है उनमें से एक को भी मुक्ति बाकी रहते मुझे छुट्टी नही मिल सकती। उनके ही साथ मुझे रहना होगा। उनकी भलाई-बुराई का भार जो लिया है! ... जिनको अपना कहकर अपना लिया है, उनका परित्याग तो अब मैं नही कर सकती। "

* * *

इसी वर्ष (सन १९१२ ई) बेलूड मठ में दशभुजा दुर्गा की आराधना का आयोजन हुआ। स्वामी प्रेमानन्द श्रीमाँ से अनुमति एव आशीर्वाद प्राप्तकर पूजा का आयोजन करने में जुट गये। प्रेमानन्द की विशेष प्रार्थना से श्रीमाँ ने पूजा के चार-पाँच दिन बेलुड में रहना स्वीकार कर लिया। आनन्दमयी आयेगी। साधु-भक्तो के मन में आनन्द का सुर बज उठा।

बोधन के दिन मध्याह्नोत्तर बागबाजार से माँ मठ में आयेंगी। उत्तर की ओर के बगीचे वाले मकान में उनके रहने की व्यवस्था हुई है। सन्ध्या हो आयी। माँ के आने में विलम्ब

होता हुआ देखकर बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) बड़े अस्थिर से हो उठे। मठ के प्रवेश द्वार पर केले के पौधे और मंगलघाट अभी तक स्थापित नही किया गया है — देखकर उन्होने कहा — "अभी मंगलघट की स्थापना तो हुई ही नहीं — माँ आयेंगी कैसे ?"

देवी का बोधन समाप्त होने के साथ ही साथ माँ की गाड़ी ने मठ के प्रांगण मे प्रवेश किया। कुछ सगिनियों ने माँ का हाथ पकडकर उन्हे गाड़ी से उतारा। सब कुछ देखने के बाद माँ ने प्रसन्न होकर कहा — "सब ठीक-ठाक है। मै मानो दुर्गा की ही तरह सजधज कर आयी हूँ।"...

माँ के शुभागमन से सबने देवी के चिन्मय अविर्भाव का अनुभव कर अपने आपको धन्य समझा। पूजा के तीन दिनों तक सैकड़ों भक्तो ने जीवित दुर्गा के चरणो में प्रणाम करके जीवन सफल किया। कुछ भाग्यवान् भक्तो ने मन्त्रदीक्षा भी प्राप्त की। पूजा के तीन दिन मठ मे आनन्द का प्लावन रहा।

विजयादशमी के दिन नौका द्वारा गगा में प्रतिमा-विसर्जन हुआ। माँ भी बगीचे में खड़ी-खड़ी सब कुछ देख रही थी। एक भक्त विभिन्न प्रकार से अग-संचालन करके और मुखभगियाँ बनाता हुआ प्रतिमा के सामने नृत्य कर रहा था। उसे देखकर माँ ने खूब आनन्द प्रकट किया। किसी मार्जितरुचि ब्रह्मचारी को वह नृत्यादि पसन्द नही आया। यह सुनकर माँ ने कहा — "नही-नही, यह सब ठीक है। गाना-बजाना, राग-रंग आदि सब तरह से देवी को सन्तुष्ट करना चाहिए।" मठ में सबको आशी-र्वाद देकर विजयादशमी के दूसरे दिन श्रीमाँ कलकत्ते लौट आयी।

इसके कुछ ही दिन बाद माँ वाराणसी यात्रा की ओर

चल पडी। उनके साथ सेवक, भक्त और भक्तिनियाँ आदि बहुत से व्यक्ति थे। वाराणसी में श्रीरामकृष्ण अद्वैताश्रम में श्री श्यामा-पूजा का आयोजन हुआ था। २० कार्तिक बगाब्द १३१९, एकादशी मगलवार को माँ सबको लिये वाराणसी पहुँच गई। आश्रम के पास ही एक भवन के नवनिर्मित मकान में माँ के निवास की व्यवस्था हुई। अद्वैताश्रम में कुछ देर विश्राम कर माँ अपने वासस्थान पर चली आयी।

माँ का वाराणसी धाम म शुभागमन हुआ है। इस आनन्द महोत्सव में योगदान करने के लिए ठाकुर के अन्तरग पार्षदों में से स्वामी ब्रह्मानन्द, शिवानन्द, तुरीयानन्द, सुबोधानन्द एव मास्टर महाशय भी वहाँ पहुँच गये। अविमुक्त क्षेत्र काशी—विश्वनाथ के धाम में विश्वजननी और भक्तो का समावेश! सबके अन्तर में एक आध्यात्मिक स्रोत बह रहा था।

कालीपूजा की अगली सुबह माँ ने स्थानीय सेवाश्रम का निरीक्षण किया। घूम-घूम कर उन्हे सब दिखाया गया। सेवाश्रम का भवन बगीचा व्यवस्था आदि सब कुछ देखकर माँ ने बहुत प्रसन्न होते हुए कहा—"यहाँ ठाकुर स्वय विराजमान है, और माँ लक्ष्मी पूर्ण होकर यहाँ अवस्थित है।" इसके पूर्व भी माँ यद्यपि दो बार वाराणसी म आ चुकी थी किन्तु ज्यादा दिन वहाँ रह नही पायी थी, इस बार वे प्राय अढाई महीने वाराणसी मे रही। विश्वनाथ, अन्नपूर्णा, दुर्गा केदार तिलभाण्डेश्वर, आदि नाना देवी-देवताओ के उन्होने दर्शन किये गगा स्नान करके वे मन्दिर मन्दिर म जाकर पूजा करती। श्रद्धापूर्वक उन्होने पूरा 'काशीखण्ड' श्रवण किया। विख्यात वृद्ध साधु चमेलीपुरी का भी उन्होंने दर्शन किया।

वाराणसी में एक बार कुछ स्त्रियाँ माँ के दर्शन करने आयी। माँ उस समय राधू, भूदेव आदि बच्चों को लेकर बड़ी व्यस्त थी। फिर अपने पहनने के कपड़े भी फट गये थे—उन्हें सीने के लिए भी कुछ स्त्रियों को आदेश दे रही थी। यह सब देख-सुनकर आगन्तुक स्त्रियों में से एक ने कहा—"माँ आप तो घोर माया में फँसी दिखायी देती हैं।" अस्फुट स्वर में माँ ने कहा— "क्या करूँ माँ, मैं भी तो माया ही हूँ।" माँ का यह मायामय आवरण ही उनके जीवन का सर्वश्रेष्ठ माधुर्य था। वाराणसी से कलकत्ते लौटने के महीने भर के अन्दर ही माँ जयरामबाटी चली गयी। किन्तु सात-आठ महीनों के बाद उन्हें भक्तों के आकर्षण से फिर कलकत्ते चला आना पड़ा। इस समय वे प्रायः पौने दो साल कलकत्ते में रहीं। बहुत से लोगों ने उनकी कृपा प्राप्त की थी।

सब लोग माँ के पास मुक्ति की ही कामना से आते हों—यह बात नहीं थी। विभिन्न लोग विभिन्न कामनाएँ लेकर माँ के पास आते थे। कोई सन्तान की कामना से माँ के पास आता था तो कोई रोगमुक्ति की कामना लेकर, फिर बहुत से लोग ऐश्वर्य की कामना से भी आते थे। माँ अभिलषित वर प्रदान करके सबकी कामनाएँ पूरी करती थी। अनेक बार उन्होंने दूसरों के शारीरिक-रोग अपने शरीर में ले लिये थे। उनकी दया का कोई अन्त नहीं था। उसकी कोई सीमा नहीं थी। सन्तानों को जिस समय जहाँ भी वेदना होती वहीं वे अपना शान्ति का हाथ फेरकर उसे दूर कर देतीं। किसी का भी दुःख देखकर माँ का मन रो उठता। आकुल होकर वे आगन्तुक की अपूर्णताओं को पूर्ण कर देतीं—अपने कोमल हाथ से वे उसकी आँखों का जल पोंछ देतीं।

बागबाजार में माँ के निवास-स्थान के सामने के मैदान में एक श्रमिक-बस्ती थी। उसमें से एक दिन एक स्त्री अपने रोगा-क्रान्त बच्चे को गोदी में लेकर श्रीमाँ के पास आशीर्वाद के लिए आयी। आह! उसके प्रति माँ की कितनी दया, कितनी आन्तरिकता और सहानुभूति था! उन्होंने आशीर्वाद दिया—"आराम हो जायगा।" दो बताशे और कुछ अंगूर—ठाकुर का प्रसाद बनाकर उसके हाथ में देते हुए उन्होंने कहा—"अपने रोगी बच्चे को खिला देना।" अहा! गरीब स्त्री के आनन्द की सीमा नहीं रही, कृतज्ञता से बारम्बार वह माँ को प्रणाम करने लगी।

एक दिन दो बहुएँ आईं। उन्होंने सलज्ज भाव से अपने मन का अभाव गुप्त रूप से माँ को बताया। वे निःसन्तान थीं और माँ बनना चाहती थीं। माँ के मन में दया उमड़ आयी। उनकी अभिलाषा भी माँ ने पूर्ण कर दी। उन्होंने कहा—"ठाकुर से प्रार्थना करके मन की बात कहना। ..दीन भाव से रोते-रोते उनसे अपने हृदय की व्यथा बताना—देखोगी, वे तुम्हारी गोद भर देंगे।" माँ की दया से उनका मनोरथ पूर्ण हो गया था।

कभी कुछ लोग रोग-मुक्ति की प्रार्थना लेकर आते थे। एक दिन एक मेम ने आकर माँ को प्रणाम करते हुए अपनी लड़की के कठिन रोग का वर्णन किया। मेम की व्याकुलता देखकर माँ दयार्द्र हो उठीं। कुछ प्रसादी फूल बिल्वपत्र हाथ में लेकर कुछ देर के लिए उन्होंने आँखें बन्द कीं। फिर एक बार ठाकुर की ओर देखकर फूल-बिल्वपत्र मेम को देते हुए उन्होंने कहा—"अपनी लड़की के सिर से छुआ देना।" माँ के आशीर्वाद से लड़की रोग-मुक्त हो गयी थी।

कभी कभी दर्शनार्थियों के प्रणाम करने के बाद गंगाजल से

माँ को अपने घुटने तक पैर धोना पड़ता था। सेवकों द्वारा इस प्रकार पैर धोने के सम्बन्ध में जिज्ञासा किये जाने पर माँ ने कहा था—"और किसी को पैरों पर सिर रखकर प्रणाम मत करने दो। मालूम नहीं कितने पाप आ घुसते है। मेरे पैर जलने लगते हैं—गगाजल से पैर धोने के बाद कुछ शान्ति मिलती है। इसीलिए तो व्याधि भी हो जाती है। दूर से प्रणाम करने के लिए कहना।" दूसरे ही क्षण करुणारूपिणी ने फिर से कहा—"शरत् (स्वामी सारदानन्द) को यह बात मत बताना। नहीं तो वह प्रणाम ही करना बन्द कर देगा।" इसी प्रकार माँ का जीवोद्धार कार्य चल रहा था। कृपा प्रदान में विराम नहीं था। और न वे ही ऊबती थी।

विभिन्न लोगों के पापों का इतना बोझ माँ ने अपने ऊपर ले लिया कि मालूम पड़ने लगा मानो वे अब और नहीं ले सकेंगी। 'सर्वसहा' जननी के लिए भी मानो यह क्रमशः सब असह्य हो उठा। शरीर में वे असह्य यन्त्रणा की लपटें अनुभव करने लगी। उनके मन में दारुण वेदना होने लगी। एक दिन इसी प्रकार बहुत लोगों की प्रार्थना पूर्ण करते-करते वे अस्थिर हो उठी। उस समय रात बहुत हो गयी थी। सभी दर्शनार्थियों के चले जाने के साथ-साथ उन्होंने पूरे घर में गगाजल छिड़कने के लिए कहा। नीचे के बिस्तर पर लेटकर उन्होंने शरीर के कपड़े बदलकर अलग फेंक दिये और एक भक्तिन के हाथ में पखा देकर कहा—"हवा करो तो माँ, शरीर जल रहा है। नमस्कार करती हूँ माँ, कलकत्ते को। कोई कहता है। हमें यह दुःख है—कोई कहता है हमें वह दुःख है। अब और नहीं सहन हो सकता। कोई कुछ करके आता है, किसी के पच्चीस लड़के-बच्चों में

स दस मर गय इसलिए रोता है। मनुष्य नही — य सब पशु हैं — एकदम पशु। सयम नही ,कुछ नही।' दूसरे दिन फिर वही दशन वही प्राथनापूरण और वही कृपावितरण का क्रम चल पडता।

*   *   *

लगभग एक साल आठ महीने कलकत्त म रहकर माँ जयरामवाटी चली आयी। भक्त समागम और दीक्षादान आदि म दिन दिन वृद्धि हो ही रही थी। माँ की सब घनिष्ठ भाव स प्राप्त करन का एव तन मन स उनका सेवासग लाभ करन का सुयाग प्राप्त कर अनक भक्त उनक पास जयरामवाटी म आते थ। अनेक लोग जयरामवाटी म उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थ अब तक माँ अपन भाइयो के ही मकान म थी। किन्तु सेवक सेविकाओ और भक्तो के साथ भाइया के मकान म रहन म बडी असुविधा तो हो रही थी किंतु और कोई चारा नही था। इसलिए अनेक कष्ट सहकर भी श्रीमा उनके ही बीच म रह रही थी। उनके इस कष्ट को दूर करन के लिए स्वामी सारदानन्द और अन्य भक्तो न प्रयत्न करक जयरामवाटी म लगभग दो हजार रुपयो की लागत स माँ क लिए अलग मिट्टी का मकान और भक्तो क लिए बैठकखाना आदि बनवा दिय। मई १९१६ ई म मा सेवको के साथ नवीन घर म चली आयी। मक्तिकामी सन्यासियो और ससरतापदग्ध गहस्था की शान्ति क लिए एक स्थान बन गया।

माँ क भीतर के विश्व मातृत्व क प्रकाश न सबको चमत्कृत कर दिया। सन्ताना की अकुण्ठ सेवा म श्रीमाँ को कितनी तप्ति और कितना आनन्द मिलता था! कुछ सन्यासी भक्त भोजनादि

के बाद अपने जूठे बर्तन खुद धोने ले जा रहे थे। माँ रास्ता रोककर खड़ी हो गयीं। बोलीं —"नहीं, मैं ही ले जाऊँगी।" संन्यासी तो आश्चर्यचकित हो गये — यह क्या बात है। "यह क्या? आपके लेने से तो मेरा बड़ा अकल्याण होगा" — कम्पित कण्ठ से साधु ने कहा। उस समय माँ छलकती आँखों से बोलीं — "देखो, माँ की गोद में बच्चे टट्टी-पेशाब भी कर देते हैं। मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकी हूँ बेटा।" सन्यासी सिर नीचा करके रह गये। उनकी आँखें धुँधली हो उठीं।

माँ ने एक बार कहा था — "मैं सत् की भी माँ हूँ, असत् की भी माँ हूँ।" आमजद कट्टर मुसलमान, चोर और डाकू था। जयरामबाटी के पास शिरोमणिपुर में उसका घर था। माँ के नवीन मकान के निर्माण-कार्य में जब वह लगा तब पहले तो ग्रामवासियों को बड़ा भय मालूम हुआ। बाद में वे कहने लगे — 'अरे, माँ की कृपा से डाकू तक भक्त बन गये।'

एक दिन माँ ने आमजद को अपने घर के बरामदे में खाने के लिए बैठाया। उनकी भतीजी नलिनी परोस रही थी। उसे दूर-दूर से फेंक-फेंककर परोसते देख माँ ने कहा —'इस प्रकार अवज्ञा से देने पर मनुष्य को खाने में आनन्द आ सकता है? तुम ठीक से परोस न सको तो मैं परोस देती हूँ।' आमजद के खाने के बाद माँ ने खुद उसका जूठा स्थान धो दिया। उसे देखकर —"ओ बुआ, तुम्हारी जात चली गयी" इस प्रकार कहते हुए नलिनी हल्ला मचाने लगी। माँ ने उसे डाँटकर कहा —"जिस प्रकार शरत् (स्वामी सारदानन्द) मेरी सन्तान है उसी प्रकार आमजद भी है।" वह 'माँ' जो थीं।

उनके दिव्य मातृस्नेह से इतर प्राणी भी वंचित नहीं रहे।

उन्होंने भी माँ को स्नेहमयी माँ के रूप में पाया था। माँ के पास एक सुग्गा था। उन्होंने उसका नाम 'गंगाराम' रखा था। कितना स्नेह-प्यार था उनका अपने गंगाराम के लिए! कभी वह उसे 'राधाकृष्ण', 'राम राम' पढ़ाती। सबको 'माँ माँ' कहते सुनकर गंगाराम भी माँ को "माँ माँ" कहकर बुलाना सीख गया था। माँ पान खा रही थी और गंगाराम पुकार रहा था—माँ, माँ! उन्होंने अपनी जीभ पर का पान गंगाराम को खिला दिया। माँ पूजा करके बाहर आती और गंगाराम 'माँ माँ' कहकर पुकारना शुरू कर देता। पूजा के बाद माँ अपने हाथ से गंगाराम को फल मिठाई खिलाती। गंगाराम के लिए माँ का इतना प्यार देखकर कोई-कोई भक्त ईर्ष्या से कहता—"काश! हम भी गंगाराम हो सकते!"

मा की एक पालतू बिल्ली थी। एक दिन बिल्ली ने एक ब्रह्मचारी के बिस्तर पर प्रसव कर दिया। माँ ने देखा तो झटपट साबुन से ब्रह्मचारी के बिस्तर चादर आदि सब कपड़े धो-धाकर साफ कर दिये। तब भी भय था कि बाद में जान जाने पर ब्रह्मचारी कहीं बिल्ली को मारे न। उस ब्रह्मचारी के साथ भेंट होते ही माँ ने कहा—'बिल्ली को कुछ मत कहना। वह रहती यहीं है, खाती यहीं है तो प्रसव करने कहाँ जायेगी?'

जयरामबाटी में एक दिन सुबह ही एक बछड़ा खूब रंभा रहा था। पुकार सुन माँ का मन आकुल हो उठा। वे "आयी, अभी आयी। मैं अभी तुम्हें छोड़ देती हूँ, अभी छोड़ देती हूँ" —कहती हुई अस्तव्यस्त भाव से दौड़ आयीं और आते ही बछड़े को छोड़ दिया।

*　*　*

जयरामवाटी में सहज निविड भाव से एक दिन के लिए भी जिसने माँ को पाया—वही जान गया कि माँ के मन में कितना अपार स्नेह था—सन्तानों के लिए। उन सब छोटी-मोटी घटनाओं की मधुमय स्मृति भी परकाल का पाथेय बनकर भक्तों के हृदय में जिन्दगी भर के लिए छा जाती। एक-दो दिन ही नहीं, बल्कि जो सालों तक माँ के समीप रहे हे उन्होंने एक क्षण के लिए भी कभी उनकी उद्वेलित स्नेह-ममता में न्यूनता नहीं देखी। वही स्नेह विभिन्न रूपों में—छोटी-छोटी घटनाओं के द्वारा अभिव्यक्त होता रहता था। सन्तानों की स्नेहपूर्वक सेवा करने से माँ को कितनी गहरी तृप्ति होती थी—इसका पता माँ की सन्तानसेवा देखकर ही लग सकता था।

एक बार गिरीश बाबू जयरामवाटी पहुँचे। एक दिन उन्होंने देखा कि माँ बिछौने की चादरें और तकिये के गिलाफ आदि लेकर पोखरी के घाट पर उन्हें साफ करने जा रही हैं। रात्रि में सोते समय गिरीश बाबू ने अपने ही बिछौने को दूध-सा सफेद पाया। उसे माँ का ही काम समझकर गिरीश बाबू के मन में जितना कष्ट हुआ उतना ही माँ के स्नेह की बात सोचकर उनके हृदय में आनन्द भी हुआ।

जयरामवाटी में माँ का मकान बन रहा था। एक सेवक घर के काम से सुबह ही पास वाले गाँव में चले गये थे। सर्दी का मौसम था। लौटने में उनको देर हो गयी। सूर्यास्त के लगभग एक घण्टा पहले जब वे लौटे तब उन्होंने देखा कि माँ बिना कुछ खाये-पिये भूखे सन्तान की राह देख रही हैं। विस्मित होकर सेवक ने अभियोग के स्वर में कहा—"माँ, आपकी तबियत ठीक नहीं है और आप इस सन्ध्या समय तक बिना खाये बैठी हैं?"

माँ ने उत्तर दिया—"तुमने जब नहीं खाया तब मैं कैसे खा सकती थी ?" इसके बाद अब क्या कहा जा सकता था ? सेवक चुपचाप सिर नीचा करके खाने बैठ गये ।

मातृस्नेह सर्वजयी होता है । वे कहने भर की माँ तो थीं नहीं । एक सेवक के हाथों में कठिन चर्मरोग हो गया था । अपने हाथ से वे खा नहीं सकते थे । माँ दोनों समय अपने हाथ से उन्हें दाल भात आदि खिला दिया करती थी । उनका जूठा पत्ता तक वे खुद फेंकती थी । . यह घटना वैसे तो बहुत ही सामान्य है किन्तु माँ के स्नेह से सिक्त होकर यही घटना असामान्य और अमर बन गयी है ।

६

जयरामबाटी में भक्त और सेवकों के साथ चार-पाँच माह नये मकान मे रहने के बाद माँ फिर कलकत्ते चली आयी।

सन् १९१६ ई. में बेलूड़ मठ में दुर्गोत्सव हुआ था। स्वामी प्रेमानन्द की विशेष प्रार्थना से माँ सप्तमी-पूजा के दिन मठ में आकर पूजा के कई दिन मठ की उत्तर तरफ के बगीचे मे रही थीं। पूजा का आनन्द महोत्सवानन्द मे परिणत हो गया था। अनेक जन माँ की कृपा प्राप्तकर धन्य हो गये थे।

कलकत्ते मे रहते समय माँ को प्राय: प्रतिदिन ही दीक्षा देनी पड़ती थी। दोनो समय भक्त दर्शन करने आते। दिन भर भक्तिनों का आना-जाना लगा रहता था। इधर धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य भी खराब हो चला था। उनकी दिव्य देह अब मानो और अधिक पापभार नही वहन कर पा रही थी। फिर भी अब अन्तिम जीवन मे मातृभाव और गुरुभाव के परिपूर्ण प्रकाश ने मानो माँ की सम्पूर्ण सत्ता को घेर रखा था।

माँ की एक बडी भारी दुर्बलता थी। वे किसी की आँखों में आँसू नही देख सकती थीं। किसी की भी आँख में के आँसू उनके मातृहृदय को इतना उद्वेलित कर देते कि वे एकदम ही अधीर हो उठतीं। दो बूंद आँसुओं के बदले में ही उनके पास से निर्वाण-मुक्ति पायी जा सकती थी—"माँ" की पुकार से उनके

मन म इतन आत्मोडन को सृष्टि हो जाता कि वह किसी और ही लोक की हो जाता तथा उनका मन भी दिव्यलोकीय हो जाता। उनके पास पात्र अपात्र का विचार नही था। देशकाल की सीमा स भी वे परे थी। 'माँ कहकर खड होने से ही वे अपनी अभय गोदी म खीच लेती। इसी के लिए सेविका गोपालसुन्दरी न एक दिन माँ स तद अभियोग किया। मा चुपचाप सब कुछ सुनने के बाद बोली— क्या करू गोपाल मा कहकर कोई पुकारता है तो म अपन आपको रोक नही सकती।

एक अच्छ घर की महिला थी। दूसरो के बहकाने से वे पथभ्रष्ट हो गयी थी। बाद म अपनी गलती का ज्ञान होने पर मर्माहत और अनुतप्त हुइ। वे आश्रय और शान्ति प्राप्त करन के लिए मा के ही चरणतल म आयी। मंदिर म प्रवेश करन म सकुचित होकर देहली के पास खडी होकर रोते रोते अपन समस्त पापो की कथा मा से व्यक्त करती हुई कहती थी— माँ मेरा क्या होगा? म आपके इस पवित्र मन्दिर म प्रवेश क योग्य नही हू। मा खुद दो पग आग बढकर उस महिला को गले से लगाती हुइ सस्नेह कहती थी— आओ बेटी अन्दर चली आओ। पाप क्या है यह समझ लिया। इसीलिए अनुतप्त हो रही हो। आओ, म तुम्हे मन्त्र दूगी—ठाकुर क चरणो म सब कुछ सौप दो। डर किस बात का है? पतितोद्धारिणी ने पतिता के कान म उसी ब्रह्म नाम का उपदेश दिया। जो धूल मिट्टी लगा हुई थी उसे झाड पोछकर गोद म उठा लिया और स्नेह प्यार स उस भर दिया।

* * *

परवर्ती माघ मास म माँ फिर जयरामबाटी चली गयी

और एक साल से भी ज्यादा वहाँ रही।

माँ के मन में कृपा की बाढ सी आ रही थी। वह बाढ़ निर्विचार भाव से ही सब कुछ बहा ले चल रही थी। माँ को उस समय भी अक्सर बुखार हो जाता था, शरीर भी बहुत दुर्बल हो गया था। शरत् महाराज को जब इसका पता चला तो उन्होंने कुछ समय के लिए भक्त-समागम और दर्शन आदि बन्द रखने का निर्देश दे दिया। इसी समय सुदूर बरिसाल (पूर्व पाकिस्तान) से एक भक्त जयरामबाटी में आकर उपस्थित हुए। व्याकुल होकर माँ का दर्शन करने —उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए आये है। किन्तु सेवक किसी तरह भी दर्शन नही करने दे रहा था। भक्त की आकुल प्रार्थना का भी सेवक पर कोई असर नही पड़ा। भक्त और सेवक मे इसी बात को लेकर विवाद चल पडा। हल्लागुल्ला सुनकर अन्तर्यामिनी माँ अस्तव्यस्त भाव से सहसा बाहर के दरवाजे पर आ खड़ी हुई और खिन्न होकर सेवक से बोली—"तुम किसी का आना क्यों बन्द कर रहे हो ?" सेवक ने उत्तर दिया—"शरत् महाराज ने निषेध किया है। अस्वस्थ शरीर से दीक्षा देने पर आपका शरीर और भी ज्यादा खराब हो जायेगा ?" माँ ने कुछ उत्तेजित होकर कहा— "शरत् क्या कहेगा ? इन लोगो के लिए ही तो हमारा आना है। मै इसको दीक्षा दूंगी।" बाद मे उन्होंने उस आगत भक्त को सम्बोधित करके कहा—"आओ बेटा, आज तुम कुछ खा-पीकर आराम करो — कल तुम्हे दीक्षा दूंगी।" माँगने से पहले ही प्राप्ति। श्रीभगवान् के पास भी कुछ माँगना नही पड़ता। वे तो अन्तर्यामी है—हार्दिक हो तो बिना माँगे ही वे सब अभाव पूर्ण कर देते है।

बारम्बार मलेरिया बुखार की वजह से माँ का शरीर इतना

दुर्बल हो गया कि सभी बहुत चिन्तित हो उठे। विवश होकर स्वामी सारदानन्द कलकत्ते से एक डाक्टर को ले आये और जब माँ का बुखार कुछ कम हुआ तब उन्हें कलकत्ते ले गये। यह ७ मई, १९१८ की बात है।

एक दिन बागबाजार मठ में एक सन्यासी सन्तान ने माँ से कहा —"आप इतने लोगो को मन्त्र देती हैं, उनकी कुछ खोज-खबर तो कभी रखती नही। गुरु शिष्य की कितनी खबर रखते है—हमेशा देखते रहते है कि शिष्य के साधन में कुछ उन्नति हो रही है या नही ?" आपको इतने अधिक लोगो को मन्त्रदीक्षा न देना ही अच्छा है। यह सुनकर माँ ने कुछ गम्भीर होकर कहा— "यह भार मैंने ठाकुर के ऊपर छोड़ दिया है। प्रति दिन मैं उनसे निवेदन करती हूँ —'जो जहा भी हो, उसकी देखभाल कीजिये।' जानो कि ये सब ठाकुर के दिये हुए मन्त्र है। ये सिद्ध मन्त्र उन्होंने ही मुझे दिये थे।".

इसी प्रकार माँ के असीम स्नेह और अपार करुणा का एक अन्य दिन का प्रसग है। 'बेटी योगेन' ने हँसते-हँसते माँ की ओर देखकर कहा —" माँ हम लोगो से प्यार तो करती है मगर उतना नही जितना ठाकुर करते थे। बच्चो के लिए उनके मन में कितनी व्याकुलता थी — कितना प्यार था उसे मैं क्या बताऊँ ?" मा ने स्मित-मुख से कहा —"ठाकुर ऐसे क्यो न करेंगे ? उन्होंने कुछ अच्छे-अच्छे बच्चो को चुन लिया था। फिर भी वे हर प्रकार परीक्षा करते थे तब मन्त्र देते थे। और इन चींटियो की कतार को उन्होने मेरे पास ठेल दिया है।" सचमुच ये सब चींटियों की ही कतार थे।

इसी दीक्षादान प्रसग में माँ ने एक अन्य समय एक भक्त

से कहा था — "मुझे जो कुछ करना था वह एक ही समय (दीक्षा देने के समय) मैंने कर दिया। यदि सद्य: शान्ति प्राप्त करना चाहो तो साधन-भजन करो, अन्यथा मृत्यु के समय वह मिलेगी।"

* * *

गिरीश की मुक्ति का बोझ ठाकुर ने अपने ही माथे पर लिया था। अन्तिम रोग के समय काशीपुर उद्यान में एक दिन उन्होंने कल्पतरु होकर भावावेश में स्पर्श करके अनेक भक्तों का चैतन्य सम्पादन किया था। गिरीश की मुक्ति का बोझ लेना ठाकुर के जीवोद्धार-कार्य की एक साधारण-सी घटना है। ठाकुर ने और भी कितने ही भक्तों का भार सम्भाला था और नाना भावों से उनका चैतन्य सम्पादन किया था।

दूसरे का भार अपने ऊपर लेने के भाव का पूर्ण विकास माँ के जीवन में देखा जाता था। ठाकुर की इच्छा से उन्होंने बहुत से आश्रित सन्तानों का भार लिया था। अनेक से उन्होंने कहा था — "तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं, तुम्हारे लिए मैं ही करूँगी।" फिर अनेक को माँ ने 'त्रिसत्य' (तीन बार प्रतिज्ञा करके) अभयदान दिया था। फलस्वरूप सदा के लिए उनके मन भयमुक्त हो गये थे।

पूर्ण रूप से भगवान् पर निर्भर रहना — पूर्ण आत्मनिवेदन का ही साधन है। जिस प्रकार शिशु सर्वदा हर तरह से माँ के ही ऊपर निर्भर रहता है ठीक उसी प्रकार माँ पूर्ण रूप से शिशु का सब भार अपने ऊपर ले लेती है। शिशु अपनी माँ को छोड़कर और किसी को जानता तक नहीं — एकमात्र माँ की ही उसे चिन्ता रहती है। माँ को ही सोचता है — माँ को ही वह बुलाता है। ठीक उसी प्रकार भक्त भी पूर्ण रूप से भगवान के ऊपर सब कुछ

छोडकर, एकदम भगवान् के चरणो में अपने आपको सौंपकर उस प्रभु की इच्छा पर ही निर्भर होकर रहते हैं। भक्तों की सभी इच्छाएँ और सभी चेष्टाएँ भगवान् मे ही लीन हो जाती हैं।

मा ने एक बार एक आश्रित सन्तान से कहा था—"सदैव तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि निरन्तर तुम्हारे पीछे कोई एक हैं।" माँ की गोद में शिशु निर्भय रहता है। "मै तो हूँ ही, फिर भय किस बात का ?"—यही माँ की अभयवाणी थी।... अन्त मे गिरीश का "अहं" श्रीरामकृष्ण के ही भीतर लीन हो गया था। गिरीश की सत्ता ठाकुर में ही मिल गयी थी। उनकी समस्त चिन्ताओं में ठाकुर व्याप्त रहते थे। उनके हरेक श्वास-प्रश्वास मे ठाकुर का ही स्मरण रहता था। वे कहते थे—"जो यह सास चल रही है--यह भी ठाकुर की इच्छा से ही।" गिरीश अन्त समय तक 'शरणागति-साधना' की सिद्धि तक पहुँच गये थे।

एक बार माँ कोयालपाडा आयी। एक आश्रित सन्तान ने मन की घोर अशान्ति बताकर कल्याणरूपिणी से कहा—'माँ, साधन-भजन तो कुछ हो नही पा रहा है।' उन्होंने आश्वासन देते हुए कहा—'तुम्हे कुछ नही करना है। जो करना है, मैं करूँगी।' इस प्रकार के आश्वासन की भक्त ने आशा नहीं की थी। सन्तान के प्रश्न करने पर माँ ने फिर वही अभयवाणी दुहरायी--'नही, तुम क्या करोगे ? जो कुछ करना है मै करूँगी।' किसी दूसरे आश्रित सन्तान का कष्ट सुनकर मा अभयदान देती हुई कहती थीं—"अगर मैं ठाकुर के पास जाऊँगी तो निश्चय समझो कि तुम लोग भी जरूर जाओगे।"... उन्होंने समस्त सन्तानो का भार अपने ऊपर लिया था। जिसने भी श्रीरामकृष्ण

के चरणों मे शरण ली, उसी ने माँ के अभय अंक में आश्रय पाया।

*　　　*　　　*

सन् १९१८ में बागबाजार स्थित भवन में बड़े समारोह के साथ श्रीमाँ का जन्म-दिवस मनाया गया। बहुत से भक्तों ने माँ के दर्शन-स्पर्शन प्राप्त किये। अनेकों ने उनके चरणों की पूजा की और उनका आशीर्वाद पाकर अपने अपको धन्य समझा। सबके पुष्पांजलि अर्पण करने के बाद माँ ने एक सेवक से कहा—"पुष्पपात्र में जो फूल-चन्दन आदि बच गया है, उसे हाथ में लेकर मेरे जो सन्तान यहाँ आ नही सके उनके नाम से भी पुष्पाजलि अर्पण कर दो।" सेवक माँ के चरणों में पुष्पांजलि अर्पण करने लगे और माँ राखाल, तारक और खोका आदि के नाम बतला देने लगी। बाकी सन्तान जहाँ भी थे सबके कल्याण के लिए उन्होंने अपने चरणो में अजलि दिलवायी। चरणों में जवापुष्प और विल्वपत्र अर्पित हो रहे थे, श्रीमाँ आँखे मूंदकर बैठी थी और सब सन्तान के कल्याण के लिए आशीर्वाद दे रही थी—प्रार्थना कर रही थी। माँ की वही दक्षिणामूर्ति चिरकाल के लिए भक्तों के हृदय में ध्यान की वस्तु होकर रह गयी।

माँ की जन्मतिथि पूजा के लिए कितने ही भक्त कितने ही प्रकार की सामग्री लाये थे। अनेक भक्तों ने उनके दोनों चरणों मे रुपये रखकर प्रणाम किया। नये कपडे, फल मिठाई तथा और भी कितनी ही चीजो के ढेर लग गये थे। जीर्ण वस्त्र पहने हुए एक गरीब भक्त आया और उसने एक हरीतकी ही माँ के चरणों मे रखकर प्रणाम किया। माँ ने उसे खूब आशीर्वाद दिया। भक्त के चले जाने के बाद उन्होने सेवक से कहा—"इस हरीतकी को उठाकर रख तो दो। काटकर थोड़ी सी मुझे देना। आहा!

कितनी भक्ति के साथ इसे दे गया है।".. वे केवल भक्ति का ही रसास्वादन करती थी।

मा ने जयरामबाटी में जगद्धात्री-पूजा का आयोजन किया था। सन्ध्या के कुछ समय बाद ही सन्धि पूजा हुई। अनेक लोगों ने माँ के चरणों मे विकसित कमल-दल चढाकर भक्ति-अजलि अर्पण की। माँ भावस्थ होकर सभी की पूजा ग्रहण कर रही थी। अनेक की ठोडी छूकर उन्होने स्नेह-चुम्बन दिया, अनेक के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। अनन्तर एक सेवक से माँ ने कहा --"और भी फूल लाओ। राखाल, तारक, शरत्, खोका, योगेन, गोपाल इन सबके नाम से फूल चढाओ। हमारे जाने-अनजाने सब बच्चों की ओर से पुष्पार्पण करो।" सेवक पुष्पा-जलि अर्पण कर रहे थे और पुण्यमयी माँ हाथ जोडकर ठाकुर की मूर्ति की ओर देखती हुई बैठी थी। उसी स्थिर भाव से बैठे बैठे काफी समय बीत गया। बाद मे उन्होने कहा --"सबका इहलौकिक और पारलौकिक मगल हो।"

* * *

माँ की जन्म-तिथि पूजा के कुछ दिनो बाद (२७ जनवरी १९१८ को) वे राधू को लेकर गाव की ओर रवाना हो गयी। राधू अस्वस्थ हो गई थी। शहर का कोलाहल उसे सह्य नही होता था। इसलिए माँ राधू को लेकर सेवकों के साथ छ मास तक विशुद्ध ग्रामीण वातावरण में --कोयलापाडा के जगदम्बा-आश्रम म रही।

मा के इस निर्जनवास के दौरान में भी दूर-दूर से अनेक भक्त उनकी कृपा-प्राप्ति के लिए आते ही रहते। किसी को भी वे विमुख नही करती थी। उनके अयाचित कृपा-वितरण को

देखकर मन में होता था मानो वह अब नरलीला को संहृत करना चाहती हैं। बहुत बार वे गंभीर भावस्थ हो जाती। एक हाथ से राधू की सेवा-परिचर्या, एक ओर योगमाया का मायाजाल और दूसरे हाथ से दयारूपिणी का निरन्तर कृपावितरण। कभी हम लोग देखते थे मानो वह अस्तव्यस्त भाव से अन्यमनस्क होकर असीम की ओर निहारती बैठी हुई हैं।...

एक दिन सन्ध्या के बाद माँ को भक्तों के प्रतिदिन के पत्र पढकर सुनाये जा रहे थे। आँखें बन्द किये बडे स्थिर भाव से वे पत्रों को सुन रही थी। बीच-बीच में प्रार्थना भी करने लगती थी—"ठाकुर, इनका लौकिक और पारलौकिक कल्याण कीजिये।" माँ के कण्ठस्वर में कितनी व्याकुलता थी! पत्रों का पढना समाप्त होने पर उन्होंने कहा—"सब लोग केवल सांसारिक दुःख-कष्ट, शोकताप, अभाव आदि को ही जता रहे है। इन सबसे परित्राण पाना चाहते है। भगवान् को कोई नही चाहता।... ठाकुर से मैं कहती हूँ—'ठाकुर, इनकी इस लोक में और परलोक में आप ही रक्षा कीजियेगा।' माँ होकर मैं और क्या कहूँगी? कितने आदमी उन्हें सचमुच चाहते हैं? वैसी व्याकुलता कहां? इतने तो भक्ति-आग्रह शब्दों में प्रकट करते है पर एक सामान्य भोग्य वस्तु प्राप्त कर ही ये सन्तुष्ट हो जाते है। कहते है—'अहा! कितनी दया है उनकी।'..."

७

कोयालपाडा में राधू को एक पुत्र-सन्तान हुआ (२४ वैशाख १३२६)। माँ ने उसका नाम रखा—'वनविहारी।' प्रेम से वह उसे वनू कहकर बुलाती। उसके अढ़ाई मास के होने पर माँ राधू इत्यादि को लेकर जयरामबाटी चली आयी (४ श्रावण)। राधू का शरीर उस समय भी बहुत ही दुर्बल—एक प्रकार से शय्याशायी अवस्था थी। राधू की सारी सेवाओं के अतिरिक्त माँ का एक ही महत्त्वपूर्ण काम था—'राधू के बच्चे का लालन-पालन।' प्राय उन्नीस वर्ष पूर्व जिस प्रकार उन्होंने राधू को उठाकर गोद में ले लिया था उसी प्रकार अब वनू को लेना पड़ा। 'योगमाया' की लीला थी यह। माँ का शरीर धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा था—अब ज्यादा सहना दूभर हो रहा था। तो भी नये नये भावों से योगमाया को अपना रही थी। पगली, राधू और वनू—इन तीनों ने मिलकर मायाजाल फैलाकर मानो माँ को फँसा रखा था।

* * *

जयरामबाटी आने के बाद से ही माँ को बीच-बीच में ज्वर आने लगा था। मलेरिया ज्वर था। ज्वर बहुत बढ जाने से वे लेट जाती। फिर उठती और फिर सासारिक कामकाज और भक्त-परिजनसेवा में लग जाती। दीक्षार्थी आ रहे थे—उन्हें दीक्षा

देना भी बन्द नही कर रही थी। माँ के स्वास्थ्य के लिहाज से उन्हे जयरामबाटी मे रहना ठीक न था, परन्तु राधू भी उस समय तक अत्यन्त दुर्बल थी—अपने बल से खडी भी नही हो सकती थी। राधू के लिए ही माँ को जयरामबाटी में रहना पड़ रहा था।

बंगाब्द १३२६ में अपनी जन्मतिथि के ही दिन (२७ अगहन) मध्याह्नोत्तर काल में माँ को हल्का सा बुखार हो गया। कई दिन इसी प्रकार बुखार रहा। बीच-बीच में कुछ ठीक हो जाती थी—मगर फिर बुखार आने लगता था। इसी प्रकार अस्वस्थ रहने से धीरे-धीरे उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। किन्तु इस अस्वस्थता के समय भी उन्होने दीक्षा देना आदि बन्द नही किया, क्योंकि भक्त कितनी ही आशाएँ लेकर दूरदूरान्तर से आते थे। बहुत बार उन्होंने अपनी अस्वस्थता को छिपाये रखा। शायद भक्तों के दर्शन आदि बन्द हो और सेवकों को उनके लिए चिन्ता उत्पन्न हो।

श्रीमाँ की लगातार बीमारी की खबर सुनकर स्वामी सारदानन्द ने चिकित्सा के लिए उन्हे कलकत्ते ले जाने की व्यवस्था कर दी। १५ फागुन १३२६ को श्रीमाँ कलकत्ते पहुँची। उनके ककालमात्रावशिष्ट शरीर को देखते ही भक्तिनें कह उठी—'तुम लोग कैसी माँ को ले आये? यह तो तुम लोगो ने सिर्फ चमड़ा और कुछ हड्डियाँ लाकर उपस्थित कर दी है। हम लोगों ने तो अनुमान भी नही लगाया था कि माँ का शरीर इतना खराब हो गया होगा।' स्वामी सारदानन्द ने बड़ी तत्परता से माँ की चिकित्सा का प्रबन्ध किया। एक एक कर, होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक और एलोपैथिक चिकित्साएँ चलने लगी। कलकत्ते के ख्यातनामा चिकित्सकों की चिकित्सा चल रही थी। आन्तरिक सेवा-यत्न और

पथ्यादि में तो कोई त्रुटि थी ही नहीं। पहले पहले तो माँ के स्वास्थ्य में कुछ सुधार देखकर सभी आशान्वित हुए। पहले की तरह इस बार भी वे धीरे-धीरे ठीक हो उठेंगी—इस आशा से हिम्मत बाँधकर सेवक और सेविकाएँ सेवा में जुट गये।

माँ का शरीर विशेष अस्वस्थ बताकर भक्तों को दर्शन आदि से रोक दिया गया था। उस समय भी जब माँ अपने आपको कुछ ठीक अनुभव करतीं तब बहुत लोगों को विशेष रूप से आशीर्वाद देतीं और दो एक को दीक्षा भी प्रदान करतीं। उनका शरीर धीरे-धीरे बहुत दुर्बल होता जा रहा था—यह देखकर साधु भक्त सन्तान नीरव में आँसू बहाते रहते।

चैत्र मास के प्रारम्भ में माँ का शरीर बहुत दुर्बल देखकर एक संन्यासी सन्तान खूब दुःख प्रकट करने लगे। यह सुनकर माँ ने कहा—'हाँ बेटा, दुर्बल तो यह बहुत ही हो गया है। सोच रही हूँ कि इस शरीर से ठाकुर को जो कुछ करना था वह पूरा हो गया है। इस समय मन सदा उन्हीं को चाहता है। और कुछ भी अब अच्छा नहीं लगता। यही देखो न, राधू का मैं इतना प्यार करती थी। अब उसका सामने आना भी अखरता है। वह क्यों सामने आकर मेरे मन को नीचे ही खींचने की चेष्टा करती है। ठाकुर ने अपने कार्य के लिए यह सब मायावलम्बन द्वारा इतने दिनों तक मन को नीचे कर रखा था। नहीं तो उनके जाने के बाद क्या मेरा यहाँ रहना सम्भव होता?"

माँ को मानो अब ठाकुर की पुकार सुनायी पड़ती थी। वे भी महाप्रयाण के लिए प्रस्तुत होने लगीं। एक दिन लगभग डेढ़ या दो बजे उनका ज्वर बढ़ना आरम्भ हो गया। सेवक नित्य के समान उनके बिस्तर के पास बैठे हवा कर रहे थे। माँ सेवक

के सीने और पीठ पर हाथ फेरती हुई उसके मुंह की ओर देखकर करुण स्वर में बोली—"मैं समझ रही हूँ कि इस शरीर के चले जाने पर तुम लोगो को बड़ी तकलीफ होगी।" सेवक की आँखे डबडबा आयी। अपने को सम्हालकर मुंह नीचा किये ही सेवक ने कहा—"माँ, यह सब आप क्या कह रही है ? औषधि से जब उतना फल नही हो रहा है तो आप ठाकुर की सेवा में अपने शरीर के लिए जरा जता दे तो सब ठीक हो जाये।" माँ ने मन्द-मन्द हँसते हुए कहा—"कोयालपाडा मे उतना ज्वर आता था कि बेहोश होकर बिछौने पर पड़ी रहती किन्तु होश आने पर इस शरीर के लिए ज्यो ही उनकी स्मरण करती, त्यों ही उनका दर्शन हो जाता था।...तुम लोगों की ओर ख्याल करके इस शरीर के लिए बीच-बीच में ठाकुर को क्या मैंने नही जताया ? किन्तु शरीर के लिए जब उन्हे याद करती तो किसी तरह भी उनका दर्शन नही मिलता। मैं समझती हूँ कि इस शरीर को और अधिक रखने की उनकी इच्छा नही है। शरत् रहेगा।"

क्रमशः तमाम चिकित्साओं को व्यर्थ करके रोग दिन-दिन बढ़ता ही गया। दिन में तीन-चार बार बुखार हो जाता था। पित्त-प्रधान ज्वर था—शरीर में असहनीय जलन थी। वे कहती—"दलदलदार पोखरे के जल में जा डूबूं।" सेविकाएँ बरफ हाथ पर रखकर फिर वह हाथ उनके शरीर पर फेरा करती थी। इस कष्ट और रोग के दौरान में भी सभी उनका स्नेह-स्पर्श प्राप्त करते थे। रोग का विवरण जानने के लिए सेवक माँ के पास आये। सुबह वैद्य के पास जाना होगा। उन्होने स्नेह भरे स्वर मे कहा—"खाकर जाना। विलम्ब होगा।" डाक्टर और वैद्य आते थे और वह खुद सबको फल और मिठाई दिलाती थी।

आरामबाग से भक्त लोग आये है। बहुत क्षीण स्वर में रुक रुककर धीरे-धीरे माँ ने उनसे पूछा — "ठीक तो हो बेटा ? कुछ खा नही सकती। बहुत दुर्बल हो गयी हूँ। बरदा (श्रीमाँ का भाई) मर गया है।' गाँव की खबर पूछती थी — 'पानी पड़ा क्या? यहाँ प्रसाद तो पाओगे ?" कुछ दिन पूर्व आरामबाग के भक्तो ने रमणी नामक एक स्त्री के हाथ माँ के लिए कुछ कच्चे ताल भेजे थे। उसी सम्बन्ध मे माँ ने कहा था — "रमणी कब आई, कुछ पता ही नही चला — बुखार मे कुछ होश नही रहा था। उसमे कह देना जिससे वह दुःखी न हो।"

इतनी बीमारी के समय भी किसी की सेवा ग्रहण करने मे माँ बडी कुण्ठित हो जाती थी। अपनी सेवा करने का किसी को वे अवसर ही नही देती थी। माँ का दोपहर का पथ्य हो गया था। उनको सुलाने के लिए एक सेवक कुछ हवा कर रहा था। चार-पाँच मिनट के बाद ही माँ ने कहा — "अब नही, तुम्हारा हाथ दर्द करेगा।"

सेवक ने कहा — 'नही माँ, यह तो मामूली पखा है, मुझे जरा भी कष्ट नही हो रहा है।" आँख बन्द कर माँ ने फिर से कहा — "अब बेटा, तुम्हारा हाथ दर्द करेगा। रहने दो, मै खुद ही सो जाती हूँ।" कुछ देर चुप रहकर उन्होने फिर कहा — "बेटा, तुम्हारे हाथ में दर्द हो रहा है, यह सोचकर ही मुझे नीद नही आ रही है। तुम पखा बन्द कर दो तो मै निश्चिन्त होकर सो जाऊँगी।" विवश होकर पखा बन्द कर देना पडा।

चिकित्सा से कोई फल न होते देखकर सब म्रियमाण मे हो गये। आहार में माँ की विशेष अरुचि हो गयी थी। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। घर की चौकी हटाकर जमीन पर ही उनका बिस्तर लगा दिया गया। इधर माँ धीरे-धीरे बहुत ही अन्तर्मुखी

होती जा रही थी। प्राय: आंखे बन्द कर ही पड़ी रहती थी। जब कोई और उपाय न रहा तब स्वामी सारदानन्द दैवी प्रतिकार की चेष्टा करने लगे। कुछ दिनो तक नाना शान्ति-स्वस्त्ययन का अनुष्ठान हुआ। किन्तु माँ के स्वास्थ्य में कोई उन्नति नही दिखायी पड़ी।

धीरे-धीरे रक्तहीनता की वजह से हाथ-पैर मे शोथ दिखाई देने लगा। इतनी दुर्बल हो गयी कि उठने की भी शक्ति नही रही। बिस्तर पर ही शौच आदि कराया जाने लगा। रोज दो-तीन बार बुखार हो जाता। हाथ-पैर में असह्य जलन होती रहती। माँ अक्सर कहती — "मुझे गगा-तट पर ले चलो। गगा की धारा में ही मै शीतल होऊँगी।" लेकिन डाक्टरो ने इस अवस्था में उन्हे हिलने-डुलने नही दिया।...

नरलीला संवरण के कुछ दिन पूर्व एक सेवक से श्रीमाँ ने कहा —"तुम राधू आदि सब लोगो को जयरामवाटी छोड आओ।" उनका यह आदेश सुनकर सभी बहुत चिन्तित हो उठे। शरत् महाराज यह सुनकर माँ को नाना भावो से समझाने लगे— "आपके इस अस्वस्थ शरीर को देखकर उन्हे जाने मे कष्ट होगा। आप जरा अच्छी हो जायँ तो वे सब चली जायेगी।" माँ जरा चुप रहकर फिर बोली — "उनको भेज देना ही ठीक था। खैर वे मेरे पास न आवें। अब तो उनकी छाया तक देखने की इच्छा नही है।"... 'माँ के मकान में' मानो सर्वत्र विषाद का घना अन्धकार छाने लग गया।

एक दिन दोपहर मे राधू बगल वाले कमरे मे सोयी थी। उसका लड़का, श्रीमाँ का प्यारा 'बनू' घुटने के बल चलता हुआ माँ के बिस्तर के पास आकर उनकी छाती के ऊपर चढने लगा। यह

देख शिशु को लक्ष्य कर माँ ने कहा—"तुम लोगों की माया में एकदम काट चुकी हूँ। जा जा, अब और नहीं।" पास बैठे सेवक से बोली—"इसको उठाकर उधर छोड आओ। यह सब अब अच्छा नहीं लगता।" सेवक बच्चे को उठाकर उसकी नानी के पास छोड आया।

* * *

माँ ने अपनी कभी कोई इच्छा प्रकट नहीं की। वे तो ठाकुर की इच्छा पर चलने वाले यन्त्र के समान थी। नरदेह में रहना, नरलीला करना—वह सभी ठाकुर की ही इच्छा से। और अन्तिम दिनों में वे "ठाकुर जब ले जायेंगे, जाऊँगी"—इसी भाव में डूबी थी। एक बार माँ ने कहा था—"अपने कार्य के लिए ही तो 'राधू-राधू' करती हुई इस देह को उन्होंने रखा है। जब उस पर से मन हट जायेगा तब यह शरीर नहीं रहेगा।" इस समय माँ की ये बाते खासकर सबको याद आने लगी।

माँ के स्वधाम मे प्रस्थान करने मे छ-सात दिन बाकी थे। सूखा चेहरा किये राधू आकर खड़ी हो गयी। माँ ने बहुत ही उपेक्षा के स्वर में कहा—'देख, तू जयरामबाटी चली जा। अब और यहाँ मत रह।' निकटस्थ सेविका को लक्ष्य कर उन्होंने कहा शरत से कहो, इन लोगों को जयरामबाटी पहुँचा दे।" सेविका के मुँह से माँ का यह आदेश सुनकर शरत् महाराज तथा अन्य सभी लोग बड़े विचलित हो गये। बेटी योगेन ने माँ के पास आकर करुण स्वर में जिज्ञासा की—"क्यों, माँ, उन्हें आप भेज देने को क्या कह रही है?" माँ ने स्पष्ट स्वर में उत्तर दिया—"योगेन, इसके बाद वे सब वही रहेंगे। मन अब हटा लिया है। अब और नहीं।" भक्तिन ने कातर कण्ठ से कहा—"ऐसी बात

मत कहो, माँ ! आप मन हटा लें तो हम कैसे रहेंगी ?" माँ ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"योगेन, माया काट दी है। अब और इस चक्कर में रहना नहीं चाहती।" भक्तिन ने और कुछ न कहकर शरत् महाराज को सब बता दिया। सुनकर हताश होते हुए उन्होंने कहा—"तो अब माँ को और नहीं रखा जा सकता। जब राधू के ऊपर से भी उनका मन उठ गया तब और आशा नहीं है।"

शरत् महाराज के आदेश से सेवकों और सेविकाओं ने माँ का मन राधू के ऊपर लाने की चेष्टाएँ करनी शुरू कर दी किन्तु सहस्र चेष्टाओं से भी कुछ नहीं हुआ। माँ ने तीव्र स्वर में एक दिन कह ही दिया—"मन एक बार उठ गया तो अब यह नीचे नहीं आयेगा—यह अच्छी तरह समझ लो।"

देहत्याग के तीन दिन पूर्व शरत् महाराज को अपने पास बुलाकर माँ ने कहा—"शरत्, मैं अब चली। योगेन, गोलाप आदि रहेंगे, इनकी देखभाल करना।"

अन्तिम दो दिन मानो वे गंभीर समाधि में स्थित रहीं, प्रशान्त और स्थिर। उस प्रशान्ति को भंग करने का किसी को साहस नहीं हुआ—इच्छा भी नहीं हुई।

ठाकुर के साथ चौंतीस वर्ष के लौकिक वियोग का अवसान हो गया। ४ श्रावण १३२७ को रात्रि में डेढ़ बजे शिवयोग में ६६ साल ७ मास की उम्र में श्रीमाँ चिरकाल के लिए परम शिव श्रीरामकृष्ण से जा मिलीं।

।। ॐ श्रीरामकृष्ण-सारदादेव्यर्पणमस्तु ।।

हमारे कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन

१-३. श्रीरामकृष्णलीलाप्रसग (भगवान् श्रीरामकृष्ण का सुविस्तृत जीवनचरित)—तीन खण्डो मे, भगवान् श्रीरामकृष्ण के अन्तरग शिष्य स्वामी सारदानन्दजी द्वारा मूल बँगला में लिखित प्रामाणिक, सुविस्तृत जीवनी का हिन्दी अनुवाद। डबल डिमाई आकार, आर्टपेपर के नयनाभिराम जैकेट सहित।

प्रथम खण्ड –('पूर्ववृत्तान्त तथा बाल्यजीवन' एव 'साधकभाव')— १४ चित्रो से सुशोभित, पृष्ठसख्या ४७६, मूल्य रु ९

द्वितीय खण्ड –('गुरुभाव–पूर्वार्ध' एव 'गुरुभाव–उत्तरार्ध')— चित्रसख्या ७, पृष्ठसख्या ५१०, मूल्य रु १०

तृतीय खण्ड –('श्रीरामकृष्णदेव का दिव्यभाव और नरेन्द्रनाथ')— चित्रसख्या ७, पृष्ठसख्या २९६, मूल्य रु ७

"ईश्वरावतार एक दैवी विभूति की जीवनी, जो लाखो करोडो लोगो का उपास्य हो, स्वय उन्ही के किसी शिष्य द्वारा इस ढग से शायद कही भी लिखी नहीं गयी है। पाठको को इस ग्रन्थ में एक विशेषता यह भी प्रतीत होगी कि ओजपूर्ण तथा हृदयग्राही होने के साथ ही इसकी शैली आधुनिक तथा इसका सम्पूर्ण कलेवर वैज्ञानिक रूप से सजाया हुआ है।

"प्रस्तुत पुस्तक विश्व के नवीनतम ईश्वरावतार भगवान् श्रीरामकृष्ण की केवल जीवन-आख्यायिका ही नही वरन् इस दिव्य जीवन के आलोक में किया हुआ ससार के विभिन्न धर्मसम्प्रदायो तथा मतमतान्तरो का एक अध्ययन भी है।"

४-६. **श्रीरामकृष्णवचनामृत**--तीन भागो में; 'म' कृत; संसार की प्राय: सभी प्रमुख भाषाओं मे प्रकाशित; अनुवादक--पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; सचित्र, सजिल्द, नयनाभिराम जैकेट सहित, प्रथम भाग (चतुर्थ सस्करण) पृ स. ५९८+१६, मूल्य रु. ६.५० पैसे; द्वितीय भाग (तृतीय सस्करण) पृ. स. ६३२, मूल्य रु ६.५० पैसे, तृतीय भाग (तृतीय सस्करण) पृ. सं. ७२०, मूल्य ७ रु

७. **माँ सारदा**--(भगवान् श्रीरामकृष्ण की लीला-सहधर्मिणी का विस्तृत जीवन-चरित)--स्वामी अपूर्वानन्द कृत, द्वितीय संस्करण, सजिल्द, आर्ट पेपर के आकर्षक जैकेट सहित, ८ चित्रों से सुशोभित, पृष्ठसख्या ४५६ मूल्य रु ६

८. **विवेकानन्द चरित**—(हिन्दी में स्वामी विवेकानन्दजी की एकमात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी)—सुविख्यात लेखक श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदारकृत, चतुर्थ सस्करण, सजिल्द, सचित्र, आर्ट पेपर के आकर्षक जैकेट सहित, पृष्ठसंख्या ५४५, मूल्य ६ रुपये।

९. **साधु नागमहाशय**--(भगवान् श्रीरामकृष्ण के अन्तरग गृही शिष्य डाक्टर दुर्गाचरण नाग का जीवन-चरित--विख्यात लेखक श्री शरच्चन्द्र चक्रवर्ती कृत, पृष्ठसख्या १८५, मूल्य रु. १.५०

१०. **धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द**--(भगवान् श्रीरामकृष्ण के अन्तरग सन्यासी शिष्य के उपदेश)--स्वामी अपूर्वानन्द द्वारा सकलित, द्वितीय मस्करण, सचित्र, सजिल्द, आर्ट पेपर के आकर्षक जैकेट सहित, पृ. स ४२३, मूल्य रु. ५